





1

\* ओ३म् \*

# आर्यसमाज का इतिहास



[ प्रथम भाग ]

१८६० ई० तक



श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के आदेशानुसार

इन्द्र विद्यावाचस्पति

ने लिखा तथा प्रकाशित किया ।

मूल्य १)



इत्र पिदावापरपति क प्रकथ से  
अतुन प्रेता मया काया देहमी मं ह्यता।

## प्रस्तावना ।



धीमद्यानन्दजन्मशताब्दी के उपलक्ष में यह तुच्छ भेंट श्रुति के चरणों में समर्पित है । पुस्तक का आशय नाम से स्पष्ट है, इसके लिखने का अविधार किसी ऐसे व्यक्ति को ही था जो आयु विद्या और अनुभव में वृद्ध हो । मने जो यत्न किया है, वह दुःसाहसमात्र है, परन्तु आर्यसमाज के परम शमस्य इतिहास की इतनी अधिक आवश्यकता है, और वृद्ध जनों के हाथ सामाजिक कार्यों से इतने भरे हुए हैं कि बालक की यह अनधिकारचेष्टा आर्यजगत् में ज्ञातव्य समझी जा सकती है ।

यह भाग १८६० ई० तक समाप्त हो जाता है । ध्याशा है कि अगला भाग शीघ्र ही तय्यार हो कर पाठकों की सेवा में पहुँच जायगा ।

इतना निवेदन करना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस पुस्तक की सब भूलों का उत्तरदाता मैं हूँ, कोई दूसरा नहीं है । यदि कोई भूल हो तो नमस्कारिक महाशय मुझे ही दोषी ठहराय, अन्य किसी को नहीं ।

भाषासमग्र की एक सूचना दे देना उचित है । इस पुस्तक में आर्यसमाज शब्द को उभयलिंगी मान कर प्रयुक्त किया गया है । यह शब्द भाषा में दोनों लिंगों में प्रयुक्त होता है । इस प्रसंग में लेखक ने लोकन्यवहार को व्याकरण से ऊँचा माना है ।



# ‘इतिहास’ की तैयारी का इतिहास

भार्यसमाज का इतिहास तय्यार कराने का विचार मेरे मन में उस समय से ही उठ रहा था जब मैं अपने जालन्धरवाले मकान में बैठकर भार्यसामाजिक साहित्य की सेवा के स्वरूप लिया करता था। सं० १९७४ वि० के आरम्भ में मैंने सन्यास आश्रम में प्रवेश लिया। बुद्ध रोगों की निवृत्ति का उपाय करने के पीछे कुश्कोर गुरुकुल के स्थान में मैंने चातुर्मास किया। उसी समय मैं बैठे हुए मुझे भार्यसमाज का इतिहास लिखने की प्रेरणा का गई जिसे स्वीकार करके १७ भाद्रपद सं० १९७४ के सद्धर्म-प्रचारक में मैंने इस प्रकार घोषणा दी थी—

## इतिहास की तैयारी का सङ्क्षेप

‘बहुत से सज्जनों के अनुरोध से मैंने यह निश्चय कर लिया है कि भार्यसमाज का इतिहास तय्यार कर देना मेरा पहला कर्तव्य है। पूरी आधी शताब्दी बीत गई जब कि सं० १९२४ वि० के कुम्भ परहरिद्वार में सयमेघ यज्ञ का और केवल कौपीन मात्र आरख किए ऋषि ने गंगा के किारे २ चलाते हुए वेदों का पवित्र सन्देश सुनाना आरम्भ किया था। बम्बई में सबसे पहले समाज को स्थापित हुए भी ४२ वर्ष व्यतीत हो गए हैं। भार्यसमाज के वृद्ध अनुभवी सेवक प्रायः इस सप्ताह का टोट रहे हैं, जो शेष हैं उनमें भी चलाचली का चक्र चल रहा है अतएव इतने बड़े गम्भीर काम के योग्य न होते हुए भी मैंने यह साहस लिया है, जिमकी कृतकामता सर्वसाधारण ( विशेषतः अनुभवी आर्य पुरुषों ) की सहायता पर निर्भर है।

समकालीन इतिहास लिखने का काम बड़ा कठिन तथा दुस्साध्य समझा जाता है, और है भी ऐसा ही। परन्तु मैंने फिर भी इस आशा पर कार्य आरम्भ किया है कि प्राथम तो मैं अपने व्यक्तित्व को जुदा रखकर निष्पक्ष भाव से भार्यसमाज का इतिहास लिखने की अवस्था में आगया हूँ और यदि मैंने घटनाओं का ठीक परिणाम निकालने में कहीं ठोकर खाई तो उसे जानेवाले इतिहास लेखक सुधारें लेंगे।

मेरे पास पहिले से ही बहुत सा इतिहास का मसाला जमा पड़ा है।”

इतना लिखकर भार्य-समाचार पत्रों की फाइलें और भार्य सस्थाओं की रिपोर्ट मेजने के लिये उनके प्रबन्धकर्ताओं को प्रेरणा करके यह घोषणा-पत्र समाप्त किया था।



द्वि ७ आशिन म० १९७४ के प्रारम्भ में लिया है कि इतिहास की साक्षी पत्र फान के लिए म अर्पणार्थे म भण्डाध जाहा हू । अपनी गारावा सपर्यवभाष, दो मास के लिए, उसा अत्र में दे दिया था और अन्त म लिखा था—

“प्रथम वैशाख स० १९७४ से आर्यसमाज के इतिहास क लिखन के निय में वरुक्षेत्र गुरुकुल के भय म रा अन्य हिमा सगा पर, जरा सप श्रुतियों पर काम हो राह, बैठ ज उभा । इतिहास के साथ २ प्राथमिक दशीर्षानिर्णय का आयभावा तथा अत्रेजा म भाष्य भी तयार होगा । टाँके का तयरी सप २ चोगी । यदि मुझे एक याव्य अत्रता तथा आर्यभाषा जानन वागा रोचक भिा जाय और एक गुरुकुल का विद्वाह स्नातक, जो म कृत यादगु रा अच्छा पडित हो, सद यता के निय खडा हो जाय ता पहिले तीव मर्गे में इतिहास तय्यार हास प्रस्त म जा सकगा, और उसके एक वष पीछे उपनिषद मय्य रूपत क लिय तयार हा जायगा ।

“यदि यह सदातता न मिल सता ता मुक्त अकेले को सदाती में ४ के स्थान में ३ वष लग जाथी । कुछ ना हो सकय यह है कि यह दारा काम अत्रय समास सगन है यदि परमात्मा आगे क लिय नीगम जावन प्रदान करे ।

“निवास स्थान क चुनने में एा विचार प्रयत्न है—वह यह कि वक्तान के मारदिक व्यक्ति या सस्था का मेरे विचार स्यातन्त्र्य पर काड अधिहार न होगा ।

“इतिहास में न्यायदृष्टि से, निरा किता निरोप तल क पक्षपात के, निवृत्ता चाहता हू । मेरी इन शत को मानकर जो आर्य महाराय वा किसी आर्य सस्था के प्रबन्धकर्ता मुक्त से पाव्यवहार बंगे, उताम स जहा मेरे काम के लिये पुस्तकालय तथा जल तयु का प्रेक्षण द्वारा सुगमता हागी उसा स्थान का चुन लूगा ।”

इस घोषणापत्र के छपने के पीछे मैने पनाब प्रांतके मुख्य २ आर्यसमाजों में अग्रण करना आम्न किया । इस काय में आर्यसमाजों के अधिकारियों ने मेरी बडी सहायता की और चारों ओर स लेखक इतिहास का मसाला आना प्रारम्भ होगया ।

राम चार पत्रों की फाइलें भा पर्याप्त सान्या म आगई और मैं वुरुक्षेत्र बैठकर कार्य आरम्भ करने ही लगा था कि आर्यप्रतिनिधि समा पत्राव क प्रधान तथा गुरुकुल के आचार्य की आर स मुझे प्रेरणा हुड कि कागडी गुरुकुल म ही बैठकर मैं आर्य समाज का इतिहास लिखू । इस पर १५ पौष सम्वत् १९६४ के प्रचारक म इस प्रकार समाचार टपा था—

“श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने शाखा गुरुकुल कुम्होत्र में बैठकर इतिहास लिखने का निश्चय किया था किन्तु अब आयप्रतिनिधि सभा की अन्तरग सभा और गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता जा तथा आचार्य जी के आग्रह पर उन्होंने गुरुकुल कागड़ी में रहकर ही इतिहास लिखने का कार्य करने का विचार कर लिया है।”

इसके पश्चात् २१ पीप सम्बत् १९७४ के प्राचार्यकर्म मने लिखा था—

“अन्त को यही निश्चय हुआ कि गुरुकुल भूमि कागड़ी में बैठकर ही इतिहास का तयारी की जाय। इतिहास की तयारी के लिए जो साहित्य सम्बन्धी सामग्री चाहिये वह सब स्थानों से बढ़कर यहाँ ही मिल सकती है। कुम्होत्र में सब सामग्री यहाँ पहुँच चुकी है और मुरादाबाद में प० वृजनाथ जी का भा तिल किया था कि जा सामग्री मने उन्हे दी थी, वह शीघ्र मेरे पास भेज दें। वह भा पहुँच गई है। —

इतिहास का कम विस्तृत रूप से तो सारी सामग्री की पड़ताल करने के पीछे ही दिया जायगा परन्तु यहाँ सक्षेत्र से इतना लिखा ही पर्याप्त होगा कि आर्यसमाज के इतिहास को मैं ४ भागों में विभक्त करना चाहता हूँ। पहिले भाग में, भूमिका रूप से, यह दशाक्ष का यज्ञ होगा कि धर्म का ज्ञान पहिले पत्थिल बरों से पैला। इस विभाग में ईश्वरार्थ ज्ञान की आवश्यकता जतलाकर और वेद को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करके, सृष्टि के आदि से लेकर ऋषि दयानन्द के वास्तविक कार्य आरम्भ करने तक सम्प्रदायों, मतों और दार्शनिक विचारों के इतिहास पर एक समालोचनात्मक दृष्टि डाला जायगी। प्रयत्न होगा कि पाठकों की समझ में आजाय कि ऋषि दयानन्द को अपने उद्देश की पूर्ति में किन २ विरोधी शक्तियों से युद्ध करना पड़ा। दूसरे भाग में ऋषि दयानन्द और उनके काम का बखान होगा। इस भाग में दयानन्द जी के चरित्रसंगठन पर विचार करते हुए उसके दार्शनिक विकास का इतिहास होगा, और खलना जायगा कि ससत्र को उसकी शिक्षा का कितनी आवश्यकता थी। तिसरे भाग में आर्यसमाजों के मन्तव्यों पर एक समालोचनात्मक दृष्टि डालकर बतलाया जायगा कि बिना परम प्रमाण ( वेद ) की शरण लिये मनुष्य समाज कितनी ठोकरें खाता रहा है और भविष्य में भी खायगा। इसी भाग में आर्यसमाज का आन्तरिक इतिहास होगा जिसमें उसकी आध्यात्मिक श्रुतियों को दशाक्ष आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि के उद्देश की पूर्ति का मार्ग निर्दिष्ट होगा। चौथे भाग में आर्यसमाज का बाह्य ( प्राकृतिक ) इतिहास होगा, जिसमें समाजों की उन्नति और अवनति का बखान करते हुए उसकी तुलना संसार के साम्प्रदायिक इतिहासों से का जायगी। इन चार भागों के अतिरिक्त एक परिशिष्ट भाग भी होगा जिसमें आर्यसमाज के विशेष कार्यकर्ताओं की सक्षिप्त जीवनियों के साथ ही अन्य विशेष घटनाओं को स्थापन मिलेगा, जो प्राथम चार भागों में विस्तारपूर्वक नहीं दिए जा सकेंगे।

ऊपर का प्रिय व्रत दाखल भाष्य पुरण समक आपने कि मुझे किस प्रकार के वृत्तान्तों की आवश्यकता है ।”

इसके पश्चात् गुरुजिन कागड़ी में बैठकर मैंने आर्यमनाज के समाचार पत्रों के पुराने पाठ्य, आधुनिकों से भाष्य वृत्तांत और मत मतांतों तथा दार्शनिक विचारों को इतिहास पत्र आरम्भ कर दिये । गुरुजिन कागड़ी के वापिकीरसन तक, जो १६ अप्रैल सम्बत् १९७४ ए आरम्भ हुआ, मैंने बड़े छोट लगभग ३२ हजार पृष्ठ पत्र लिखे थे और इसीलिये मैंने २१ माघ सं० १९७४ के राष्ट्रमन्त्र-प्रचारक में लिखा था —

“मैंने ‘अथर्व तथा विद्यार्थी जीवन’ पर सब से पहिले पुस्तक छपवाये की प्रतिना की थी परन्तु इतिहास के लिये पुस्तकें तथा समाचार पत्र पत्र हुए विदित हुआ कि साथ के साथ लिखते जाने से उन्हीं पृष्ठों को दोबारा दर्जने में समय नष्ट न करना पड़ेगा और बाल भी सन्तापग्रस्त हुआ । इस लिये अब सारा समय आधुनिकों के इतिहास की तयारी में ही व्यय करता हूँ, जब इतिहास पूरा लिखा जाकर तय्यार हो जायगा तब निम्नी अन्य पुस्तक को हाथ लगाऊंगा ।

“बहुत से सच्चा इतिहास की लेखन शैली के प्रिय में अपनी २ सम्प्रतिषां लिख पर भेजते हैं और साथ ही आशा रखते हैं कि मैं उक्त प्रिय में उनके साथ तब-अब वादानुवाद करूँ । एने सज्जनों को एक वाद हा मूचना देना हूँ कि उन सबके उपदेशों को, इतिहास लिखना समझ, पत्र लूंगा, परन्तु वादानुवाद के लिये मेरे पास समय नहीं है । जैसी मेरी बुद्धि शक्ति मरी मानसिक योग्यता और जितना अन्य बल है यह सभी इस ग्रन्थ की तयारी में लगाऊंगा, परन्तु अपना मानभिर स्वतन्त्रता को बेचने के लिये तय्यार नहीं हूँ । आग के लिये जो सम्प्रतिषां आवेंगी उनका मान परूंगा, परन्तु लिखना स्वतन्त्रता पूर्वक आत्मा का ध्वनि के अनुकूल ही ।”

लिखना आरम्भ करने का तय्यार ही था कि मुझे विजनौर जाना पडा । यहां गन्नाल के भीषण दुःखाल का हाल मालूम हुआ । उस समय विजनौर में एक पहाड़ी सुपारा कन्या को षोला देकर भगा लाने का मुनहमा, एक मुसलमान रहैस और उसके साथियों पर, चल रहा था । मुझे बतलाया गया कि इस अवसर पर जहां प्रियवी मुसलमान भाष्य देवियों के सर्वोत्तर पर आरुपण करने का यत्न करेंगे वहां इसाई भी अपनी रोष भवन की चिन्ता म लगे हुए हैं । गुरुजिन भूमि में लौटते ही मैंने समाचार पत्रों में अपाल भेजी और स्वयं सेजकों के एक दल का धन और अनाज सहित गढ़वाल के मुख्य स्थान की ओर रवाना कर दिया और ३ मई सं० १९१८ को स्वयं भी उसी ओर चल दिया । इतिहास की तयारी धीरे धीरे रह गई ।

अगस्त १९१८ के अन्त में मैं गुरुकुल लौट आया। अपनी नोट बुक सामने रख कर भूमिका बांधने की सोच में था कि घौलपुर के आर्यसमाज-मन्दिर के गामजे को मुतभागे के लिये मुझे उधर बुला लिया गया। लगभग एक महीना उधर लगा, जिसके पीछे अक्टूबर १९१८ ई० के आरम्भ में गुरुकुल भूमि के अन्दर भी इन्फ्लुएन्जा रोग का प्रकोप घूट निकला। मुख्याधिष्ठाताजी वहाँ थे नहीं, आचार्य जी के यहाँ बीमारी ने हमला किया इसलिये वह ब्रह्मचारियों में घूम नहीं सकते थे। १॥ महीने तक मैं इसी काम में लगा रहा। यथाशक्ति उस आपत्ति के समय मैं सेवा करता रहा और गुरुकुल निवासियों की कुछ उलझनों को भी सुलझाया। कुछ समय पीछे मैं दिल्ली चला आया, दिल्ली में अपना नया बारायत मकान सेठ रघूमलजी मुझे निवास के लिये दे चुके थे, जिन्हीं अग्रतक रहता हूँ। सब सामान दिल्ली को भेज दिया और नवम्बर १९१८ के अन्त में आर्यसमाज लाहौर के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के पछे मैं स्वयं दिल्ली पहुँच गया।

### दिल्ली में फिर वही विघ्न।

मैंने अभी सब सामान दुस्त किया ही था कि इण्डियन नेशनल कांग्रेस की बैठक के दिन आगये। उस अवसर पर बहुत से ऐसे सज्जन आये जिनकी आवश्यकता में कोई अन्य कार्य न होसका। जनवरी सन् १९१९ में फिर नियम पूर्वक कार्य आरम्भ किया। इतिहास सम्बन्धा कुछ स्फुट लेख लिखे और अन्य पुस्तकों की भी तय्यारी आरम्भ कर दी थी कि महात्मा गांधी के सत्याग्रह-आन्दोलन ने मुझे उधर खींच लिया। जनवरी सन् १९२० के अन्त तक दिल्ली और पञ्जाब के मार्शल ला के पीडितों की सहायता करते बीता। उसके बाद गुरुकुल कागड़ी के शिष्यों ने फिर से गुरुकुल का चार्ज लेने को बाधित किया। मुझे बतलाया यह गया था कि यदि मैंने गुरुकुल का चार्ज न लिया तो गुरुकुल के सामयिक आचार्य उमे जेड जायगे और गुरुकुल की इतिथी होजायगी। फिर सब सामान बाहर गुरुकुल में जा पहुँचा और इतिहास का मसाला मेजों पर फैला दिया। वहाँ अवस्था ऐसी थी कि नित्य १४ घण्टे निरन्तर लगे रहने पर भी कठिनाई से गुरुकुल का काम समाप्त कर पाता था। कारण यह कि मुख्याधिष्ठाता और आचार्य का काम करते हुए मुझे कभी कभी ४ वा ५ अन्तर नित्य पठाना पढ़ना और सहायक मुख्याधिष्ठाता न होने के कारण बाहर की भी सब देखरेख मुझे ही करनी पड़ती।

### अपने स्थानापन्न का चुनाव।

इस समय तक दो तानव्यार मुझे निश्चय होगया था कि मैं अब आर्यसमाज का

इतिहास अपने हाथ से नहीं लिख सकूंगा। जब कभी इस प्रकार निगदा होता तो मेरी दृष्टि केवल दो भाष्य पुरुषों पर पड़ती। एक पण्डित घासीगाम १८०७ वर्षीय मेरठ और दूसरे प० इन्द्र मिश्रावाचस्पति। मैंने दया लिखा था कि इन दोनों ने जहाँ भाष्य लिखान्तों का भली प्रकार समझा हुआ है वहाँ श्रुति दयानन्द के जोर का भाग्य स्वान्वाय किया है। अन्य प्रकार में भाष्य इन्हीं का इतिहास लिखने के मर्यादा उपयुक्त समझता रहा और समझता हूँ। जब सन् १८२१ ई० के आरम्भ में मैं मामा हाफर ३॥ महान चाणार्ई पर पडा रहा, तब एक दिन बहुत गरम जलसे स्नान करत हुए ऐसी नुचर्चा आगई थी कि जानन का भासा नहीं रहा था। उस समय मैं एक बसीपत निरा थी जिसके द्वारा भाष्यसमाज के इतिहास लिखन का भार इन्हीं दोनों विद्वानों पर डाला था।

भोगप्रप्त होने के समय ही मैंने गुरुकुल के कार्य से त्याग पत्र दे छोडा था परन्तु उस बन्धन से मुक्ति शपथ अक्टूबर १८२१ में मिला, तब फिर इतिहासकी सारी सामग्री लन्दन में भण्डार दिल्ली लाई गई। परन्तु कुछ काम ऐसे पीछे लग गये थे जिनको बिना सुलभाये निश्चिन्त हाथ लेग के काय क निते बैठ नहीं सक्त था। पर्यन्त सन् १८२२ के अन्त में उन सबसे युक्तारा मिला और मैंने फिर से पुराना मसला देखना प्रारम्भ किया। उस समय प० इन्द्र मिश्रावाचस्पति भी गुरुकुल से अलग होकर दिल्ली आगये थे। मैंने उनको सब कुछ समझाना आरम्भ कर दिया और उन्होंने पुरानी फाइलें देखनी भी शुरू कर दीं। १० सितम्बर सन् १८२२ ई० के दिन अफाकी दल के शान्तमय असहवाग की प्रशाना करने पर मुझे अमृतसर जेल में भेज दिया गया, जहाँ से १ वर्ष का सारी सजा देकर मेरा चालाग मिश्राली जेल को होगया। दिसम्बर मास के तासरे समाह में पञ्जाब गवर्नमेंट ने यह निश्चय किया कि अफाकी सत्यग्रह में ५० वर्ष की आयु से ऊपर के सब फौदी छोड दिये जाय। उनकी अनुसारा मुझे २६ दिसम्बर सन् १८२२ को छोड दिया गया और २६ दिसम्बर को मैं दिल्ली पहुच गया।

### शुद्धि और हिन्दू सभान ।

हिन्दू सभान की आशयना मुझे जून सन् १८२२ ई० में ही अनुभव होगई थी, इसलिये उसके एक अंश, अर्थात् दलित जातियों के उद्धार, के लिये मैंने अपील कर रा। वह विचार अभा पीच में ही था कि शुद्धि-कार्य ने मुझे गाँव लिया। १५ जनरी सन् १८२३ से उसका काय म लगा रहा, फिर अग्रे सन् १८२३ के मध्य भाग से अगस्त मास तक हिन्दू सभायें बनाने और हिन्दू महासभा के लिये प्रतिनिधि चुनाने

के काम में लगा रहा। तब प० इन्द्र ने मुझे फिर कहा कि मैं ही आर्यसमाज का इतिहास लिखूँ। परन्तु साथ ही मेरे नियत किये हुए पहले दो भागों धरे अपनी योग्यता और समझ के अनुसार लिखकर मेरे सामने रख दिया। उस समय दैनिक "अजुन" का चलते कुछ महान होचुके थे और इसलिए प० इन्द्र इतिहास के कार्य से बचना चाहते थे।

मैंने फिर विश्चय किया कि तीसरे भाग से मैं ही लिखना आरम्भ कर दूँ, परन्तु उस समय कीरोनाडा कांग्रेस में अपना भाषण पढ़ते हुए मौलाना मुहम्मद अली ने अपने किमी मुसलमान मित्र की प्रेरणा से ह्यू कंगेड बड्ढा को हिन्दू मुसलमानों में आधोबाध बाटन का प्रस्ताव पेश कर दिया। इसपर आर्यसमाज के विद्वानों ने मुझे प्रेरणा दी कि इस पद्यन्त्र को तोड़न का काम मैं अपने ऊपर लूँ। तब मैंने प० घासीराम को इतिहास लिखन का काम अपने जिम्मे लेन को कहा परन्तु मुझ से दूर भेठ में रहते हुए उनके लिए काम करना सुगम न था और साथ ही जब मन देखा कि इस काम में उनकी फसाने से अन्य पुस्तकों की तय्यारी में भी बाधा पड़ेगी जो वह लिखकर छपवा रहे थे तब मैंने उनसे अविक्र आग्रह नहीं किया और यह काम फिर प० इन्द्र विद्यावाचस्पति के सुपुत्र कर दिया।

### प्रथम भाग तय्यार होगया।

आर्यसमाज के इतिहास का प्रथम भाग जिसमें प्रारम्भिक दो विषयों के अतिरिक्त आर्यसमाज के बन्ध इतिहास के भी थोड़े अंश का समावेश होगया है, सर्व साधारण के सामने प्रस्तुत है। जब किसी समाज का इतिहास पहिले पहिल लिखा जाता है तब उसमें बधा करठिनाई यह पडती है कि यदि सज्जेच से काम लिया जाय तो मुख्य और गौण घटनाओं में भेद करना पड़ेगा और यदि किसी घटना को भी न छोडा जाय और भाषा को खुली छुट्टा दे दीजाय, तो पुस्तक का आकार बहुत बढ जायगा। इस पुस्तक की लेखशैली में एक विशेष गुण यह मालूम होता है कि सन्नी घटनाओं को थोड़े शब्दों में वर्णन करते हुए उसके प्रधान भाग का लुप्त नहीं होने दिया। भाषा ओजस्विनी और साथ ही सप्रिय होने के कारण जहा सर्वसाधारण के लिये यह पुस्तक रुचिकर होगी वहा आर्य समाज के कार्यकर्ताओं को भी सरा का सीवा मार्ग दिखायगी।

पुस्तक का क्रम, मेरे प्रस्तावित क्रम से, कुछ बदला हुआ है, परन्तु वह परिवर्तन मेरी अनुमति से ही हुआ है। दूसरे भाग में बाह्य इतिहास को वर्तमान समय

तक पहुँचाकर तब श्रुति दयानन्द की निर्देश की हुई सिद्धांतमाला का तत्वान्वेषण किया जाय जिससे आर्यसमाज का अपनी श्रुतियों का पूरा ज्ञान होगा और तब भविष्यत का माग अपेक्षया अधिक सुगम हो जायगा ।

कहा जायगा कि यदि मैं आर्यसमाज का इतिहास स्वयं लिए मरना तो अपने अनुभव से उसे अधिक पूरा बना सकता । परन्तु प्रथम तो उस समय मेरे शरीर और इन्द्रियाँ ही ऐसी अस्थिर नहीं कि पुराने पत्रों और लेखों का पड़ताल कर सकूँ, और दूसरे जिन ऐतिहासिक नाट्यशाला में किसी व्यक्ति ने स्वयम् एक गट का स्थान लिया हो उसका लिख वैयक्तिक पक्षपात से बचना कठिन हो जाता है । यद्यपि जब पहले पदाल मैंने आर्यसमाज का इतिहास तय्यार करने का स्वप्न किया था उस समय अपनी निष्पक्षता पर मुझ भरोसा था, परन्तु बीच में ऐसी घटनाएँ आ चुकी हैं जिनके कारण इन के प्रभाव से मुक्त युवा के हृदय में ही यह काम देना उचित प्रतीत हुआ । मेरे जा विशेष अन्तराय अनुभव है उन के प्रकाशन के लिये कोई और साधन निम्नल आवेगा ।

इस बार छपाई के साधनों में श्रुति के कारण बहुत कुछ उन्नति के लिये स्थान शेष रह गया है जो भाशा है कि दूसरे संस्करण में पूरा हो जावेगा ।

अज्ञान-द सन्यासी



# पहला परिच्छेद ।

## धर्म का मूल स्रोत ।

तम आमीत्तमसा गुढमग्रे ऽ प्रफेत्त सलिल सर्पमा इक्षुम् ।  
तुच्छेयनाभ्रिर्पहित यदासीत्तपस स्तमहिमा जायतैकम् ॥

ऋग्वेद ।

यह सत्र जगत् सृष्टि से पहले अन्धकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सत्र जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सन्मुख एक देशी आच्छादित था । पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूपकर दिया । दयानन्द ।

‘ And the earth was without form and void and darkness was upon the face of the deep ’  
दाइविल ।

‘ आसीदिद तमोभूतमप्रजातमलक्षणम् ’ मनु० ।

यह सत्र की मानी हुई बात है कि सृष्टि के आरम्भ में अंधेरा था । केवल आत्मा के लिये ही अंधेरा नहीं था, सभी तरह से अंधेरा था । आत्मा नहीं थी, न सूर्य था, और न ही वह चीजें थीं जो देखी जाती हैं । न बुद्धि थी, न बुद्धि को रास्ता दिखाने का साधन था, और न बुद्धि से जानने योग्य पदार्थ थे । न तीर, न कमान, न लक्ष्य । तब चले क्या ? और लगे किन पर ? वन, इसी दशा का नाम अंधेरा है । सृष्टि रचना से पूर्व ससार की यही दशा थी ।

धारे धीरे सृष्टि की रचना हुई । सभी आस्तिक मानते हैं कि सृष्टि की रचना म जो इच्छा शक्ति काम करती थी, वह ईश्वर की थी । इस इच्छाशक्ति का नाम तत्त्वदर्शियों ने “ईक्ष्वा” रखा है क्योंकि मनुष्य की तरह वह इच्छा सीमित नहीं है । नास्तिकरोग, जिनका सख्या कम, परन्तु आपान बड़ी है, कहते हैं कि सृष्टि स्वयं ही बन गई । उनके बनाने के लिये किसी इच्छाशक्ति रखने वाले की आवश्यकता नहीं थी । इस स्थान पर हम उनसे बात चीत नहीं करना चाहते, क्योंकि बात चीत करने की पुरानी शक्ति अमा



तक पूर्ण नहीं हुई। पहली बात यह है कि वह राजा बिना कारीगर वा इच्छाशक्ति के बगैरे हुआ मरल, या बिना चुनाव की इच्छाशक्ति के तब्यार बिना हुआ कपटा गया दे। जब तक नास्तिक ऐसे दो भा दृष्टान्त नहीं दित्त सक्ते तब तक याचना प्रारम्भ करना नय है।

ईश्वर की इच्छाशक्ति से सृष्टि की रचना हुई। उस इच्छाशक्तिसत्त्वे की ज्ञान-शक्ति भी अन्तुत होगी। वह अनन्त जिन्यार वाला पेशीश और अद्भुत समान उसमें साक्षा है। देखिए उगका चान्कार, कि यदि उगने मनुष्य की आग पेश की तो साथ ही उनका सहायक सूर्य भा बनारा। आग देव मरुती है, परन्तु सूर्य क बिना नहीं। सूर्य या सूर्य का कोई प्रतिनिधि, अंग, और देखने योग्य वस्तु, ये तीनों मिचरन अपनी अपनी विदग्धा बजा ताते है, तब देवता जाता है। ताओं में से कोई भी सार्थक नहीं हो सकता जब तक शेष दो उपस्थित न हों। यही वस जगत् के बनानेवाले की प्रतिभा का अद्भुत चमत्कार है कि आग दी, तो राजा की माता साथ उपस्थित किये, बच्चे को स्वय चलने फिरने में अशक्त बनाया, तो माता क स्तनों में दूध दे दिया, और वस मानुष्मेह दिया जा बच्चे की सन निवृत्तामा को पुन क देता है।

जित अन्तुत इच्छा और प्रतिभा के भगवानी न आर्ष बनाई, उती ने मनुष्य को बुद्धि प्रदान की, जिसका दूसरा नाम 'अन्दर की आब' है। यह नाम यों ही कल्पना नहीं कर लिया गया, इसका बहुत जकारण आरख है। हम व्यवहार में दोनों को बहुत समान देखते हैं। आत्म, मनुष्य का, वाता वस्तुओं के परगने का मुख्य साधन है, शेष इन्द्रिया उनका महत्त्व नहीं रखती। आब राजा की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकती, निरतुल्य विवस्मी रहता है। इसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि का विस्तार करने के लिए पुस्तक, पुस्तकालय, अध्ययन, विद्यालय, कारिण, यंत्रिसिटी, और अन्वयगालना का आवश्यकता हाती है। बुद्धि महात्मा के बिना विवस्मी हा रहती है। जितनी समय और जिनी जाति को देखिये, आप बड़ी भी यह न पावगे कि मनुष्य ने बिना सिवाये राजविद्या या शास्त्रविद्या नील ला हो। ऐस दृष्टान्त पाये जाते हैं, जहा सिवाये बिना धाराक समझना और बोचना तक नहीं सीखे। मनुष्य की बुद्धि उत्पति करे मरुती है परन्तु बिना आवाक के नहीं। ज्ञान रूप से शिक्षण मिल जाने पर बुद्धि द्वारा उसका महाज्ञान बनाया जा सकता है, परन्तु बीच अग्रय आदि। यदि वह न होता तो वर्तमान सतति शिक्षा पर इतना बव न देती। मनुष्य की बुद्धि बहुत कुछ कर सकती है, वह पहाड़ों को चीर सकती है, वायु और आग को पश म कर सकती है, परन्तु असम्भ को सम्भव नहीं वा सकता, ता का बाग उत्पन्न रहा कर सकती, और बिना सहाना के देख नहीं मरुती। तिया वा व्यवहार इसमें साधी है।

यहां बतलाया है कि विना 'व्यक्तित्व' के अर्थ में 'शक्ति' का अर्थ ही मनुष्यों को सोचने की शक्ति दी, उनी ने सोचा था 'मनुष्य' का अर्थ ही था भी दे दिया । आन तालकों के गुरु अर्थात् लोम बनत है, उस समय बाल सृष्टि का गुरु वह आदिगुरु था, जिस के बर में मनुष्य पतन्त्रलि न योग्यता म कहा है कि वह पुरों का भी गुरु है, उसपर समय का अर्थ नहीं है \* । धेश में उने 'कवि' कहा है, और साथ ही कवि के का बनाने वाला 'कवि' कहा है । वह 'व्यक्तित्व' के देवनेवालों का गुरु है † । आदि गुरु होने से ही 'व्यक्तित्व' या word कहा है ।

हम इस परिच्छेद पर तो पढ़च गये हैं कि सृष्टि के आरम्भ में पहले मनुष्य या मनुष्य की बुद्धि के लिये ऐसे सगुण की आवश्यकता थी, जो नीज रूप से ज्ञान दे सकें, हन यह भी देना चुके कि उन सगुण प्रारम्भिक मनुष्यों के सिवा किसी की ज्ञान-शक्ति और इच्छाशक्ति थी तो परमात्मा की थी, इनलिये परमात्मा को ही मनुष्य जाति का आदिगुरु मानना चाहिये, परन्तु उतने पर भावक न सोच लेना चाहिये कि हम सरते छूट गये । मनुष्य की विशाल बुद्धि यदि ईश्वर की सिद्धि में "कुसुमाञ्जलि" लिख सकती है तो वह जगत के सगुण म सगुण उद्योग भी लिख सकती है । इल्लेगड के प्रसिद्ध लेखक जेम्स स्टुमर्ट विन इलहाम की असत्यता प्रकट करते हुए कई प्रश्न उठाते हैं । उनमें से सा से कडा प्रश्न यह है कि क्या सृष्टि के आदि म परमात्मा ने मनुष्यों को गुरु द्वारा उपदेश दिया ? कदा पडेगा कि नहीं, क्योंकि परमात्मा के भौतिक गुण नहीं हैं । तब दूसरा प्रश्न यह होता है कि उपदेश कैसे दिया ? या इन प्रश्न को इस प्रकार रज सकते हैं कि मनुष्य को ईश्वरीय ज्ञान का इलहाम किस प्रकार हुआ ? क्या जिस प्रकार व्यवहार में गुरु शिष्यों को उपदेश देता है ? ऐसे तो परमात्मा उपदेश दे नहीं सकता । तब यह मानना पडेगा कि परमात्मा ने मोचना किया, चमत्कार किया, आनःकपकने २ मनुष्य को ज्ञान प्राप्त हो गया । इस पर तीसरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि "क्या समार म मोचने होना सम्भव है ?"

जिम समय यह प्रश्न उठाया गया था, उसमें कुछ बल था, क्योंकि उस समय मनुष्यात्म प्रिया ने परीक्षण द्वारा अपनी सत्यता सिद्ध नहीं की थी, परन्तु अब दशा बहुत बदली हुई है । अब योग में अन्यन्त शास्त्र के बहुत से परीक्षण हुए हैं, और परिच्छेद में मेस्तरिज्म और हिन्नाटिज्म आदि वैज्ञानिक सचायों का अभिमान हुआ है ।

\* स पूर्वेषामपि गुरु कालानानवच्छेदात् । योग

† अशिक्षिता कविः सत्यश्चिप्रधरस्तम् । अश्वेद ।

× In the beginning was the Word, and the Word was with God, and the word was God ( St John's New Testament. ch 1 Verse 1 )

यह सिद्ध हो चुका है कि एक मनुष्य अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के प्रभाव से दूसरे मनुष्य को यथेष्ट ज्ञान दे सकता है और यथेष्ट कार्य करवा सकता है। मिन मोक्षार्थ के समय में यह मोजा था, आज यह वैज्ञानिक साधन है। जब एक साधारण मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति के बल से यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करवा सकता है तो क्या अज्ञान शक्ति शाला परमात्मा अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के बल से ज्ञान नहीं दे सकता? इसमें आज कुछ भी मोजापन दिखाई नहीं देता।

यहां एक और विचार उपस्थित कर देना अनुचित न होगा। मत्सर में हम कार्य-कारण की भट्ट शृंखला देखते हैं। जो आदमी पत्यार सिर पर मारता है, उसका माथा फट जाता है। जो भाग में हाथ देता है, वह हाथ जला बैठता है। क्या जड़ और क्या चेतन, सभी में कार्य-कारण भाव दिखाई देता है। मनुष्य की भनी सुनी चेतनियों के प्रभाव में इस कार्य-कारण शृंखला का नाम 'पाप पुण्य' व्यवस्था है। जो निराला फूट बैठता है, उसका मित्र उड़ जाता है, जो इच्छित भोग में अधिक फसा रहता है और समय से नहीं रहना वह शारीरिक तथा शिवायी शक्तियों को खो बैठता है, जो आवश्यकता से अधिक खा रोता है, उसके पेट में दर्द हो जाता है, इत्यादि सब दृश्यन्त सिद्ध करते हैं कि मत्सर में कुछ व्यापी विषम है, जो फटल है। यदि कोई दो एक अपवाद मिलते हैं तो वह नियम की पुष्टि ही करते हैं। बुद्ध नियम है जिसके अनुसार मनुष्यों की सुगम दुःख प्राप्त होते हैं, भटकरन से नहीं। जो मत्सर का अधिष्ठता है, वह नियम बनाता और विषम के अनुकूल मत्सर की चलाता है। वह सुखों की सुगम और भलों को बना फन देता है। यह उमका नियम है। अतः प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई अच्छा राजा अपने राज्य के नियमों को सुत भी रखा सकता है? यदि कोई राजा प्रजा को यह तो न बतावे कि चोरी करनेवाले को कैद का लयड मिलेगा पर चोर को कैद में भेज दे तो क्या चोर उसे अन्यायी राजा न कहेगा? हरक राजनियम, जिसके अनुकूल प्रजा को सुख दुःख मिलते हैं, प्रकाशित होना चाहिये। यदि कोई आदमी योज सा भा यत्र करे तो उसको पहचान होना चाहिये। सृष्टि के आगम्य में मनुष्यों की सृष्टि हुई—तब भी उन्हें अच्छे बुरे कर्मों के अच्छे बुरे फल मिलते थे। क्या उस समय मत्सररूपी राज्य के राजनियम प्रकाशित नहीं हुए थे? यदि हुए थे तो प्रश्न यह उठता है कि वह किस रूप में प्रकाशित हुए थे? दूसरा प्रश्न माना जाय तो परमात्मा को अन्यायी और अत्याचारी राजा मानना पड़ेगा, क्योंकि जो राजा यह नहीं बताता कि

कौन २ से कर्म बुरे हैं, जिन्का दण्ड मिलता है और दण्ड दो को सप्या हो जाता है, उसे सिवाय अन्यायी और अत्याचारी के कुछ नहीं कह सकते ।

इस सारे तर्क का परिणाम यह निकलता है कि सृष्टि के आरम्भ में एक नियम सप्रह का होना आवश्यक है । मनुष्य की बुद्धि बिना सहायक के स्वयं ही मत्र कुछ उद्घातित नहीं कर सकती । वह ज्ञान, जो सृष्टि के आदि में मनुष्यों को ईश्वर की आर से प्राप्त हुआ, धर्म का मूल स्रोत है । वह मूल स्रोत कौन सा है ?

हमारा उत्तर है कि ऋगादि वेदों की सहितार्थ ही धर्म के मूलस्रोत हैं । यह क्यों ?

( १ ) धर्म का मूल स्रोत वही हो सकता है जो सृष्टि के आरम्भ में हुआ हो । अन्य कोई भी धर्म पुस्तक सृष्टि के आरम्भ में होने का दावा नहीं करती । पारसियों की धर्म पुस्तक "जिन्दायस्था" को बने लगभग ३८०० साल हुए हैं । डा० हौग उनके समय को पीछे ले जाते हैं तो ८१०० सालों से अधिक पीछे नहीं ले जा सकते । पटाल्यूक ( Pontatuech ) को बने ३२६० साल हुए हैं । 'बाइबिल' का समय अधिक से अधिक १६२४ समझा जा सकता है, यद्यपि इसमें सन्देह है कि नाद्विक का कोई भी भाग क्राइस्ट के समय में बन गया था । 'बुरान' को बने १२५० साल से अधिक नहीं हुए, कम ही हुए हैं । यह ईश्वरीय ज्ञान होने के अन्य उम्मेद्वारा की ग्या है पर वेदों की दशा दुमगी ही है । इसमें तो सन्देह ही नहीं कि वेद इन मनुष्यों के पुराने परिच्छेद को दिखाने वाला है ।"

जिस समय यह शब्द लिखे गये थे तब से आज तक किसी नाम के मनुष्य ने इस उक्ति का उपडन नहीं किया है । यह सर्वसम्मत बात है कि वेदों के अलावा अन्य मनुष्यों के लिखे म वेद सत्र से प्राचीन पुस्तकें हैं । सृष्टि के आदि में होने के कारण वेदों के सामने ढाले पड जाते हैं ।

( २ ) ज्यों २ खोज गहराई में जा रही है, त्यों २ खोज गहराई में जा रही है । हम नीचे एक तालिका देते हैं जिसे हमें पुराने मनुष्यों के समय किस प्रकार पीछे ही पीछे चलता जा रहा है ।

तीर्थों का वस्तुनिष्ठ मापन ।

नाम	फल मापन ।	व्यय के अर्थ ।
सौराष्ट्र	२००० वर्ग इ० ५०	१५०० १५०
सौराष्ट्र	१००० १	१००० १
हीन	१०० २	१००० १
सौराष्ट्र	१५०० १	१००० १
सौराष्ट्र	१ १	१ १
सौराष्ट्र	१ १	१ १
सौराष्ट्र	१ १	१ १
सौराष्ट्र	१ १	१ १
सौराष्ट्र	१ १	१ १
सौराष्ट्र	२४०,००० १	६,०००,०००,०००

जब प्रकृत हा देगते हैं कि विश्वों की गतांश का पत्र ही प्रकृत से जन्म लेता है, जिसका पत्र मन्त्र प्रकृत है, उगत हा सवा प्रकाश है जो है कि प्रकृत उगत भा पुगने है ।

( ३ ) और कई भी वस्तुनिष्ठ सृष्टि के क्षण में होते का दावा नहीं करता । वेदान्त ही इसका दावा करते हैं । यह अपनी उगत सृष्टि के क्षण में ईश्वर से बनता है,—देखिये —

तस्माच्छब्दात्सृष्ट्युत्पत्त्यात्तन्मयात्प्रकृतौ ।  
 सृष्ट्यात्तन्मयात्तन्मयात्प्रकृतौ ॥

श्रुति १० । २० । २  
 यजुः १० । १७ ।

उमा सर्वा प्रकृत समस्ता ये कृक, सप्त, अर्थ और यजु उगत है ।  
 यस्माद्भूक्षा सृष्ट्यात्तन्मयात्तन्मयात्प्रकृतौ ।  
 तस्मानि यस्य लोमान्यथात्तन्मयात्प्रकृतौ ॥  
 सृष्ट्युत्पत्त्यात्तन्मयात्तन्मयात्प्रकृतौ ॥

अर्थ १० । २३ । ४ । २०

जिस जगत्प्रायः यमात्मा से प्रकृत, यजु, सप्त और अर्थ उगत है, उससे यजुर्गै ररूप की कहो ।

ऊपर तीन वेदों के दो मन्त्र दिये गये हैं । पहला मन्त्र तो वेदों में सामान्य रूप से आया है । यह सृष्टि प्रकृत है । सृष्टि के आत्मा की रूप रचना के साथ वेदों के

अभिभाव का भाव कथम है । पत्नी स्पष्टता और सीधे तौर पर किसी भी दृग्गी धर्म पुस्तक ने ( १ ) सृष्टि के आदि में होने और ( २ ) परमात्मा से उपन्न होने का दावा नहीं किया । धर्म का मूल श्रोक वह हो सकता है जो सृष्टि के आदि में हुआ हो या धर्म से धर्म और सब से पुराना हो, उस स्थान का एक ही उद्देश्य है और वह ' वेद ' है ।

इस स्थान पर वेद, इज्जल, कुरान आदि की तुलना या सापेक्षक आलोचना करना व्यर्थ और अप्रसंगिक है । हमें वेदों के इतिहास शृंखला का पहली कड़ी देखनी है, जिसकी अन्तिम कड़ी आर्यसमाज है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उन शृंखला की पहली कड़ी ' वेद ' है । ससार के इतिहास में कोई भी ऐसी धर्म पुस्तक नहीं जो प्राचीनता में वेद का सामना कर सके । ऊपर जो सूत्र दिये गये हैं उन से यही प्रतीत होता है कि वेदों का अविभाव उसी समय प्रारम्भ हुआ जब आर्यजाति का प्रारम्भ हुआ परन्तु यदि इस स्थापना को कोई प्रसिद्धि करे तो भाग उसे इतना ता मानना ही पड़ेगा कि वेद ससार के धर्मरूपी भवन का पहली ईंट है । आगे हम दिखलायेंगे कि वही उस भवन की आधार भूत ईंट भी है ।

## दूसरा परिच्छेद

### स्रोत का फैलाव ।



चिरकाल तक वेदसंहिताओं का जाप, और उनका अनुसार शासन ही प्रचलन रहा। हिमालय का ऊँचा चोटियों और गहरी वन्दराओं में वेदमन्त्रों का अनुशीला और गनना होता रहा। वह समय धन्य था, क्योंकि उस समय धर्म अपने सादे और साफ रूप में विद्यमान था। लम्बे २ व्याज क्रियावलायों और पचदश सिद्धान्तों की उस समय न मत्ता थी और न आवश्यकता थी। वह धर्म का स्रोत, जिम से उम समय की प्रजा जलपान करता थी शुद्ध और निर्मल था।

परन्तु सग वह दगा न रही। वह स्रोत फैलना हुई थाय जाति क साथ चारों भाग फैलने लगा। वेद तीन जातियों में और निम्न भूमियों में से होकर निरना, जहाँ उनकी प्याय बुझता गया, वहाँ साथ ही साथ उनकी विशेषताओं से प्रभावित भा होता गया। उसके जा द्रवर्ती परिणाम हुए उनकी चचा अगले परिच्छेदों में कोगे, इस परिच्छेद में हम उन धाराओं का वर्णन करेगा है जो वैदिक स्रोत से सीरी तीर पर निरली और वैदिक विचार मात्र का परिणाम थीं। वह धाराय तीन थीं—जिनम से दो भारतवर्ष म बह निकली और एक कुछ दूरी पर—इरान अथवा आर्य देश में जाकर पारसी धर्म के रूप में प्रकृत हुई। आचार्य म जो धाराय थी, वह ब्राह्मणों के कर्मवाद, और उपनिषदों के ज्ञानवाद के रूप में प्रकृत ह। इन दोनों में और ईगन वाली धारा म इतना ही भेद था कि जहाँ पहली अपना मूल वेदों की कहती रही वहाँ दूसरी, समय और स्थान का अधिक अन्तर हो जाने से, मूल को मूल नी गई। अब हम उन तीनों धारायों का सक्षिप्त वर्णन पाठकों की मठ करते हैं।

### ब्राह्मणों का कर्मवाद ।

हमने ऊपर कहा है कि वेदसंहिताओं के धर्म में सगलता और पवित्रता यह दो गुण थे। पीछे से वेद को तीन भागों में विभक्त करके उनके तीस

गायड बतलाए गए हैं, यह तीनों ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड कहलाते हैं । वेद में तीनों का विस्तार है—परन्तु बहुत सादगी और सरलता के साथ । सीधे रागे, म जान बूझकर गाठ नहीं ढी गई, और सुखप्रद अटारी में भूलभुलप्या नहीं ब्राई गड । वेदों में प्रायः सभी जड चेतन पदार्थों का ज्ञान है, आभश्यक वर्णन है, परन्तु कहीं भी शब्दों की उलफन या विचार के टडेपन म उसे डिपाने का यत्न नहीं किया गया । एक ही दृष्टान्त पर्याप्त होगा—

“इशायास्वमिदं च सर्वं यत्किञ्च जगत्प्राञ्जगत्”

ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं, सब में परमात्मा व्याप्त है । कैसा सरल और स्पष्ट णव है । कहीं २ वेद के सम्बन्ध में जो कठिनता अनुभव होती है उसका यह कारण ही कि वेद में कोई कठिनाई रखी गई है, उसका कारण यह है कि वेद की भाषा पानी होगई है । उसके शब्दों के असली मूलार्थ सदियों की काई ने छिपा दिये ह सरा कारण, और बडा भारी कारण यह भी है कि स्वार्थ या मोह के वश म आकर द म से ऐसे अर्थ निकालने के यत्न हो रहे हैं, जो मूल संहिता के अभिप्राय से बेलकुल उल्टे पडते हैं । वेदों की कठिनाई के ऐसे ही कारण हैं—जहा यह कारण काम नहीं करते वहा बेदमन्त्रों की सरलता अचम्भे में डालने वाली है ।

इसी प्रकार कर्म-विधान की व्यवस्था है । वेदों में कर्मों का विधान है—मनुष्य के कर्तव्यों के सम्बन्ध म आशय है । यथा

‘सगच्छं च समदधु स ध्यो मनांसि जानताम्’

हे मनुष्यो ! तुम्हारी गति और धारणी परस्पर अनुकूल हो । तुम्हारे मन परस्पर समान विचार करने वाले हों । इसी प्रकार से परमात्मा के उपासना के सूक्त हैं—परन्तु यह भी सरलता लिए हुए हैं ।

यह मनुष्यस्वभाव है कि वह सादगी और सरलता से सन्तुष्ट नहीं होता । सरल बात उसके लिये जल्दी ही पुरानी हो जाती है, वह नयापन ढूँने लगता है, इसलिये सरल सुन्दर मुखडे पर जेवरों की भरमार शुरू होती है । पुरानी सीधी सांगी सचाई से धरकर वह नई पेचीदा व्याख्याएँ करने लगता है—अन्यथा उसके चित्त म असन्तोष बना रहता है । मनुष्य बुद्धि स्वभाव से सरल बात को पेचीला बना म ही व्यथ होती दिखाई देती है । वेदों के साथ भी यही हुआ । वेदों के सरल और सीधे उपदेशों की सुन्दरता बनाने के लिए समय के साथ धीरे २ ज्ञान और कर्मादि का विस्तार होने लगा । यह निम्तार जिन २ शाखाओं म हुआ, उनमें से प्रथम ब्राह्मणों का कर्मादथा ।



यह कदा गो कठिन है कि ब्राह्मणों की रक्षा मात्र में किन्तु समय पूर्व श्राद्ध  
हुई-पशु श्रम सन्दर्भ में कि भारतीयों में वेदों के पीछे जो विषयों का  
पशु सगठन हुआ, यह ब्राह्मण ग्रन्थों में पाये जाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रारम्भ  
विषय दो हिस्सों में बंटा जा सकता है। एक व्याख्यान और दूसरा विधान। ब्रह्म  
वेदान्त और मन्त्रों की व्याख्या करने के। यह व्याख्या कही मन्त्ररत्न से है।  
कही पद्य की विधि का मन्त्र से है। यह व्याख्या करने वाले के हृदय में एक कवि  
का रस है कि मनुष्य की सुखी साखला में देवदान वेसे हुए रोती है। दो एक श्राद्ध  
पर्याप्त होगा—

एक वेदान्त का दुकटा है—'युद्धा हि देवदुर्गां धरवीं जाने रथारि' इत मन्त्र में  
उपमा रूप से कहा है कि 'जो रथी लोग घोड़ों को जीने देते हैं ही है परमात्म  
जाने। तू राम देवताओं को—भौतिक शक्तियों को—भरवीं र कार्य में लगा।' जो  
देवताओं को घोड़ों से उपमा दी गई है। उपमाने-उपमाय रातू है—समानता हिन्दु  
निर्मित है, परन्तु इत से ब्राह्मण ग्रन्थों का सात्त्विक कदा होने लगा था। देवताओं  
पक्षन पत्रिका में उनकी इन प्रकाश व्याख्या है—

'ताद समायेयाग-छति समेयसुन्यते सामभ्या भूषा  
पश्चिमरपागत यद्भ्याभूत्या पश्चिमरपागत तद्भ्याना  
मभ्यत्व मभ्रुते यद्यत्तामपत्त य पय वेद। तस्माद्भव  
पशुनां जविष्ट'। तस्माद्भवः प्रपद्परा दिनस्ति। अप  
पामान हते य पय वेद। तस्मादेतद्भवदान्य भवति।'

देवता लोग आगे का चले, और असुर लोग उनके पीछे ही पीछे चले आये।  
देवताओं ने जब और उपज्य उ देगा तो घोड़ों का रूप धारण कर के पिछले वेदों से  
मारना शुरू किया। घोड़े होकर पिछले पात्र से मारा—यह अर्थों का अर्थ है। जो  
आदमी इस बात को जानता है वह जो सुत्र चाहता है प्राप्त का योग्य है। इसी लिये  
घोड़ा सब पशुओं से तज है। इसी लिये यह पिछली दुलसिया से मारता है। जो  
आदमी इस बात को जानता है, वह जो फल चाहता है प्राप्त करना है। इसी लिये  
अध के समान देवताओं का आध विधान है।

एक और नमूना लीलिए—आश्रित्य शब्द की व्याख्या करते हुए गोपय ब्राह्मण  
लिखा है—

'अश्रित्वं प्रजाकामोदमपचत्। तत पञ्चिष्टमभत्। तस्मात्तमपच तत आ-  
श्रित्वा प्रजायन्त।'

आदिति ने पुत्र की इच्छा से मात तप्यार किया । उस भाग का शेष भाग खाया । उससे गर्भ होकर आदित्य उत्पन्न हुए ।

इस प्रकार की व्याख्यायें ब्राह्मणों में बहुत हैं । ब्राह्मणकारों ने सरल बात का महत्व पूर्ण कारण बताने के लिये प्रायः इसी प्रकार की कल्पनाओं तथा अर्थवादों से काम लिया है । मनुष्य बुद्धि इसी प्रकार बहुत सीधे अर्थ में उलझन डाल लिया करती है । यहां पर यह हृदय में अभिजात कर छोड़ना चाहिये कि ब्राह्मणों के इन्हीं अर्थवादों के विस्तार का नाम पुराण हुआ । पुराणों में ब्राह्मणों की इन अद्भुतकल्पनाओं की नींव पर और भी अधिक शान्दार कल्पनाओं के महल खड़े किये गये हैं ।

ब्राह्मणों की इन कल्पनाओं को दिखाने से हमारा यह तात्पर्य नहीं कि उनमें सिवा कमेले के कुछ है ही नहीं । आज भी बहुत से वैदिक शस्त्रों के मूल अर्थ जानने में ब्राह्मण ही एकमात्र सहायक हो सकते हैं । मन्त्रों और मन्त्र खण्डों की व्याख्याद्वारा ब्राह्मणों ने वैदिक जनता का उपकार भी बहुत किया है—इसमें सन्देह नहीं ।

दूसरा विषय है । ब्राह्मणों का मुख्य अंश यही है । ब्राह्मण नित्य नैमित्तिक यज्ञों की विस्तृत व्याख्या के लिये लिखे गये थे । यह कार्य वेदमन्त्रों की व्याख्या और चर्चा के बिना असम्भव था—इसलिये ब्राह्मणों में यज्ञों की विधि और यज्ञसम्बन्धी वेदमन्त्रों की व्याख्या—यह दोनों ही कार्य साथ साथ पाये जाते हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों की विधि की विस्तृत व्याख्या है—और उसके एक २ अंश का कारण समझाने का भी यत्न किया गया है । मुख्य ब्राह्मण यज्ञ को ही प्रधान मानकर उनकी व्याख्या करते हैं ।

यह कहना तो ठीक नहीं कि ब्राह्मण केवल कर्मयज्ञ को धर्म मानते हैं—ज्ञान या उपासना को तुच्छ समझते हैं, क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में एक स्थान पर भी ज्ञान कर्म आदि की तुलना नहीं की गई । तुलनामें पीछे हुई और ब्राह्मण ग्रन्थों को ही धर्मग्रन्थ माननेवालों ने

“आम्नायस्य क्रिपार्थत्यादानर्थक्यमतर्धानाम् इत्यादि

मीमांसा सूत्रों की यह व्याख्या की कि वेद का उद्देश्य केवल यज्ञ की विधि बतलाना है—जिसका तात्पर्य यज्ञ में नहीं, वह अनर्थक है । ब्राह्मणों में केवल कर्मांश की व्याख्या है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय दो भागों में बाटा जाय तो वह दो भाग व्याख्यान और विधान कहलायेंगे । उनमें से पहला भाग आगे चलकर पुराणों और अन्य देशों की Mythology की कल्पनाओं का कारण हुआ और दूसरा भाग कर्मवाद और Ritualism का मूल सिद्ध हुआ ।

## २. उपनिषदों का ज्ञानवाद

कर्मका बहुत उद गया—उन्की अन्वन्ता से कमन्तु ह्यस्त तथा वशे  
की ध्याव्या के निये आरग्यनों और उपनिषदों की रचना हुई। पहला उपनिषद् ईश  
पनिषद् है—यह यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय है। शेष उपनिषदों ने उन्ही की-के  
श्रुतला का अनुसरण करते हुए गहरे ज्ञानवाच की व्याख्या की है। यह कहने की भा  
वश्यकता नहीं कि उपनिषदों नाम और से उम कस्तार का प्रयोग करती हैं, जो ब्रह्म  
ग्रन्थों से कलकता है, और ब्राह्मण ग्रन्थों के मुख्यतः म कई। ज्ञानकाष्ठ की च  
नहीं, इसलिये स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थों से पीछे उपनिषदों का रचना हुई।

उपनिषद् म ब्रह्म की व्याख्या है, और उनके ज्ञान को सच से मुन्ना मात्र गराई  
'श्रवा दंत अन्ना वा स्वा' इत्यादि याम्यो द्वारा उपनिषदों ने स्था २ पर कने।  
निबलता बनाई है और 'निचायतन्त्युमुपात्प्रमुच्यते' ( षट् ) 'तनायन्त्य  
उनुपश्यन्ति धीरा स्तेषा मुत्त शाश्वतन्नेतापात्त ( षट् ) 'भोन्त्येव ध्यायथ आम  
न्वन्ति व पाराय तमन परस्तात्' ( मुषडक ) इत्यादि याम्यो म ज्ञान का गौ  
श्रिताया है। उपनिषदों से ज्ञान की वृ दार्शनिक लहर उत्पन्न हुई, जो वैशेषिक  
प्रारम्भ होकर वेदान्त में, और फिर यहां से विरूढ होकर "ग्यवद्वन रगडग्यथ" से  
"पञ्चलक्षणा" में समाप्त हुई। जिस ज्ञान का गर्भोत्पत्ता क लिए भारतवर्ष ने इ  
प्रतिष्ठा प्राप्त का थी, उरका प्रारम्भ यहीं से हुआ।

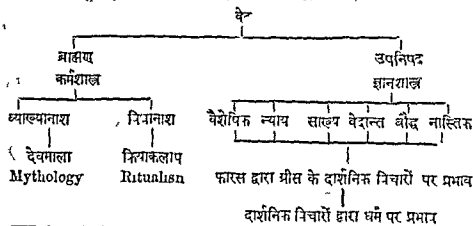
उपनिषदों की प्रारम्भ की हुई ज्ञान-लहर का कहा २ तक प्रभाव फैला, उस वि  
की विस्तार प्रथम विवेचना यहां आवश्यक नहीं है। हम देख चुके है कि भारत  
के दार्शनिक विचारों का पहला विस्तारसहित आविर्भाव उपनिषदों में हुआ और प  
नितनी दार्शनिक शाखाओं आविर्भूत हुई, उनका बीज यदि वेद में था, तो उनका २  
उपनिषदों थी। भारतवर्ष से बाहर भारत के दार्शनिक विचारों का कहा तक अ  
हुआ, इन विषय का विस्तृत विवेचना क लिये यह स्थान बहुत छोटा है, पर  
संक्षेप से इतना बना देना अनुचित न होगा कि पुराने ग्रीस आदि देशों के दार्शनिक  
ने उनसे बहुत सा लाभ उठाया था। मि० रिचर्ड गार्ग अपनी 'Philosophy of  
Ancient India' नाम की पुस्तक में लिखते हैं—

'फारस द्वारा ग्रीक विचारों के भारत से प्रभावित होने की ऐतिहासिक सम्भरता को  
बिना सन्देह के मानना पड़ेगा, और इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि उनपर

लिखे हुए विचार भारत से ग्रीस को प्राप्त हुए । \* येन्म, एम्पिटाक्राज, प्रनस्टसू-गोरस, डिमोक्रिटम, और सबसे बड़कर पाइगोरस ने भारत के दार्शनिक विचारों को खूब ही अपनाया था । यह सर्वसम्मत बात है कि योग्य के सत्र दार्शनिक विचार ग्रीस के दार्शनिक विचारों से प्रारम्भ होते हैं । इस प्रकार यह कह देना अयोग्य नहीं कि योरप अपने दार्शनिक विचारों के लिये भारत का आभारी है ।

यहां यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि धार्मिक विचारों के इतिहास में दार्शनिक विचारों की चर्चा क्यों डाती गई ? इसका उत्तर यह है कि इन दोनों प्रकार के विचारों का आपस में बहुत गहरा सम्बन्ध है । ईश्वर का सत्ता एक धार्मिक सिद्धान्त है, परन्तु यह प्रत्येक दार्शनिक के विचार का पहला विषय है । जीवात्मा है या नहीं ? मनुष्य करने में स्वतन्त्र है या परतन्त्र ? कर्मों का फल मिलता है या नहीं ? परलोक है या नहीं ? यह सत्र प्रश्न एक धर्माचार्य के लिये उतने ही आवश्यक है, जितने आवश्यक कि एक तन्त्रवेत्ता के लिये है । धर्म के भिन्न २ रूपों पर दार्शनिकों के विचारों की उपेक्षा नजर आती है । इस कारण यह मानना पड़ेगा कि भारत ने योरप को यदि दार्शनिक उपहार दिया है, तो योरप के धार्मिक विचार यह नहीं कह सकते कि हमने कुछ नहीं लिया, ईश्वर जीव परलोक आदि विषयों में ग्रीक तन्त्रवेत्ताओं द्वारा योरप को भारत ने बहुत कुछ दिया है, और यह धर्म की आधारशिलायें हैं ।

ब्राह्मणों और उपनिषदों द्वारा वेदों ने किम प्रकार सत्ता के धार्मिक विचारों को प्रभावित किया है, यह नीचे के चित्र से स्पष्टतया प्रतीत हो जायगा—



1 The Historical possibility of the grecian world of thought being influenced by India through the medium of Persia must unquestionably be granted, and with it the possibility of the above mentioned ideas being transferred from India to Greece

## ३. पारसी धर्म

आर्यपुराणों की एक धारा मध्य एशिया से होती हुई ईरान में जा बसी। उस धारा के लोग पारसी कहाये। उन लोगों का धर्म पारसी धर्म कहा जाता है। यह अपने भाइयों के पुराने वैदिक धर्म के साथ लेगये थे—परन्तु समय और स्थान के व्यवच्छेद से यह बहुत विकृत होगया। उस समय पारसियों में एक ब्रह्म का सुधारक उत्पन्न हुआ जिसने फिर से पुराने धर्म के उद्धार का यत्न किया। उस सुधारक का नाम स्फि-तामा जगदुस्त या पितामह जगदुस्त था। वह ध्यानावस्थित होने के लिये फारस से पूर्व की ओर गया और अपनी जाति के धार्मिक विचारों का सुधार करने का सकल्प करके व्यापित हुआ। इस समय हम जगदुस्त से पूर्व के विकृत पारसी धर्म के चिन्ह नहीं मिलते मशोत्रिन हुआ पारसी धर्म विस्तारपूर्वक मिलता है। उसके देखने से स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि जगदुस्त जिस धर्म का प्रचार करता था, वह वैदिक-धर्म का एक शाखा थी।

यहां इस विषय पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। सर विलियम जोन्स, प्रो० मैक्समूलर, और डा० हाग आदि विद्वानों ने इस का बहुत विस्तार पूरक और मार्मिक व्याख्या की है—जिसके होते हुए सिद्ध करने को शेष कुछ नहीं रह जाता। उन लोगों ने बहुत अच्छी प्रकार से बतला दिया है कि पारसियों की धर्मपुस्तक जिन्द अस्तक की भाषा सस्कृत का रूपान्तर है, जिन्द भवत्या के उपदेश वैदिक उपदेशों से ८० फीसदी मिलते हैं, पारसिया के कर्तव्य धर्म और मङ्गल वैदिक क्रियाओं की छाया मात्र हैं। हम यहां थोड़े से प्रमाण देकर ही सन्तोष करेंगे, क्योंकि यद्यपि विषय बहुत ही लम्बा और मनोरंजक है, तथापि हमारे पास स्थान परिमित है।

(१) पहले भाषा को लीजिए। सर विलियम जोन्स जन्द भाषा के विषय में लिखते हैं—“जब मैंने जन्दभाषा के कोष को पढ़ा, तब मुझे बख्शतीत आश्चर्य हुआ कि उसके दश शब्दों में से छ या सात विशुद्ध सस्कृत के हैं और कई तो व्याकरण से बने हुए रूप में भी समान ही हैं—जैसे सुम्हद का बहु वचन सुम्हाकर।” (एशियाटिक रिसर्च) डा० हाग इस भाषा के बारे में लिखते हैं—

‘ब्राह्मणों के और पारसियों के पवित्र सूत्रों की भाषाएँ एक ही जाति के दो भागों की भाषाएँ हैं’ Essay

दूसरे स्थान पर आप लिखते हैं—

“विशुद्ध गारनर न होनी हुई भी, वह भाषाएँ इतनी समान हैं कि एक सस्कृत का थोड़ा सा ज्ञान रखने वाला भी कल्पित उन्हें पहिचान सकता है।”

प्रो० मैक्समूलर लिखते हैं—

“उसकी ( युगन बनेक की ) किताबों से और कौपकी की तुलात्मक व्याकरण की कीमती टिप्पणियों से स्पष्ट है कि व्याकरण और कौप की दृष्टि से जन्म भाषा अन्य इण्डो-योरपियन भाषाओं की अपेक्षा सस्कृत के बहुत समीप है” *Cups Vol 1*

( २ ) अथ सिद्धान्तों की समानता लीजिये । वैदिक-धर्म के मूल सिद्धान्तों में से एक मुख्य सिद्धान्त वर्णव्यवस्था का है । मनुष्य समाज को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र-इन चार भागों में बाटा गया है । पारसी धर्म में भी यह चार भाग रखे गये हैं ।

प्रो० डार्मस्ट्राट अपनी जन्म अवरथा की भूमिका में लिखते हैं—

“हम इस ( डिकर्ट ) में चार श्रेणियों का वर्णन पढ़ते हैं, जो ब्राह्मणों के जातियों के उत्पत्ति सम्बन्धी लेखों का बल पूर्वक स्मरण दिलाते हैं, और जो अवश्य भारत से लिया गया है” ।

जन्म में जाति के पुरोहित, रथी, खेतौ करने वाला और हाथ से काम करने वाला-यह चार भाग किये गये हैं ।

( ३ ) पारसियों के उपास्यदेवता वैदिक देवताओं से मिलते हैं—यद्यपि पारसी उन्हें देवता नहीं कहते । पारसियों का मुख्य ईश्वर अहुरमजद या असुर महान् कहता है । अर्षमन् के स्थान में आपमन्, मित्र के स्थान में मिथ्र, नागशस के स्थान में नयोंसन्हा वृषध्न के स्थान में वृषन्न, और भग के स्थान में वध-यह उनके उपास्य हैं । वेदों में जैसा वरुण देवता का वर्णन है, उसी प्रकार का जन्दावस्ता में महान् असुर का वर्णन है । वैदिक साहित्य में ३३ देवताओं का कथन है—( तथास्तिशदै देवा — ब्राह्मण ) जन्दावस्ता में उनके स्थान पर ३३ रतु कहे गये हैं ।

दोनों में एक भेद है । वैदिक परिभाषा में देव शब्द का प्रयोग उत्कृष्ट अर्थों में होता है, जन्म की परिभाषा में वह बुरे अर्थ देता है । वहा परमात्मा को असुर कहा गया है । वेद में देव और असुर दोनों ही शब्द ईश्वर के लिये आते हैं—और उत्तम अर्थ देते हैं । ब्राह्मणों में असुर शब्द बुरे ही अर्थों में आता है, उसका अच्छा अर्थ बिल्कुल लुप्त हो गया है । ब्राह्मण ग्रन्थों ने असुरों को देवताओं के सामने सदा नीचा दिखाया है । इस भिन्नता से दो बातें प्रतीत होती हैं । प्रथम तो यह कि पारसी धर्म के विचार वेदों से लिये गये हैं—ब्राह्मणों से नहीं । दूसरी बात यह कि ब्राह्मणों और जन्म के लेखकों के दिलों में एक दूसरे के लिये एक विशेष विरोध भाव था—यही कारण था कि वह दोनों एक दूसरे के उपास्यों को नीचा दिग्गमे का यत्न करते थे । यह विषय मनोरञ्जक है और इसकी विस्तृत विवेचना बहुत से ऐतिहासिक रहस्य उद्घाटित कर सकती है परन्तु उसके लिये यहाँ ७.

( ४ ) दातों के यज्ञ में बड़ा समानता है। पुरे और पठ की विधियों में बड़ा भी सा मिलता है। यज्ञ के विषे परमियों के परम यन्त्र शब्द हैं। होता दो यह जोता कडत है, मभय क मग १ उनके पास मभय शब्द है। इष्टि और आहुति पार रियों का इष्टि और आहुति है। यज्ञ का विधिया तक एक ही है। ज्योतिष्योम दर्श पीतनाम आदि तानान्तर से जन्म में पाये जाते हैं। सोमयज्ञी का नाम पारसिया में होम है।

( ५ ) पात्मा लोगों के लिये यज्ञोपनीत का नियम है। गौ मारने तथा मास गाने का नियम है। पुत्रनेम का गिद्धात जन्दायस्ता में पाया जाता है। सृष्टि की उत्पत्ति का जन्दायस्ता में जो वर्ण है वह वेदों और उपनिषदों के सृष्टि प्रकार का स्वरूप करता है।

उपर के लेख से सिद्ध है कि पारमियों का यह धर्म निरुपदेश उपदेश जन्दायस्ता द्वारा अद्वयत ने किया था, वैदिक धर्म का रूपान्तर है। यह हम पहले दिवा आये है कि वेदों का समय जन्दायस्ता के समय से बहुत पहले का है। इससे स्पष्ट है कि जैसे भारत में वेदों से ब्रह्मण्य ग्रन्थों का धर्म उत्पन्न हुआ, उन्ही प्रकार फारस में अमुर धर्म विन्वृत हुआ। दोनों में भेद इतना ही है कि एक ने अपने मूल को याद रखा और स्वीकार किया, दूसरे ने उसे भुलाने का यत्न किया और भुना दिया। \*



\* पात्सीधर्म के बारे में हैं। हाग के निबंध और डार्मल महत्त्वपूर्ण है। वैदिकधर्म और ए का 'धर्मों का मूल स्रोत' वैदिकधर्म यह द्रैकट देखने

# तीसरा परिच्छेद ।

## प्राचीन विश्वासों पर वेदों का प्रभाव

### चीन और मिस्र,

हम यह निश्चय नहीं किया चाहते कि सभ्यता में विज्ञान मन सम्प्रदाय या धर्म उत्पन्न हुए हैं उन सब की प्रत्येक बात ब्रह्म से ला गई है । यह न केवल उपहास है—असम्भव भी है । न हम यही यतना चाहते हैं कि मनुष्यबुद्धि ने अभी तक धर्म के क्षेत्र में कोई नया काम नहीं किया । मनुष्य के दिमाग ने पहले विज्ञान मन्त्रालय के आगार पर बहुत सी धार्मिक और आत्मिक सचवाइयाँ गूदी की हैं । यहाँ यह दिखाना अभिप्रेता है कि कई मार्गों से होते हुए वर्ग के विचार प्रायः मनुष्य जानि क हरक भाग में पहुँच चुके हैं और अपना प्रभाव उत्पन्न कर चुके हैं । मूल सोल के गाले और नालियों का जल बड़े २ मत मतान्तरों की नदियों में मिलकर उन पर प्रभाव उत्पन्न करने का यत्न कर चुका है । जो धर्म साथे वर्गों से उत्पन्न हुए उनकी चचा हम ऊपर कर चुके हैं—एक बौद्ध धर्म रहा है—निमकी चचा आगे की जायगी । यहाँ उन मतों और विश्वासों के बारे में कुछ कहना है जो वैदिक-धर्म से उत्पन्न नहीं—बेजल प्रभावित हुए हैं । प्राचीन धर्मों में कई बातें इतनी समान पायी जाती हैं कि उनकी सत्ता आकस्मिक नहीं हो सकती । प्रातः होता है कि अन्त्य ही किसी समय इन सब जातियों के परस्पर सामान्य तथा मेल जोत रहे होंगे, और जो प्राचीन धर्म था उससे शेष सब प्रभावित हुए होंगे । एक २ धर्म की वैदिक धर्म के साथ जो समानताएँ हैं, उन्हें दिखाने के लिये यह स्पष्ट उचित नहीं है । यहाँ तो हमें केवल धार्मिक विचारों का विकास और विन्तार देखना है । उसके लिये समानताओं का निदर्शन मात्र पयाप्त है ।

### चीन का प्राचीन धर्म

जब हम नीचे के प्राचीन सिद्धान्तों पर दृष्टि डालते हैं तो हम भारत के प्राचीन धार्मिक विचारों के साथ अपूर्व समानता दिखाई देता है । चीन की इशा से २५१४ वर्ष पूज की धार्मिक अस्त्या पर दृष्टि डालते हैं तो हम दिखाई देता है कि यहाँ के लोग परमात्मा को पिता और पृथिवी का माता मान कर पूजते थे । परमात्मा धर्म और अज्ञान का अच्छा और सुगुण फल देने वाला था । सब से बनी बात यह है कि उस समय के चीन के धार्मिक विचारों में शैतान या नरक के लिये कोई स्थान नहीं था ।



चीन के प्राचीन धर्म का इतिहास देते हुए प्रो० हर्नर ए गार्डिन अपने Religious of Ancient China नाम का पुस्तक में लिखते हैं ।

"In this primitive monotheism, of which only scanty, but no doubt genuine records remain, no place was found for any being such as the Buddhist Mara or the Devil of the old and new Testaments "

"इस प्राचीन एकेश्वरवाद में, जिसके बहुत कम पन्तु समालो सवृत मिलते हैं, बौद्धों के मार या पुगन या तप बहुरनामे शैतान के लिये कोई स्थान नहीं है ।"

प्राचीन चीनिक रिवाजों में हम यह एक बड़ी गिजेवना देखते हैं कि बुराई के पैदा होने के लिए किसी जुगु शैतान या आवरुपकता नहीं मनमी गई । परमात्मा ही बुराई और बुराई का फलदाता है । कर्म करने वाला जीव है । वेद एक ही शक्ति को स्वीकार करते हैं । ऋग्वेद कहता है ' एकै सद्विद्या बहुधा वदन्ति' और के विश्वासों के विषय में प्रो० हर्नर अपने Ancient History of China नामक ग्रन्थ में लिखते हैं— From records of SU KING we are bound to admit that the ancient Chinese were decided monotheists प्राचीन सुकिंग के लेखों से मानना पड़ता है कि चीन के प्राचीन निरासा निश्चिन्त एकेश्वरवादी थे ।

विवासों को छोड़कर अब हम यज्ञों की ओर आते हैं । यज्ञों के सम्बन्ध में हमें चीन और भारत में बहुत सफलता दिखाई देती है । चीन के यह या डा० लेग ( Dr Legge ) ने निम्नलिखित शब्दों में बखन किया है—

"The "ceremonies and the sacrifices" were preceded by fasting and various purifications on the part of the king and the parties who were to assist in the performances of them.

Libations of fragrant spirit were made to attract the spirits, and their presence was invoked by a functionary who took his place inside the principal gate

यज्ञ से पूर्व व्रत और अनेक प्रकार की शुद्धियों का करना राजा और उसके पुरोहितों के लिये आवश्यक होता था । सुगन्धित रसों की आहुति दी जाती थी ताकि देवता बुलाये जा सकें, और उनका आह्वान करने का काम एक कायकर्ता करता था, जो सुगन्धद्वार के अन्दर का ओर गड़ा होता था ।

हम दोनों यज्ञों के विस्तृत वर्णनों को पढ़कर इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि दोनों परस्पर विपुल असम्बद्ध नहीं हैं ।

भास्तर्य के अत्यन्त प्राचीनही नहीं, म यकाल के बहुत से विधानों का भी चीन के उस समय के विचारों से बहुत सा सम्बन्ध प्रतीय होता है । चीन में मध्यकाल में हम यज्ञों के साथ वृषभ के बलिदान का वर्णन पढ़ते हैं । मेरे हुए बुधुगों के जीवित रहने का विचार बहुत पुराना था । उसके साथ धार २ हम मनुष्यों के श्राद्ध की प्रथा को भी फलता हुआ पाते हैं । डा० लैंग 'शाकिंग' के अनुवाद में लिखते हैं—

“ A belief in the continued existence of the dead in a spirit state and in the duty of their descendants to maintain by religious worship a connection with them, have been characteristic of the Chinese people from their first appearance in history ”

इतिहास के प्रारम्भ से ही हम देखते हैं कि चीनी लोग अपने मृतों के सुदम रूप में रहने, और सन्तानों के धार्मिक पूजा द्वारा उनके साथ सम्बन्ध स्थिर रखने में विश्वास रखते थे ।”

यही विशेषता हमारे मध्यकाल के विचारों में पाई जाता है । यदि विचारों की पद्धति पर ध्यान दें तब भी हम कुछ समानता दिखाई नहीं देती । प्रो० विनय कुमार सरकार ने इस विषय को अपनी “Chinese Religion through Hindu Eyes” नाम की पुस्तक में बड़ी योग्यता से प्रतिपादन करते हुए बताया है कि चीन का धार्मिक विचार प्रवाह प्रायः उसी प्रकार चला है, जैसे भारतीय धार्मिक विचारप्रवाह । यह समानता किसी सम्बन्ध के बिना नहीं हो सकती । यह अनुमान करना कुछ अनुचित नहीं प्रतीत होता है कि इतना सादृश्य और म्यान में इतनी समीपता रहते भी भारत में चीन पर कोई प्रभाव नहीं डाला । भारत पर चीन का प्रभाव जानने के लिये हम कोई भी प्रमाण नहीं देखते । चीन के धार्मिक विचार समय की दृष्टि से भारत से अर्वा-चीन हैं । चीन के प्राचीन लेखकों के कथनानुसार वहाँ का धार्मिक विकास ईसा-के २६५३ वर्ष से पूर्व के लगभग प्रारम्भ होता है । उस समय जू-सी ( Ju Hsi ) नामक राजा ने यज्ञ और पूजा का संगठन किया था । ऋग्वेद का प्रारम्भ समय आज कल के योरपियन विद्वानों के मत में भी इससे बहुत पुराना है । इस कारण यह सम्पना निर्मूल नहीं है कि चीन के प्राचीनतम विचारों पर भी वेदों के विचारों का प्रभाव विद्यमान था ।

## मिश्र

जब चीन से चलकर हम मिश्र में पहुँचते हैं, और वहाँ के धार्मिक विचारों का अनुशीलन करते हैं तो हमें भारतीय विचारों से कुछ कम समानता नहीं मिलती । उस समानता को देखकर इस परिणाम पर पहुँचना पठिन नहीं है कि भारत तथा मिश्र के

विचारों का परम्पर सम्बन्ध अवश्य रहा है। भारत और मित्र में धार्मिक विचारों का मित्र रूप से विकास अवश्य दिखाई देता है—परन्तु प्रारम्भ एक सा ही है। हम दोनों देशों के विचारों के प्रयाणों के साथ-साथ-साथ ऊपर को जाय तो इसमें सन्देह नहीं रहता कि उनका मूल मूल कोड़ एक ही होगा। बहुत विस्तृत विवेचन के लिये हमारे पास स्थान नहीं है। हम कुछेक मुख्य-सिद्धान्तों की तुलना पर ही सन्तोष करेंगे।

पहले हम मित्र के ईश्वर सम्बन्धी विश्वासों को लेते हैं। अत्यन्त प्राचीन काल में, मित्र के निवासी एक ईश्वर में विश्वास रखते थे। उनके ईश्वरसम्बन्धी विश्वास का "ईजिप्ट का धर्म" (Egyptian Religion) नामक पुस्तक में डा० बर्जने गिन् लिखित शब्दों में बर्णन किया है—

"A study of ancient Egyptian religious texts will convince the readers that the Egyptians believed in one God who was self-existent, immortal, invisible, eternal, omniscient, almighty and inscrutable, the maker of the heavens, earth, and underworld, the creator of the sky and sea, men and women, animals and birds, fish and creeping things, trees and plants, and the incorporeal beings who were the messengers, that fulfilled his wish and word."

पुराने मित्र के धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से पाठक को निश्चय ही जायगा कि मित्र निवासी ऐसे एक ईश्वर में विश्वास करते थे, जो स्वयम्भू, अमर, अदृश्य, नित्य, सशक्त, सर्वशक्तिमान्, और अज्ञेय है, जो शूलोक पृथिवी और पाताल का निमाता है, जो आकाश और समुद्र, पृथ्वी और स्त्री, पशु और पक्षी, मनुष्य और मपशु शील जन्तु, वृक्ष और वनस्पति का निमाता है और उन सूक्ष्म प्राणियों का भी उत्पन्न करने वाला है जो उमड़ी इच्छा और आज्ञा का पालन करने वाले दूत हैं।

पुराने मित्र के ग्रन्थों में देवता रूप से, हापी (Hapi) नाम से, ईश्वर की निम्न-लिखित शब्दों में, स्तुति की गई है—

"He can not be figured in stone, he is not to be seen in the sculptured images upon which men place the united crowns of the South and the North furnished with uraei, and he can not be made to come forth from his secret place. The place where he liveth is unknown, he is not to be found in inscribed shrines, there existeth no habitation which can contain him, and thou canst not conceive his forms in thy heart."

वह पत्थरों में नहीं चित्रित किया जा सकता, दक्षिण और उत्तर के विशेष आभूषणों (uraei) से सुसज्जित मुकुट जिन मूर्तियों पर रखे जाते हैं, उनमें भी वह दिखाई नहीं दे सकता, उस तक न काय और न भेदे पहचाने जा सकती है; और उसे उसके गुप्त स्थान से बाहर नहीं निकाला जा सकता । उसके निवास का स्थान अविदित है, वह अकित समार्षों में नहीं दूड़ा जा सकता, ऐसा कोई स्थान नहीं है, जिसमें वह समा सके, तुम उसकी आकृति का अपने हृदय में ध्यान नहीं कर सकते” ।

इन दो उद्धरणों में ईश्वर सम्बन्धी विश्वास का सारांश आजाता है । इन वाक्यों की निम्नलिखित वेद मन्त्रों से तुलना काजिए, तो आपको अद्भुत समानता दिखाई देगी—  
सपर्यगाच्छुक्रमकायममृणमस्नाविर शुभ्रमपापविद्धम् ।

कर्त्तव्यं नीषी परिभू स्वयम्भूर्वाधातथ्यतोऽर्थाव्युत्थाच्छाश्वतीभ्य समाभ्य ।

पञ्च० । ४० । ८

वह परमात्मा व्यापक है, शरीर रहित है, उसके शरीर पर घाय नहीं होता, वह नाडी नम के बन्धन से रहित है । वह शुद्ध है । पाप का उसमें लेश नहीं है । सत्य ज्ञान का कहन वाला, ज्ञानी, साक्षी, स्वयं ही नियमान, और सब पदार्थों का सदा से निमाण करने वाला वही है ।

न तस्य प्रतिमाञ्चस्ति यस्य नामं मद्दशं ।

जिसका अत्यन्त महान् यश है, उसकी मूर्ति नहीं हो सकती ।

पुरुष एवेद्वत्सर्वं पद्भूत यद्यन्नाव्यम् । ऋजु० । ३१ । २

जो कुछ है या होगी, वह सब कुछ ईश्वर ही में है ।

सूर्याचन्द्रमसो धाता यथाप्रथमकल्पयत् । ऋ० । १० । १६० । ३

परमात्मा ने सदा की भाती सूर्य चन्द्र आदि का निमाण किया ।

इस समानता के अतिरिक्त दो और बातें विशेषतया ध्यान देने योग्य हैं । पुराने मिथ्र निमासी जहा एक ओर एक देवता वासी थे, वहा दूसरी ओर वह अनेक देवतावासी भी थे । उनके देवता भी गिन्ती में सैकड़ों तक पढ्चते थे । अनेक देवताओं के होने हुए भी वह एक ही देवता को मुख्य मानते थे । सब देवताओं के नाम एक मुख्य देवता के नामवाची माने जाते थे । तेम् ( Temu ) आत्म ( atmu ) आदि जो एक ओर सूर्य के नाम है, देवों के पिता और ईश्वर के लिए भी प्रयुक्त होते हैं । ओनिगस आइमिस आदि नाम भिन्न २ देवताओं के होते हुए भी प्राय ईश्वर के विशेष नामान्तर नतर (neter) के पयाववाची रूप में प्रयुक्त होते हैं । किन्तुल यही दशा वैदिक देवतावाची शब्दा की है ।

ईश्वर का मुख्य नाम नतर ( neter ) है जिसका अर्थ ऐश्वर्य और बल है । नतर शब्द विलुप्त इन्द्र का पर्याय वाची प्रतीत होती है ।

दूसरा बड़ी भागी समानता जीव उगकी नियता और पुनर्जन्म में विश्वास है । यह विचार भारत और मिश्र का वास अपना है । अन्य देशों में इस स्पष्टता से यह नहीं मिलता, जिसे स्पष्टता से इन देशों में मिलता है । मिश्र के प्राचीन धर्म में मरे हुए प्राणी का पुनर्जन्म और न्याय माना जाता था । उसमें जीवात्मा "अनी" (Ani) कहा जाता था, जिमकी अन्न धातु से उत्पत्ति प्रतीत होती है । प्र + अनी इन दोनों के मिलाप से प्राणी बनता है । हृदय का नाम 'क' था । 'क' नाम सुखात्म आत्मा का है । मिश्र में भी 'क' शब्द चेतनता का पर्यायवाची प्रतीत होता है । हमारे साहित्य के स्वर्ग नरक यम तथा देवमालासम्बन्धी मध्यकालिक विचारों का प्रतिबिम्ब भी मिश्र के सत्कारीन धार्मिक साहित्य में पाया जाता है ।

मिश्र में इन विचारों की चर्चा को देख कर डा० बज ने लिखा है कि यह कहाँ कठिन है कि मिश्र के धर्म के यह विशेषताएँ कहाँ से आईं । उन्हें सन्देह है, परन्तु सन्देह रखने की कोई बात नहीं । मिश्र में यह सिद्धान्त आगन्तुक थे, और जहाँ से वह गये वह स्थान भारत था । मिश्र के धार्मिक विचारों का मूलस्रोत भारत के वेदों में मिलता है ।



## चतुर्थ परिच्छेद

### बौद्ध धर्म ।

ईसा से लगभग ४०० साल पूर्व बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ । बौद्धधर्म के जन्म दाता गौतमबुद्ध का जन्म एक हिन्दू राजवंश में हुआ था । स्वभाव से ही वह विवेकशील और दयानुस्वभाव के थे । छोटी से छोटा बात उन पर असर डालती थी, और दूसरे का क्षुद्र से क्षुद्र दुःख उनके हृदय पर आघात पहुँचता था । उन्होंने ससार पर दृष्टि उठाई तो उसे दुःख का घर पाया । किसी को शारीरिक और किसी को मानसिक दुःखों का शिकार देखकर वह चिन्तित हुए और अपने तथा ससार के दुःख दूर करने के उपायों पर विचार करने लगे । उसी विचार की गम्भीरता में आकर गौतमबुद्ध ने राजपाट छोड़ा, पुत्र कलत्र का त्याग किया और इस दुःखमय ससार की गहरी वेदनाओं पर विचार करना प्रारम्भ किया । महात्मा ने जब मनुष्यजाति के दुःख के कारणों पर विचार किया तो उन्हें भान हुआ कि उसके कुत्र ऐसे कारण हैं जो मनुष्यों के अपने व्यक्तिगत सामाजिक आचरणों से सम्बन्ध रखते हैं । जो २ कारण महात्मा बुद्ध को दिवाईं दिये उनमें से मुख्य तीन थे । पहला यह कि मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करने के लिये पशुओं की हिंसा करत थे, और क्रूरता को बढ़ाते थे । दूसरा कारण यह था कि लोगों में झूठे जान पात के अभिमान और भेद बढ गये थे, जो मनुष्यों की उन्नति को रोक रहे थे । तीसरा कारण यह था कि लोग भिन्न २ प्रकार के विश्वासों और विचार की मारीकियों पर बहुत अधिक ध्यान देते थे, और व्यक्तिगत आचरणों की उपेक्षा करते थे । पुराने वैदिक धर्म के आदेश बिगड गए थे । समाज में कुरीतियों का जाल फैल गया था ।

महात्मा बुद्ध ने इस बात को अनुभव किया कि मनुष्यों की दशा बिगड गई है । उनके जीवन में अनेक स्थान पर ऐसी चर्चा आती है कि जहाँ उन्होंने शिष्यों को पुराने धमात्माओं के उपदेश मानने की शिक्षा दी । महात्मा बुद्ध ने जिस धर्म का प्रचार किया वह कोई नया नहीं था, बौद्धधर्म के विद्वाण् टी डब्लू रिस डेविड्स ने 'बुद्धिज्म' नामक पुस्तक के दूसरे परिच्छेद में बुद्ध के चरित की घटनायें देकर अन्त में लिखा है—

“मुझे माना है कि उनका दिमाग हुआ उर्ध्वत इम प्रान्तिगत विचार विचार को निरस्त कर। ये फिर पचास शताब्दी, वि गौतम बुद्ध हिन्दू धर्म का मनुष्य था, और वह सिद्ध करने के लिए भी पचास शताब्दी। उनमें अमनात्म का अन्वेषण और अन्त का नाम का के अन्त इतिहास का धर्मवाद बनाया था। गौतम उपरिष्ठ वृद्धि विचार और मुमुक्षु म ठड हिन्दूस्तान का था। हिन्दूधर्म उस समय तक पैदा ही नहीं हुआ था। अपने सम्बन्ध में प्रकृतिक रूप के साथ उमने कोई अज्ञान नहीं किया। उनका उद्देश्य उमने ( प्रकृतिक धर्म का ) बनाने और पक्वत बनाने का था, न कि धर्म का नहीं” ।

वि० आर० सा० का बुद्धदेव और बौद्ध धर्म के बारे में विचार है—

“उमने कोई नया आधिपत्य नहीं किया, उसने कोई नया अन्त प्राप्त नहीं किया। पञ्चमः शतकः । २ ।

दूसरा शतक पर इसी पुस्तक में दत्त मन्मथ का विचार लिखा है—

“वह कदापि ऐतिहासिक दृष्टि से अज्ञान होगा कि गौतमबुद्ध ने जान बुझकर कोई नया धर्म प्रकृतिक धर्म का थोड़ा उठायो था। इसके अन्त, उस अन्त तक विभाग था कि वह धर्म के उम पुगने और बुद्ध सम्प्रदाय की घोषणा दे रहा है जो पुगने हिन्दू, ब्राह्मण धर्म और अन्तों में प्रकृतिक धर्म, और पीछे से विगड गया था” ।

उमने दो विद्वानों की सम्मति प्राप्त की गई है। बौद्ध धर्मों का अध्ययन उन सम्मति को सही ठाँव पुष्टि करता है। गौतम बुद्ध ने कर्त्तव्य धर्म पर बल दिया है, दार्शनिक विचारों को अग्रे क लिए छोड़ा दिया है। जिन कर्त्तव्य धर्मों का बुद्धदेव ने उपदेश दिया है, वह कोई नये नहीं। यम नियम और धर्म के मन्त्र ताक्ष्यों की अधिक गहरी और विचारमय शाल्या द्वारा गौतमबुद्ध ने मनुष्य जाति का अधिक दिव और अधिक शुद्ध बनाने का यत्न किया था।

बौद्ध धर्म के कुछ सिद्धान्तों पर दृष्टि डालिये। बौद्ध लोग मन्मा को परिवर्तनीय मानते हैं, पुनर्जन्म को स्वीकार करते हैं। बौद्ध लोगों का वस्तुतः वही है—केवल उनका धर्मिक ने उदा है। भूत इन्द्रिय गुण लिंग सम्कार का आदि का श्रेयिभेद भी समान है। वेदना सम्प्रदाय का श्रेयिभेद गया है। बहुत गहरे शान्ति सिद्धान्तों पर महात्मा बुद्ध चुप ही रहे। इश्वर या सृष्टि रचना आदि के सम्बन्ध में उनका जो व्यवहार था, वह नीचे लिखी दो घटनाओं से स्पष्ट हो जायगा।

“जब आन्तुस ने बुद्ध से पूछा कि समार का रचना नित्य है या अनित्य तो उन्होंने ने कोई उत्तर न दिया क्योंकि आचार्य ने इस प्रश्न को बुद्ध उपयोगी नहीं समझा” मन्मथ । १ ।

इसी प्रकार जब एक बार किसी शिष्य ने परमात्मा के बारे में पूछा तो आचार्य का उल्टा प्रश्न यह था कि 'क्या तुम्हें अपना आपको जान गया है ?' गौतम बुद्ध के समय प्रभात होता है कि बरों के तिलकुल उलट अर्थात् त्विण जाते थे, इसलिये उन्होंने वेद का नाम नहीं लिया । कहीं २ वेद का उपेक्षा से नाम लिया है परन्तु वह गाता क इस नाम्य क सट्टा हा है—

'त्रेगुण्यविषया वेदा निन्देगुण्यभावाज्जुग'

ह अजुन ! वेद त्रिगुण विषय है, तू त्रिगुण्य मे भा ऊपर उठ जा ।

"यावानय उदपाने मयत मालुनात्के

"तातासरेषु जेदेषु पुण्यसा विजात "

चागे ओर पानी भग हुआ हो—उसमे एक चुल्हू भग का पीता ओ मस्त्र रगता है, ज्ञानी पुण्य के लिय बरों म उमस अत्रिक कुत्र नहीं ।

गीता को काइ नास्तिक या वेद निन्दक नहीं कहता । गीता का तात्पर्य वेद का निन्दा मे हे भी नहीं—उसका तात्पर्य एक पूरा ज्ञानी के लिये शत्रुमात्र का तुच्छता दिवाने मे ह । इसी प्रकार बुद्धद्वय न भी ईश्वर, सृष्टि रचना आदि गम्भीर विषयों का और ईश्वरीय ज्ञान के मसले को यह समझकर निरुत्साहित किया है कि लोग इनक भ्रमों में पटक अपने जीवन का सुगर करना भूल जाने है । गौतम बुद्ध ने एक स्थान पर भा यह नहीं कहा कि ईश्वर नहीं ह, या वेद अप्रामाणिक है । इनक लिए बुद्ध का भाव विराय का नहीं, उपेक्षा का न ।

इम समय बुद्ध को नास्तिकमानने का दोष जोद्व विद्वानों के मिर पर ही पटता है । साप दाय की पुष्टि के लिये आचार्य क पाछे बौद्ध गुरुओं न यह आवश्यक समझा कि बौद्ध धर्म को सर्वांग सम्पूर्ण बनाया जय । उसक लिए क्या छट्टी हुई एक फिलासफी बन उ गई, जिसमे ईश्वर का खण्डन, वेद का खण्डन आदि खण्डन छोट २ भदां पर बहुत अत्रिक बल दिया गया और समानताओं को तिलकुल भुला दिया गया ।

बुद्ध न जीवन सम्पन्नी जिा मुनहरे धर्मों का उपदेश दिया है वह शीत उपदेशों से कुछ अत्रिक भिन्न नहीं है । मेरु टता हा है कि उनके लेखल गल टिगे गये है, श्रेणि—विभाग में कुछ भेद आगया है, जेय कुत्र नहीं । हम नीचे कुछ सिद्धान्त का तुलना करके दिगते है । बुद्ध के जोद्व उपदेशकों क लिये आठ मुख्य उपदेश यह है—

'दूसे का जीवन नष्ट न करना चाहिय' = आहिंसा

'दिना दिये न लेना चाहिये' = अस्तेय

'भूठ न जानना चाहिय' = सत्य



'मदप ने न रग्ना चाहि  
 'बाहिनि र्ना मन्त्रा र्ना है  
 'रति य) पमा भेदन न का गा चाहि जा } = प्रहारा  
 'रिक्त न्यून कर'  
 'माना वा मुगात्र का 'वदना ८ न्यो'

'रुति वा वागडे निद्रापर पात्र न रिण = अग्रिमिद्र

इस प्रकार कुछ १० विभिन्न विचार १० पाप मिलते हैं -

( १ ) हिमा ( २ ) धारी ( ३ ) व्यवहार ( ४ ) शूद्र ( ५ ) पानिग  
 ( ६ ) नगर ( ७ ) व्यवसाय ( ८ ) मन का रक्त ( ९ ) ईर्ष्या ( १० ) अविष्म।

का को १० भूते हैं, जिन्हें निद्रा रग्ना चाहिसे -

१ सत्य-वित्ति ( अग्रे भावका रूप जाना )

२ विचिन्तित्ता ( सन्देह )

३ काम

४ पानिग ( पुगा )

५ अग्रगम ( अग्रिम वागा )

६ अग्रय राग ( अग्रिम व रगा )

७ निद्रात वागाता ( काहि वा वागा )

८ माना ( अविष्म )

९ उद्वेग ( अविष्म )

१० अविष्म ( अविष्म )

इस प्रकार के सद्व्यवहार हैं, जो मनुष्य जीवन के सुधार के लिये दिष्ट गण हैं। इनमें फाड़ नवीनता का सुन्दरता है। जो है सो वेदल अग्रिमिद्राग म।

गोपालकृष्ण का धर्म किया नर धर्म है। उसने अनुभव किया कि भारत की जनता बहुत गिर गड है, पुगते सद्व्यवहारों का भूल गई है। नया श्रेष्ठि विभाग, अग्रके महात्मा ने लागू का चरण सुधार का उपाय बतलाया। वही पुगानी वैदिक सचाइया नये दम पर यह सुनाइ-ओर इस बात से त्रिपाया भी नहीं।

# पाँचवाँ परिच्छेद



## यहूदी, ईसाई और गुहम्मदी धर्म

अब हम तीन ऐसे धर्मों की ओर आते हैं, जो समय में बहुत कुछ सर्वाचीन हैं । यहूदी धर्म के अनुयायी तो अपने धर्म का प्रारम्भ बहुत पुराना मानते हैं—परन्तु हम उसे ईसा से ४५० वर्ष से अधिक पूर्व का नहीं मान सकते । ईसाई धर्म को स्थापित हुए १६१६ के लगभग साल हुए हैं—और गुहम्मदी धर्म का सस्थापक ५७० ईस्वी में उत्पन्न हुआ था । अब हम इन तीनों धर्मों पर दृष्टि डालते हैं तो उनमें दो अंश पाते हैं । यह तीनों ही मानुषिक धर्म हैं—प्रियेण मनुष्य इनके सस्थापक हैं—इसलिये उनके व्यक्तित्व के साथ वह धर्म बंधे हुए हैं । इस कारण उन धर्मों का पहला भाग सस्थापक के साथ निज मन्मथ्य रखता है । उनका दूसरा अंश सिद्धान्तांश है । उस हिस्से में हम देखते हैं कि इनमें से प्रत्येक अपने से पहले के किसी एक या किन्हीं दो तीन धर्मों पर ही आश्रित है । हरेक धर्म में हम उस पुराने धर्म की चान्द को दूट सकते हैं जिस पर नया चित्र गेँचा गया । हर स्थान पर चान्द पुरानी है और चित्र व्यक्ति का बनाया गया है । चित्र बनाने के लिए जो रंग काम में लाये गये हैं वह भी पुराने धर्मों के हैं । हम इन तीनों में से क्रमशः एक २ को लेकर अपने इस काम को प्रमाणित करते हैं ।

### यहूदी धर्म

पारसी धर्म का सस्थापक जर्दुस्त का जन्म 'आयनम वीगा' नाम के स्थान में हुआ था । यह निश्चित बात है कि जर्दुस्त ने वेदों के धार्मिक सिद्धान्तों का रूपान्तर करके फारस में प्रचार किया । उसे वनों के धार्मिक सिद्धान्त यदि वही मुनन को मिले होंगे, तो आयनम वीगा में ही मिले होंगे । आयनम वीगा में सम्भवतः वेदों के जानने वाले कुछ विद्वान् हागे जिनसे जर्दुस्त ने वैदिक धर्म के सिद्धान्त मुने और समझे, और फिर उन्हें अपने दम पर, जाति की आवश्यकताओं के अनुकूल रूप देकर ईरान में प्रचार किया ।

यहूदी धर्म के सस्थापक ने जिस नगर में उठकर धार्मिक विवेचनों कीं, उसका नाम हरन है । जर्मनी के डा० स्पेगल की सम्मति है कि यह हरन नाम का शहर वही

है, जिसका दूसरा नाम 'आर्यना धीगा' है। डा० स्पागल ने कई प्रमाणों से सिद्ध किया था कि पारसी धर्म के मन्त्राधिक जगद्गुरु और यहुदा धर्म के मन्त्राधिक अब्राहम का मन्य एक ही है—और यह ईसा से लगभग १६२० था हुआ है। दोनों का निवास प्रत्येक ही प्रदेश में था। यहा तक तो यह बहुत सम्मत है—परन्तु आर्यना और हन का एक होना बहुत लम्बे स्वीकार नहीं करते थे। प्रो० मैन्मन्सूर ने डा० स्पागल के सिद्धान्त पर बहुत सा आशङ्क्य उठाए थे। परन्तु उसमें पंछे के विद्वानों ने स्थान और समय की तुलनाय करके इस सम्भावना को बहुत बलवन्त कहा है कि आर्यना और हन एक ही स्थान है—और यहा दोनों आचार्य एक ही समय में रहें हों। पारसी और यहुदी धर्म में परस्पर समानता हान का पहला कारण यही सम्भव है कि उनके मन्त्राधिक एक ही समय एक ही स्थान में रहे—और कोई आश्चर्य नहा कि एक ही गुरु से पड़े हा।

इन दोनों धर्मों का परस्पर सम्बन्ध यही जमान नहीं होता। ईसा से पूर्व पारसी मनी में ईगन के राजा साइरस ने वेद-विनियोग के सम्मान्य का नाम किया, और यहुदा लोग को केशवास से छुटा कर जेरुसलम में फिर से स्थान दिया ताकि वह लोग हिब्रू साहित्य का पुनर्जीवित कर सकें। यहा, ईगन के राजा की सम्झना में बंधर इजरा और नदमिया न पुराना वादग्रस्त का नस्तरण किया और ईसा समय 'पन्टायथुक का' रचना हुई। क्या यह अप्रति सम्भव नहीं कि ऐसा जमान में यहुदियों के धार्मिक सिद्धान्तों पर विन्दावस्था के प्रबल सम्भार हों ?

इतना ही नहीं—इस दोनों धर्मों का परस्पर सम्बन्ध और भी आगे चलता है। ईसा से तीस सन्धिया पूर्व मित्रन्धरिया में अब्रामा और पुगनी इन्त-न-दागा का श्रावण भाषा में अनुवाद हुआ। उस समय उन इतिहास प्रसिद्ध नगर में दोनों हा धर्मों के मनन जाने वाला एकत्र थे और यह बुद्ध सम्भव नहीं कि उस समय पारसी धर्म के सिद्धान्तों का प्रभाव यहुदी धर्म पर पड़ा हो।

दोनों के सिद्धान्तों को मिलाए तो यह सम्भावनाय निश्चित ज्ञान के रूप में परिणत हो जाती है। फिर—

१ पारसी धर्म का आचार्य शास्त्र इस कल्पना के साथ शुरू होता है कि मसारा में दो शक्तिगा है—एक अच्छी है जिसका नाम महूरमजदा [ अमनान् असुर ] है। दूसरी बुरा है, जिसका नाम मगिरा मन्नु [ अगारमन्नु—ताव्र काय ] है।

यहुदी धर्म का धर्म शास्त्र भा 'गौड' आर 'डेविल' गुण और शतान से प्रारम्भ होता है। पारसी धर्म में आग्रा मन्नु को 'जलता हुआ साप' कहा है, यहुदी धर्म में भी यह मनुष्य को साप के रूप में ही ज्ञान देता है।

क्या पाषाण, क्या यहूनी और क्या महम्मदी धर्म में, दो शक्तियों की कल्पना वदों की बृषामुर युद्ध की कल्पना में ही प्रादुर्भूत होती है ।

२ ईश्वर—पहली शक्ति अच्छी है, जिसका नाम अहममजद या गुण है । पारसी और यहूनी धर्मों में ईश्वर त्रिपयक विभागों की जा मगानता है वह नीचे दिये हुए डा० हाग के शब्दों में भनी प्रकार दिखाने देगी । आप अपने Essays के ३० वें पृष्ठ पर लिखते हैं—

‘स्त्रिताम जरदुस्त का परमात्मा सम्प्रन्धी विचार पुरानी टेस्टमेण्ट के इलोहियम या ज़ोरा सम्प्रन्धी विचारों के मिलकुल समान है’ ।

डा० स्त्रीगल की तोषहा तरु गय है कि अद्वर और नहोता शब्द भी समान हा है । आपका निमल्लिगित वाक्य प्रो० मैक्समूलर ने अपना ‘Clips from a German Workshop’ नाम की पुस्तक में उद्धृत किया है—

‘अद्वर’ और अह इन दोनों शब्दों का अर्थ ‘स्वामी’ है, उनका धातु ‘अह’ (मस्कून ‘अस’) होना चाहिये, जिसका तात्पर्य है—होना । जह का अर्थ भी यही है कि ‘जो हो’ ।

३ दोनों धर्मों के देवता भी समान है—और इसमें सन्देह नहीं कि वह यन्त्री धर्म में पारसी धर्म से लिये गये ह । इस सम्प्रन्धी में हम श्रीयुन् गगाप्रवाद प्म ए की ‘The Fountain Head of Religions’ से डा० सेल का एक वाक्य उद्धृत करते हैं । आप लिखते हैं—

“यहूतियों ने उन प्रगिरा ( देवताओं ) के नाम और काम पारसियों से सीखे थे—जैसा कि वह स्वयं स्वीकार करते हैं ( रोम्याहान में टाल्मड हीरोज ), पुराने पारसी देवताओं की सायकता और अत्रिग्रतृत्व में पूरा विश्वास रखते थे, जैसा मगगियन लोग अत्र तरु मानते हैं, इस लिये उन्हें जुग २ काम और जुदा २ प्राण दे देने थे, उनके नामों पर ही महीनों और महीनों के दिनों के नाम रखते थे । मन्नील को वह मारश पुरकारते थे, और जिसे वह मनीद या मौत के देने वाले कहते थे, उससे मिलकुल उरटा वह रवनबल्खा या प्राण देने वाला कहते थे ।

माइकेल को वह बज्तर पुरकारते थे, जो उनकी सम्पत्ति में मनुष्य जाति के जीवन निराह का सामान इकट्ठा करता है ।’ इत्यादि ।

इस पर टिप्पणी ज्यर है ।

४ दानों का प्रयोग में माना गया है कि सृष्टि रचना छ दिनों में हुई। स्वर्ग तारक के विचार भी तारक प्राय मान है। जगद्वन् और मोक्षत्र तनों हो का परमात्मा ने पहाड पर धम का आदेश दिया था।

उन प्रकाश जटन सी समानताय है जा डा० हाग और डा० ए कोट्टर आदि विद्वानों के ग्रन्थों में बहुत विचार से पायी जाती है और जिन्का अत्युत्तम सप्र शंजुर् गण-प्रसाद एम ए की योग्यता पूरा पुनरु The Fountain Head of Religions में किया गया है। इस पुस्तक में इस विवेचना में सुली सहायता ली गई है।

उस विवेचना से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि पारसी धर्म और यूनी धर्म एक ही तन की दो शाखाय हैं। यह एक केवल समकालिक है—समेशित भा है। दोनों में समानता अन्यथा सम्भव नहीं। यह हम देव आपे है कि पारसी धर्म वैदिकधर्म का एक रूपान्तर मात्र है। इस युक्ति श्रुक्ला से यन्दी धर्म का वैदिक धर्म का रूपान्तर होना स्पष्ट सिद्ध है।

## ईसाई धर्म

ईसा यहूदी धर्म में पैदा हुआ—और उसी में पला। वह पुरानी बाइबिल को मानता था—और ईसाई धर्म तक उसे पुज्य मानत है। ईसा ने यद्यन्त्रियोंके उस समय विद्यमान सिद्धान्तों को अपने नये विचारों का आधार बनाया। जो कुछ उमने कहा वह एक सु-वारक का दृष्टि से था—निर्माता की दृष्टि से नहीं। यहूदी धर्म पर पोलिग कर देने से ही ईसाई धर्म बन गया—इसमें सन्देह नही।

यहूदी धर्म और ईसाई धर्म का परस्पर कारण काय भाव ऐसा सर्व सम्मत है कि उसके सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। असली वृत्त यहूदी धर्म का ही था—जिस पर पैत्रन्द नगने से ईसाई धर्म का प्रदुभाय हुआ है। यह निषय निर्ग्ववाद है। त्रिवाद है ता इस पर कि वह पैत्रन्द कीनसा था जिमने यहूदी धर्म को ईसाई धर्म बना दिया ? हमें वह प्रभाव दूना चाहिये जिमने इस नये विश्वव्यापी धर्म का जन्म दिया।

एक और भी जल्गी प्रथ है। समझा जाता है, और बहुत से विद्वान इस विचार की पुष्टि करते हैं कि बाइबिल से ईसा का जो जीवन चरित प्रतीत है वह ठाक नहीं है। कई विद्वान कहते हैं कि काइस्ट कोई धर्म ही नहीं—काइस्ट की कल्पना पीछे से की गई। इन्ही मत का मान कर कई विचारक—धुर्गों ने ता काइस्ट का क्राय का रूपान्तर माना है जो विधि प्रकाश क मत इस सम्प्रन्ध में पाये जाते हैं, वह हम Early Christianity के लेखक M S B Slack के ग्रन्थ में उद्धृत करते हैं। आप निवते हैं—

The other would, however not be justified in ignoring the fact that there is another group of critics who reject the Gospels as altogether unhistorical. The first scientific historian who took up this position was Bruno Bauer, who had the misfortune to live before his time. Among other more or less pronounced opponents of the 'historical' school are Frazer (The Golden Bough) Robertson (Pagan Christs) Mead (Did Jesus live 100 B.C.?) Halthoff, Jensen (who regards the New Testament narrative as a variation of the Babylonian myth of Gilgames and Tiamat) Balland & W. B. Smith (Der vorchristliche Jesus) Gurkel, who speaks with great moderation, says that christology of Paul and John can not have been derived from the Jesus of the Gospels, nor can it have been the product of their own reflections, on the contrary it existed before their time, and in all its essential elements parallels can be found in other religions. Some critics go so far as to suppose that there never was any historical Jesus at all, others think that though the Jesus on whom the synoptical Gospels speak once lived, never the less the life of Jesus as there described, has only a remote resemblance to that of the real Jesus.

“ किन्तु प्रयुक्तों को यह लिखने की भी उपेक्षा न करनी चाहिये कि एक ऐसे समालोचकों का भी समूह है जो गौस्पल की ऐतिहासिक नहा मानता । पहला वैज्ञानिक इतिहास वेना जिसने यह स्थिति ली थी 'बूनी' बायर था जो दुभाग्यवश अपने समय से पूर्व भागया था । इस ऐतिहासिक पत्र के न्यूनाधिक अन्य स्पष्ट विग्रेषिया में से कुछ यह हैं । फूचर ( दि गोल्डन बौ ) रायटसन ( पैगन क्रिस्ट ) मीड ( क्या जसस ईसा से १०० वर्ष पहिले उत्पन्न हुआ था ? ) कन्थोफ जसन ( जो न्यूटस्टामेन्ट की पहानी को वैबेलोनिया क गिलोमम और तियामत की कहाना का रूपान्तर कहता है ) बौलैयट और वी वी स्मिथ ( Der vorchristliche Jesus ) गन्कल, जो बहुत नर्मों के साथ लिखता है, कता है कि पाल और जान की ईसाइत ईसा और गौस्पल से नहीं पैदा हुई, और न ही वह उनके दिमाग का नतीजा थी । पुल्टाइस के, वह उम से पूर्व विद्यमान थी, और सभा आवश्यक विषयों में अन्य धर्मों में समानताये मिल सकती है । कई लेखक तो यहां तक कहते हैं कि ईसा कोई था ही नहीं, दूसरे समझते हैं कि वह ईसा या तो सही निष्का हाव गड़बिन बताती है, किन्तु यहां ईसा की जैसी जावना लिखा है, 'द असना जनी से गेटा ही माम्य गता है' ।

पढ़ने देता, न पढ़ाना चाहता था लाज्ये। उसी पद में देता कि 'इ  
 दिव स्या पर जनाग मया है। का र्णा के प्रमत्ता म न आई नी प्रक लिम न  
 चरिा का नरु म हा मर ग हे ता वद मोनानुद हे। दाना क पोगा म जो सप गज  
 हैं उनम म कुद्र म पदा उदग कत हैं—

ऐनों का उपाति आध्वर्यव कनी गई है। जनों का उपाति क मय दिव्य  
 लक्षण दिनाई देत है।

गौतमपुत्र की उपाति के मन्त्र अति कवि उग्रभद्रिय का सुचना ऐन के  
 लिये मन्त्रम म आन है, और काउत्त उग्र होन पर उदमला के पू। प्रक सुदि-  
 मान पुत्र्य आता है और प्रजा है कि वद कदा है जो यदिया का गजा यनर पदा  
 हुआ है।

सुद्वेन को मार काम के आक्रमण का सामना करना पडा तो इस पर शैला ने  
 धार न्ये, और परान हुआ। देना ही महापुत्रों के मन्त्र गित्य व। देनों का दया  
 मान सना था-नों के दया के कल्प मरश थे।

दानों के जीनों म इतनी समानता है कि स्वतन्त्र विचारक कौश्ट फेमिनी डिगिमी  
 अपना जोसस काउस्ट नाम का पुस्तक म निम्ननिमित्त शब्द लिखने पर बाधा हुआ है

'हिन्दु विमर्षि का एक दय कृष्ण कुछ सदिया पूर्ण उत्पन्न हुआ था, समा प्रकार  
 ईसा से कु मरिया पू भारत के गाव म, एक दुमारी क पेट से एकद्विता उत्पन्न  
 हुआ, और उसी प्रकार ईसा भी जैमलहम म उत्पन्न हुआ। यह देवता-गौतम शाक्य  
 मुनि जानता था कि मनुज जाति का स्थिति के भाव दु न जा हुआ है, इन मत्र दु र्णों  
 का कारण हमारी यी हुई इच्छाए और तुमनायें है इत्यादि'।

“जीमम काइस्ट चालीस दिनों तक जगल में रहा था, शाक्य मुनि ईसा से छ सत्रिया पूर्व, ४६ दिनों तक जगल में वेधि वृक्ष के नीचे व्रत और ध्यान में लगा रहा था और मार के आक्रमणों और प्रलोभनों को सफलता पूरक रोकता रहा था । वहा से वह बनारस को गया—जैहें पीछे से ईसा गेलिली को गया और अपने सिद्धांतों का शिष्यों को उपदेश दिया, वही शिष्य बौद्ध धर्म नाम के नये धर्म के सस्थापक हुए ।”

इस उद्गम्य म कई ऐतिहासिक भूलें हैं । गौतमबुद्ध उस प्रकार ईश्वर के अवतार नहीं माने जाते, जैसे ईसा माना जाता है । कृष्ण और बुद्ध कुमारी के पुत्र नहीं थे, परन्तु इनके अतिरिक्त बुद्ध और ईसा के जीवनो में इतना साम्य है कि जिस पर विश्वास करना भी कठिन है । हम बुद्ध समानतायें यहा पर दिखाते हैं—

( १ ) दोनों की उत्पत्ति मत्सुत है । दोनों की उत्पत्ति के समय विलक्षण शकुन दिखाई दिए और दोनों का हा एक २ नक्षत्र स्वामी था ।

( २ ) गौतमबुद्ध की उत्पत्ति पर असित ऋषि मंगल सूचना देने के लिये आया था और ईसा के उत्पन्न होने पर भी पूर्व से एक बुद्धिमान् का आना लिखा है ।

( ३ ) दोनों पर ही तपस्या के समय मार या शैतान के आक्रमण हुए जिनमें आक्रमणकारी नाकामयाब रहा ।

( ४ ) गौतम और ईसा दोनों ही के १२ शिष्य थे ।

### सिद्धान्तों की समानता

यह तो है मरुगपनों के चरितों में समानता । अब दोनों के धर्मों के मुख्य सिद्धांतों की आलोचना करें तो समानता और भी गहरा दिखाई देती है । हम बुद्ध समानतायें यहा उद्धृत करते हैं—

( १ ) बौद्ध और ईसाई धर्म में धार्मिक सिद्धांतों के वर्णन की एक ही रीति का अवलम्बन किया गया है ।

( २ ) दोनों धर्मों ने ही प्रेम धर्म का प्रचार किया है ।

( ३ ) दोनों ही धर्म शत्रुमय जीवन की अपेक्षा नित्यात्मक जीवन पर अधिक बल देते थे ।

( ४ ) दूसरों की भलाई का सिद्धान्त दोनों ही धर्मों को माननीय था ।

( ५ ) पुराने बौद्ध मन्त्रियों का बनावट के साथ, रोमन कैथोलिक गिर्जों की बनावट, कई समानतायें रखती है ।



( ६ ) योद्धा और रोगा वैद्यक ईसाईयों के पूजा के रीति रिवाज भावना में बहुत निकते हैं ।

( ७ ) बलिदान देना की रीति ईसा से पूर्व योद्धा लोगों में विद्यमान थी ।

यह हमन योद्धात्र का उत्प्रेत्य विषय है, वि० आर्चर जिन्ही भादि विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में बहुत ही विस्तार में इन विषय की विवेचना करके दिखाया है कि ईसाई धर्म योद्धा धर्म का पुत्र था । दोनों धर्मों की समानता भावस्मिक नहीं ही सत्य यदि यह भावस्मिक मोजना हो सा वि० गिस्टेरेरिस् के कथानुसार यह एक भारी मोजना, जो दस हजार मोजनों के समग्र है । रिना साइडल और भारी दस भादि विद्वानों ने इस बात को कई प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि ईसाई धर्म योद्धा धर्म से बहुत अधिक निकते हैं ।

## यहूदी धर्म और इस्लाम

इस्लाम कोई नया धर्म नहीं है । हजरा मुहम्मद ने किसी बिल्कुल नयी धर्म सचाई का आविष्कार नहीं किया । यह कोई नई बात नहीं है, स्वयं मुसलमान विद्वान इसे स्वीकार करते आये हैं । मुहम्मद ने यहूदी धर्म की सचाईयों को नये रूप में प्रकाशित किया था । यह अब व्यापार के प्रयोग से दूर देशों में जाता था तथा यहूदी लोगों से प्राप्त मिलता था । उन्हीं के सिद्धांतों को समय और दश की आवश्यकताओं के अनुसार हजरा मुहम्मद ने प्रकाशित किया । स्थान और दश की मुहम्मद ने ऐतान समझा, और अपने प्रचार में इतना जोर डाला कि जो एक मुगनी चीज थी, वह नहीं होकर ससार में फैल गई, और इन जोर से पैली कि ससार को अधर्षित कर दिया ।

कुरान के सभी मुख्य २ सिद्धान्त यहूदियों के सिद्धांतों पर आश्रित हैं । कुरान के अनुयायकों को डा० मेलन वडो सुन्दरता से दिखाया है कि कुरान के गौण और मुख्य सिद्धान्त नए नहीं हैं । जिस समय हजरा मुहम्मद ने अरब में इस्लाम का प्रचार किया, उस समय अरब में यहूदी और ईसाई धर्म का रस्ता प्रचार था, 'मुहम्मदनिजा' नाम के पुस्तक में वि० मार्गोलियीथ ने उस समय के अरब का वर्णन करते हुए लिखा है—

“अरब में और विस्तृत कइ सूत्रों में ईसाई धर्म और यहूदी धर्म-दोनों के प्रतिनिधि विद्यमान थे । एक तामरा एरुभरवाणी सम्प्रदाय भी, जो सैत्रियन या मरडेन का हस्ता था, विद्यमान था । यहूदी लोग अपने पलस्ताईन या पार्लिया के भाइयों के शत्रु रहते थे । यदि इस्लाम का इन्दिदास न होता तो जिना को उनके हाने का भी पत नहीं लगता । बादजयगई साम्राज्य ने ईसाई धर्म को राजधर्म बना लिया था—

इस्लाम के आने से कुछ समय पूर्व ही तिरोहित हुआ था, बहुत सी ईसाई जातियाँ राब में निवसित थीं”

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम की उत्पत्ति के समय परब म यहुदी और ईसाई धर्मों का प्रभाव काती था। इनके आगे हम सबोर से देखेंगे कि इस्लाम के सिद्धान्त का इन दोनों धर्मों के सिद्धान्तों से क्या सम्बन्ध है ?

( १ ) खुदा और शैतान—इस्लाम का ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्त यहुदियों से ही लिया गया है। ईश्वर के गुण दोनों में एक से ही माने जाते हैं। दोनों में ही ईश्वर के नाम एक दूसरी शक्ति की मानी जाती हैं, जो ईश्वर की शक्ति को निरम्मा बनाती रहती है। यह शक्ति शैतान की शक्ति है। खुदा और शैतान का जोड़ा इस्लाम से पूर्व यहुदियों के यहाँ माना जाता था। यहुदियों ने यह सिद्धान्त जर्दुस्त के सिद्धान्तों से लिया था।

( २ ) सृष्टि की उत्पत्ति—यहुदी धर्म सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में कुछ विलक्षण विश्वास रखता है। उनमें से कुछ यह हैं। सृष्टि कुछ नहीं से उत्पन्न हुई है, यह एक ही सृष्टि है जो उत्पन्न होकर समाप्त हो जायगी। आदम और हव्वा अदन के बाग में रहते थे, पीछे वह स्वर्ग से गिर कर भूमि पर आये। फरिश्ते आत्मान में रहते हैं। यह सब यहुदी धर्म के विश्वास हैं। इनको जैसे का तैसा इस्लाम में ले लिया गया है।

( ३ ) सृष्टि का अन्त—यहुदी धर्म सृष्टि के अन्त के बारे में यह विश्वास रखता है कि मनुष्य का आत्मा अमर है, वह मरने के पीछे बैठा रहता है, सृष्टि के अन्त में सब आत्मा अपने २ कर्मों का हिसाब देने के लिए ईश्वर के सामने आते हैं। जब वह दिन पास आया तब सूर्य पश्चिम से उदित होगा, एक विशेष जन्तु उत्पन्न होगा जो सचाई का प्रचार करेगा, एक ढोल तीन बार बजेगा—तब खुदा अपने सिंहासन पर बैठकर न्याय करेगा। यह सब विचार यहुदी धर्म के हैं जिन्हें थोड़े से उलट फेर के साथ इस्लाम में ले लिया गया है।

( ४ ) यहुदियों और मुसलमानों के स्वर्ग और नरक भी प्रायः एक से ही हैं।

( ५ ) मुसलमानों के चार मुख्य धार्मिक कर्तव्य हैं। इबादत, रोजा, दान और हज या तार्थ यात्रा। डा० सेल ने कुगा के अनुवाद की भूमिका में बड़े विस्तार से दिखाया है कि यह चारों बातें मुसलमानों ने यहुदियों से सीखी है।

( ६ ) बहु विवाह और तलाक़ यह विवाह और तलाक़ के सिद्धान्त मुसलमानों ने यहुदियों से लिये हैं। मुहम्मद से पूर्व ही यहुदी लोग इन दोनों रीतियों को मानते और व्यवहार में लाते थे।



# छठा परिच्छेद ।

## मध्यकालिक हिन्दू धर्म

हमने बताया था कि वेद की विचारपरम्परा तीन हिस्सों में बाँटी गई है १ ज्ञान २ कर्म और ३ उपानना। 'ज्ञान' और 'उपानना' का विस्तार उपनिषदों और 'कर्म' का विस्तार ब्राह्मण ग्रन्थों में किया गया, और आगे बढ़कर 'वैश्वानर' पुराण के लिये गूण तथा श्रौत सूत्रों की रचना हुई। विचार धारा दो हिस्सों में निकली। समय पाकर दोनों ही धाराय वलुपित हो गईं। 'वन धारा' विकृत हुई ऐसे मुगुलु पैदा हो गये, जो शून्य कर्मों के बिना ही परमात्मक दर्शन करना चाहते थे, और 'कर्मधारा' विकृत हुई तो ऐसे माजिर्सा का पन्थ चल गया जो जन्म भर की गठपट में ही लगे रहते थे, जेव सब सत्कर्म उनके लिये माने रहे ही नहीं। इ दोनों बुराईयों के विरुद्ध महात्मा जुज खडे हुए, और कम प्रधान बौद्ध धर्म को उभार किया।

महात्मा बुद्ध ने भारत के मध्यभाग में घूम कर रूढ़ि प्रचार किया। उस समय में का केंद्र वर्तमान निहार प्रान्त था। वह महात्मा के जीते जा उनके धर्मोपदेशों से प्रभावित होगया, परन्तु देशध्यापी प्रभाव निगटे हुए रूपमें प्राचीन आर्य धर्म का ही था। पाटलि में चन्द्रगुप्त मौर्य का आधिपत्य हो जाने पर सारा दश एक ही छत्रच्छाया में आग उसके पीर अशोक बर्धन ने बौद्ध धर्म को भारत भर में फैलाने का अतिरिक्त देश देश में भी उसका प्रचार किया। उस समय से बौद्ध धर्म भारत का मुख्य धर्म होना ईसा से लगभग २४० वीं पून भारत के प्राचीन धर्म का बौद्धमस्कार पूरा हो चुका।

यह कहना बहुत कठिन है कि बौद्ध धर्म के उत्पत्तिकाल में हिन्दू धर्म ठीक आर्या में था। बौद्ध ग्रन्थों से थोड़ा बहुत अनुमान ही लगाया जा सकता है। इस क्षेत्र में ब्रह्म और जीव के ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता था। कर्मदान वैरागियों पन्थ चल चुका था। शरीर को तपाने या क्लेश देने का नाम तपस्या रखा जाता था। जन्म से ही जाति का महत्त्व माना जाता था। बहुत रिस्तुत केवल क्रिया से युक्त यत्नों को स्वर्ग का साधन बनाने वाले लोग कुछ कम नहीं थे। यज्ञों में हिंसा होता थी। इतने सन्तुष्ट वखन से ही प्रतीत हो सकता है कि उस समय का धर्म वैसा था। और उसमें कैसे परिवर्तन पैदा हो चुके थे ?

देवमाला के विकास का प्रश्न हरेक साहित्य और धर्म के इतिहास में एक विशेष स्थान रखता है । देवमाला के विकास की जांच करने से जाति के धर्म की जांच स्वयं ही हो जाती है । हम भारतवर्ष में धार्मिक विकास के इतिहास को देखना चाहे तो देवमाला के निर्माण की कथा हमारे लिए बहुत सहायक हो सकती है । वही अर्वाचीन स अर्वाचीन हिन्दू धर्म को प्राचीन से प्राचीन आर्य धर्म से जोड़ सकती है । मध्य काला हिन्दू धर्म की उत्पत्ति पर विचार करते हुए यदि हम देवमाला को केन्द्र बना लें तो कोई हानि नहीं हो सकती, उल्टा लाभ ही होगा ।

पौराणिक देवमाला का बीज वेदों में ही मिल जाता है । बहुत विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है । इतना ही निर्देश का देना पर्याप्त है कि पौराणिक देवमाला के मुख्य २ सभी नाम वेदों में मिलते हैं । अग्नि, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण, यम, मरुत् आदि पुराण प्रसिद्ध देवता वे १ के मन्त्रों में गाये गये हैं, भेद केवल इतना ही है कि वेद में यह जहां आध्यात्मिक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं वहां एक ही ईश्वर के भिन्न २ गुणों के कारण भिन्न २ नाम हैं । वेद का निम्नलिखित मन्त्र हमारे अभिप्राय को स्पष्ट कर देता है—

इन्द्र मित्र वरुण मग्नि माहुरयो दिव्यः स सुपण्यो गरुमान्  
एक सष्टिमा वहुधा वरुण्यग्नि यम मातरिश्वाणमाहुः ।

ऋ० । १ । १६४ । ४५

यह एक है, परन्तु उसे विद्वान् लोग भिन्न भिन्न नामों से स्मरण करते हैं । इन्द्र, मित्र वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपण्य, गरुमन्, यम, मातरिश्वा—यह सब उसी तेजस्वरूप पर ब्रह्म के नाम हैं । वेदों के समझने के लिए यह मन्त्र चाहा का वान दे सकता है । इसे ध्यान में रखिये, सब कठिनाइया हल हो जायगी, इसे भुला दीजिए, वेद एक अजायबघर मा प्रतीत होने लगेंगे । वहीं एकेश्वरवाद, कहीं अनेकेश्वरवाद, कहीं अनन्तेश्वरवाद—सभी परस्पर विरुद्ध बातें वेद में दिखाई देने लगेंगी ।

वेद में एकेश्वरवाद है । भिन्न २ शक्तियों के कारण एक ही ईश्वर की भिन्न २ नामों से स्तुति और प्रार्थना पाई जाती है । यह एक आवश्यक प्रश्न है कि स्वयं वृत्त में एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रतिपादन रहते हुए भी २ अनेकेश्वरवाद और देवमाला की कल्पना कैसे होगी ? ब्राह्मण ग्रन्थों में हमें वेद के देवता शब्दों की व्युत्पत्तिया मिलती हैं, और उनकी व्याख्या भी मिलती है । साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेकेश्वरवाद और शक्तिवृत्त भी मिलते हैं । हम पहले बता आये हैं कि २ अनेकेश्वरों और इतिहासों से ही देवमाला की

धुनियाद पड़ी। छोटी २ बत्तों को—या का प्रयेक विधि को समझने या मगत सिद्ध करने के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों में छोटे २ दृष्टत दिये गये, जिनमें स्वभारत परन्तु दुर्भाग्यवश वैदिक परिभाषाओं का ही प्रयोग किया गया। देव असुर प्रतिपरुषण्ड्यारिके नाम देकर ही दृष्टत घड़े गए, यही अनर्ग का मूल हुआ। छोटे २ दृष्टान्तों पर कल्पनाशील कवियों की कल्पना का पैरान्त लगा, और जा केवल कल्पना दृष्टान्त थे, तब धार्मिक सिद्धान्तों के रूप में भी लगे। बौद्ध धर्म की उत्पत्ति के समय देवता सम्बन्धी कल्पना का क्या दरा था, यह निश्चय पूर्वक कहना कठिन है, क्योंकि उस समय के ई ऐतिहासिक या केवल धार्मिक ग्रन्थ भा अपने विशुद्ध रूप में प्राप्त नहीं होत। व्याख्या तथा टीका के ग्रन्थ मिलते हैं, परन्तु वह केवल इरादा दे सकते हैं, पूरा समझार नहीं सुना सकते। महाभारत और रामायण अवश्य ही बुद्ध सहायता दे सकते यदि पौराणिक काल में उक्त पूरा २ नया सम्बन्ध न हो गया होता। हम जानते हैं कि ईसा से ३०० वर्ष पूर्व वाहे उन गेहो महाकाव्यों का पुनर्निर्माण हुआ। ऐसी दशा में उन्हें बौद्ध धर्म से पहले के धार्मिक विचारों का चित्र नहीं समझ सकते। जहाँ तक बौद्ध ग्रन्थों के देखने से विदित होता है, उस समय वेदों के दृष्टताभा की बुद्धा २ सत्ता अनर्ग मानी जान लगी थी। महात्मा बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले जतरु ग्रन्थ इमरु प्रमाण्य हैं। उनमें इन्द्र आदि देवताओं की कल्पना चित्रा है, उसके देवता मिलदुल मनुष्य देहधारी प्रतीत नहीं होत। अभी तक भवताओं की कल्पना का कहीं पता नहीं है। प्रकृत होता है कि देवताओं के मनुष्यलोके की छोटी छोटी बातों में दखन देने का कल्पना भा अभी नहीं घड़ी गई थी। मनुष्यसदृश देव कल्पना एक सन्दिग्ध या मिश्रग्रन्थ सिद्धान्त के रूप में पैदा हो चुकी थी, यह नहीं कह सकते।

बौद्ध धर्म देश भर में फैल गया। उसने कल्पना पर बल दिया और आध्यात्मिक कल्पना को शिथिल करने का यत्न किया। गौतमबुद्ध ने ईश्वर जब और प्रकृति के सूक्ष्म विचारों की उपेक्षा करके श्रेष्ठ जीवन की आवश्यकता पर बल दिया। थोड़ी देर के लिये गहृत गहरी कल्पनायें उम के क्षण से प्रियामत पर दी गईं परन्तु असम्भव को बुद्धरुप भा सम्भव न बना सके। आ-वात्म और अतीत कल्पना के बिना मनुष्य न जा पूरा नहीं होता। उसके दृश्य और दिमाग में परोक्ष के लिये एक उरली जगह विद्यमान है। वह किन्ही १ किन्ही तरह अवश्य पूरी होगी। जो बौद्ध धर्म परोक्ष कल्पनाओं की उपेक्षा करके जीवन सुधार के लिये पैदा हुआ था, उसमें मरु पैदा भवता कल्पना की गई। उस समय न प्रकृत देवमाला को गौतमबुद्ध के चरित में शामिल कर दिया गया। विन्तु और रर के स्मरण पर बुद्ध को रर दिया गया। अनर्गदेव-ताओं का स्थान गौतम बुद्ध के अनेक जन्मों और अनर्ग रूपों ने ले लिया। और २

ईश्वर का स्थान बुद्ध ने ले लिया, और शेष देवताओं को स्वर्ग पर बुद्ध के अनेक रूप स्थापित किये गये । एक प्रकार से बिगड़ हुए आर्य धर्म का बौद्ध-भाषा में अनुवाद कर दिया गया । धर्म को और भी अधिक मानव रूप में लाकर जाता के सामने रखा गया ।

बौद्ध धर्म के प्रचार ने एक और परिवर्तन पैदा कर दिया । संस्कृत के स्थान पर मगध की प्रचलित लोकोभाषा का प्रयोग होने लगा । भारत में बौद्ध धर्म का युग संस्कृत की अवनति का युग है ।

मौर्य साम्राज्य के क्षय के माथ भारत में बौद्ध धर्म का हस्त आरम्भ हुआ । पटलिपुत्र के अन्तिम मौर्य राजा को मार कर शुंग वंश का राजा पुत्रमित्र राजगढ़ पर बैठा । वह प्रतिक्रिया का अप्रदूत न था । प्रतीत होता है कि उसे नए साम्राज्य के जमाने में धार्मिक विद्रोह न भी काफी सहायता दी । राजा पुत्रमित्र के सम्बन्ध में पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में जो इतिवृत्त मिलते हैं, उनसे प्रतीत होता है कि उसने राजसूय यज्ञ किया, और बौद्ध धर्म के विरोध में संस्कृत भाषा और बुद्धदेव से पहले का जो धर्म था उसे जगाने का यत्न किया । इस समय ( १८५ ई० पू० ) से तोडर गुप्त साम्राज्य के अन्त ( ५५० ई० ) तक हमें उसी धर्म का प्राधान्य मिलता है ।

पुत्रमित्र के समय बौद्ध धर्म के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया आरम्भ हुई, उसने पुत्रमित्र बिगड़ हुए वैदिक धर्म पर अपना स्थिर सिद्धा छुड़ दिया है । बौद्ध धर्म धीरे २ भारत से विलुप्त होगया, परन्तु अपने प्रभाव से आर्यों के धर्म को आच्छादित कर गया । बुद्ध से पहले का वैदिक धर्म बिगड़े हुए रूप में ना कुछ और था, पुत्रमित्र के काल से वैदिक धर्म जिस रूप में आने लगा वह विन्कुल दूमरा था । बौद्ध धर्म ने उस पर जो २ स्वर्गीय प्रभाव छोड़े, उनमें से कुछेक का यहा परिगणना किया जाता है ।

( १ ) बौद्ध धर्म ने ईश्वर के स्थान पर मनुष्य की पूजा चलाई । बौद्धों में गौतम बुद्ध की मूर्ति की पूजा होने लगी थी, इस पूजा ने अशिक्षित लोगों के हृदयों पर असर किया । जब प्रतिक्रिया आरम्भ हुई तब बौद्धधर्म के विरोधियों को आश्चर्य प्रतीत हुआ कि वह एक चिन्ह के स्थान पर दूसरा चिन्ह रखें ताकि अशिक्षित जनता को रूचि मर्के । इस प्रकार मनुष्यदेहधारी देवताओं की कल्पना हुई, और मूर्ति पूजा का बीज बोया गया ।

( २ ) बौद्ध जातकों में गौतमबुद्ध के मइत्व को बढ़ाने के लिए अन्तःकल्पना की कल्पना की गई थी । यह कल्पना लोगों के दिलों में घर कर गई । अनुवाद का नए रूप में जन्म इसी समय से हुआ है ।

( ३ )

के उपात्र में मनेरन्जर पुराण लिख गये । यहाँ

अधिक ऐतिहासिक प्रमाण देने अनावश्यक हैं। पुराणों के अन्दर ऐसा गयाहिया पड़ी हुई है जिनमें निम्न होता है कि पुण्य ग्रन्थों की रचना मुख्यतया इसी काल में हुई।

( ४ ) सस्कृत भाषा का भाग्य इस काल में नूतन ही चमका। साधुगण का दण्ड पातञ्जल महाभाष्य बह्वृष से विद्वानों की राय में इस समय लिखा गया। भामि, कालिदास आदि साहित्यगुरु इसी युग में हुए। अलङ्कार सस्कृत ने इस समय जन्म लेकर जीवन प्राप्त किया। प्रतीत होता है कि इसी काल में बदली हुई दृश्यों के अनुसार रामायण और महाभारत के भी पुनः सस्कार हुए। इस प्रकार बौद्ध धर्म के उत्तर में, उसके प्रभावों से प्रभावित होकर पुनः वैदिक धर्म विकृत होकर पौराणिक धर्म के रूप में परिणत हो गया।

भारतीय धर्मों में 'उदारता' का अर्थ सभी जगह पाया जाता है। बौद्ध धर्म उत्पन्न हुआ परन्तु पुराणों ने विष्णु के दम यत्नारों में बुद्ध की भी गिन्ती कर डाली। उदारता के सम्बन्ध में ( ५८ ईसा ) बौद्ध धर्म ने भारत के, राजा बाहिर के भी, कई धर्मों को मिश्रण द्वारा अपनाये का सूत्रपात कर लिया था। महायान बौद्ध धर्म मिश्रण का फल था।

यही उदारता थी जिसने धर्मों का परस्पर सघर्ष होते हुए भी धर्मों के कारण अन्त्याचार नहीं होने दिये, परन्तु मात्र ही यह भी कहना पड़ेगा कि इसी उदारता ने भारतवर्ष के धर्मों को बिचड़ी और अशुद्ध बनाने में मदद दी। जो बुद्ध आया, बीच में शामिल हो गया। उदारता का गुण भारतवर्ष के लिये दोष साबित हुआ। विशुद्ध वैदिक धर्म उदारता के मिश्रणों के कारण एक खम्बा अस्थानालय बन गया। राजा हर्ष ( ६०६ ईस्वी ) के राज्य काल में धर्म का नूतन ही नाटक दिखाई देता है। यद्वालु राजा एक रोज शिव की पूजा करता है, दूसरे दिन सूर्य को अर्पण देता है और तिसरे दिन बुद्ध की मूर्ति के सामने मिर झुकता है।

इस लिखड़ी धर्मों को विशुद्ध करने का श्री शंकराचार्य ने यत्न किया। उनके दार्शनिक धर्म ने बौद्धों को नास्तिक के रूप में चित्रित करके आर्यभट्ट से जुदा कर दिया। उस समय ( ८०० ईस्वी ) में बौद्ध धर्म का प्रभाव बहुत कम हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि श्री शंकराचार्य ने नास्तिकवाद के सामने एकेश्वरवाद को खड़ा करके धर्म की शुद्धता की रक्षा करने का यत्न किया, परन्तु इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि आचार्य ने व्यावहारिक दुनिया को अन्वृष्ट ही छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि उनका विशुद्ध धर्म बुद्धों के पवित्रता के लिए रह गया, और लौकिक पुराणों के आचरणों पर उनका कोई असर न हुआ। अद्वैतवादी की कल्पना तार्किक लोगों के लिये बहुत मनोरञ्जक था, परन्तु एक दृष्टी हानक कारण व्यवहार से दूर थी, और जातीय जीवन पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं डाल सका था।

‘ रामानुजाचार्य ने ( १०७० ई०—१११८ ई० ) अद्वैत या वेदान्त धर्म की एक-  
 देगिता को दूर करके उसे कुछ अविश्व व्यापहारिक रूप देने का यत्न किया । भिन्न २  
 जातियाँ को मिचाने में भी उन्हें कुछ सफलता हुई परन्तु शीघ्र ही भारतभर्य को उत्तर से  
 आते हुए इस्लाम क तूफान न घेर लिया जिमसे आर्य धर्म की प्रगति त्रिबुल्ल रुक गई ।  
 जिसे बाब को देखकर चिड़िया अपने आपको सभाल कर बैठ जाती हैं, और सिवाय  
 आत्मरक्षा के और कुछ नहीं सोचती, इस्लाम के बगडर ने भारतवासियों की वही दशा  
 करदी । धर्म की स्वतन्त्र उन्नति ( कुछेक दक्षिण के हिस्सों को छोडकर ) रुक गई ।  
 आर्य धर्म, जिसे अब हम हिन्दू धर्म कह सकते हैं ( क्योंकि मुसलमानों ने ही हिन्दू शब्द  
 को प्रारम्भ किया ) आत्म रक्षा के साधन सोचने में लग गया ।

१००० ईस्वी में आज तक आर्य धर्म को लडाईं फानी पडी है । उसे इस्लाम  
 और ईसायत के मुत्तानिते में आरु अपनी रक्षा के अनेक उपाय करने पडे हैं । इस  
 युग में बडी २ कि र्वि लिखी गई । व्याकरण और न्याय के धुरधर पण्डित हुए परन्तु  
 बिना किसी आशका के कहा जा सकता हे कि उनका जाति क धर्म पर या विचारों पर  
 कोई भा व्यापी और न्यायी अमर नहीं हुआ । वेदों के मानने वाली जाति एक ऐसी आफ्त  
 में पड गई, जिसमें उसे फकिरानों की सुप रखना असम्भव प्रतीत होने लगा ।







दूसरा खण्ड



ऋषि दयानन्द

# अवतरणिका



वैदिक धर्म किस दशा तक पहुँच चुका था, यह हम पहले भाग में विचार आये हैं। उसका विशुद्ध जल प्रवाह किन २ नदी नालों में से होकर बह निकला था, उसका भी दिग्दर्शन कराया जा चुका है। धर्म की दशा प्रकार २ कर कह गयी थी कि 'योई आत्मी और मेरी सुध लो' उस प्रकार को भगवान् न किस प्रकार सुना? इस प्रश्न का उत्तर दूसरे भाग में पढ़िये।



# पहला परिच्छेद



## जन्म और वैराग्य

— ० —

काठियावाड प्रान्त मे मौरी गज्य के टकरा नामक टोटसे ग्राम मे अम्बाशकर नामक एक औरीच्य ब्राह्मण रहता था । १८८१ दिवसी के पौष मास मे उसके यहा पूरु बालरु ने जन्म लिया । बालरु का नाम मूल शरु रखा गया । सन्यास लेने पर इस मूल शरु का नाम दयानन्द हुआ । अम्बाशकर के यहा औरीच्य ब्राह्मण होने पर भी मित्रावृत्ति नहीं थी, लेन तन का व्यवहार होता था, और रियासत क आम से जमादारी भी प्राप्त थी, जो तहसीलदारी के बराबर थी ।

इस प्रकार एक पुराने टग के सामान्य घर में दयानन्द का जन्म हुआ । यह जानने का कोई भी उपाय नहीं है कि दयानन्द के माता पिता किस स्वभाव के थे । यह भी नहीं जाना जा सकता कि बालरु मूल शरु पर प्रभान डालने वाते गुरुओं में से कोई ऐसा भी था, जिसे 'असागराज' कह सकें । प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं क बारे में हमें जो कुछ भी पता चलता है, स्वामी दयानन्द का अपना कथन ही उसका साधन है, दूसरा कोई नहीं । गुजराती भाषा में सन्तान प्रेम बहुत अधिक होता है । परम हस दयानन्द डरा करते थे कि 'कई मेरा परिचय पाकर सम्बन्धा लोग न घेर बैठें ।' इस डर से वह अपने जीवन के प्रारम्भिक भाग का अधिक परिचय नहीं दिया करते थे । यदि उनके परिवार और शैशवावस्था के वृत्तान्त जानने का कोई साधन होता तो नि-सन्देह हमें कई मनोरञ्जरु बातें जानने का अवसर मिलता । समाज में आकस्मिक कुछ भी नहीं है । जिन घटनाओं को हम आकस्मिक कहते हैं, उन्हें समझने का शक्ति नहीं है, या साधन नहीं है । शक्ति या साधन के अभाव से बाधित होकर हम अपने अज्ञान को 'आकस्मिक' शब्द के आग्रह मे छिपाने का यत्न करते हैं । दयानन्द क चित्त मे जो २ विचार तर्कों उत्पन्न हुईं, जो २ कान्तिवा पड़ी हुईं, वह आकस्मिक नहीं थीं, परन्तु हमें यह मान लेना चाहिये कि उनक कारणों पर पूरा प्रकाश डालने के साधनों का अभाव है । हम नहीं जानते कि मूल शरु के प्रारम्भिक गुण कौन थे, और न हमें

ज्ञान है कि उमरक खेल के साथ किम श्रमा कथ ' वह जनक का यह उपाय है कि टप नन्द में जा हुना और निमरता गी, यह माना का भार से प्राप्त हुई या शिवा का भार से ? अन्तु । जा नहा जाना जा मरुता, उस छाउ कर हने उसका दृष्टि टालने है, ना जाना जा सकता है ।

माठों वष म मूल शरर का यज्ञोपवीत सम्भार किया गया, और गणत सन या आदि कणठरर कणय गय । प्रवीत होना है कि मूल शरर की स्मरण शक्ति प्रारम्भ हो अरु था । यह स्मरण शक्ति प्रचार कर्तव्यो म दशानर को प्रतिप्रक्षिपा क व असण बना देता गे । प्रचार के काय में वह श्रुति का वट्ट पठितो की अपक प्रक महायता करती थी । मूरशरर के पिता स्वभाय में बुद्ध रूखे और कचे प्रतीत ने है । सम्भर है, शिव सत की भार से उन् तहसीलगर का काय मीपा गया । प्रक प्रभाय स उनके स्वभाय म टपना आगइ हो । उम मूरशरर की माता प्रेममयी गीत होना है । वह बचे से वसा ही लड करती था, जैसा लड प्राय मातायें किय ती है । मूरशरर के अन्य सम्बन्धियो के विषय में हम इतना हा जानते हैं कि उस एक चरा ग, जो बहुत स्नह करता ग, और अपना उठो नदिन से भी बालकक हुन प्रेम ग ।

एक ब्राह्मण क बालक को जैसी प्रारम्भिक शिक्षा मिलनी चाणिए, वह मूल शरर प्राप्त होना रहा । १४ वष को आयु तक वह यजुर् संहिता कणठरर कर चुना था । शररर में भी उमका प्रश हागया ग । इतना पढे लिखे लेने पर मूरशरर क गु धो ने यह सम्मति बनाई कि अर वह इन योग्य हागया ह कि कुछ कमागत धार्मिक हुना में भा भाग लेने लगे । १८-४ बिक्रमा की मात्र उदा १२ को शिवरात्रि क ग ग । शरर हा काठ पुगन डग का हिन्दू धराना होगा, जहा यह व्रत न मना जात ग । शिवरात्रि का गत को शिव का अरन हाता है, और लयन कग्ना पग्ता है । अर और नैर-देना का डगठा ही टारन अरिक पुगवचनक समझा जाता है । अर मयी लाग जाना ह, कि बालकों क लिए इतम से एरु चीज का खरन भा सम्भर न ह, कि जे टनों का घर किया जाय ता कैसा टगवना बन जाता है । मूल शरर के सामने जब शिवरात्रि का व्रत रखन का प्रन्धन किया गया, तब वह पहले राता नई हुमा । केइ नाम लाम लिवाइ शिव शिवा काइ बालक भूय और नीड स लने के तयार नई होता । इन दो शत्रुओं स युद्ध करना तो जगन्ने और बूटो क लिए भा दु रर है—मूल शरर से अभी १४ साल का शिव थी था । माना न बानरु का अनि कडा म दो एर युक्तया देकर महायना का । 'लटम अभा छुपा है, इमे दिन में चार वष खाने की आरन है, यह कैस भूया ग्हा ? रात को यह अरर से पहले ही मो

जाता है, रात भर कैसे जगेगा ? हम कल्पना कर सकते हैं कि माता न प्रवेश होकर ऐसीही युक्तिया दी होगी !

तब पिता न बालक की कल्पना शक्ति को आपन्न महायज्ञ जननी का यज्ञ किया । शिव का माहात्म्य सुनाया, शिवगत्रि का पुण्यगो म गाने हुई मन्त्रिा बत ई, और रम्य के मुल्लर दृश्य रचकर कामल प्रतिभा की उत्तेजित करने का यज्ञ किया । यज्ञ में सफलता हुई । मूलशर शिवगत्रि का व्रत लेने के लिए तैयार होगया । नियत समय पर पुजग और गृहस्थ लोग मन्दिर में पहुचकर पूजा आदि कार्यों में लग गये । मलशर अधन पिता क साथ बैठा हुआ सत्र कुछ देग और मुन रहा था । उमरा न्य दिन में मुना हुई कहानियों से प्रण जा, विश्वास और श्रद्धा का अतुर उत्पन्न होगया था, आशा और सम्भावना से प्रगित हुआ वह व्रत का पूरा पुण्य कृतन के लिए तैयार हा प्रयाथा ।

पुत्रन हागया । पुजागी और गृहस्थ लोग जागरण के लिए बठ गये । वरि २ आगे मुने लगीं, मिग भुक्ने लगे, लोग एक दूसरे के कन्धे या छाती पर सिर धर के लुटने लगे । कुछ ही घण्टों में मन्दिर म सनाटा होगया, और चा लाग रात भर जग कर पुण्य लूने का सफल क्रिये बठ थे, वह निद्रा देवी की सुखमया गोर का आनन्द लेने लग । सत्र सोगय—केवल एक मन्क जागता रहा । वह भक्त बालक मूल शर था । उस का दृष्टि रात्र शिव लिंग पर गडी हुई थी । वह उस अद्भुत शक्ति सम्पन्न देवता की और चावभी नजर से देख रहा था । देवता क्या है कि मन्दिर म सनाटा पाकर चूहे गिलों से निकल आये हैं, मूर्ति के इग गिर चारल आदि के जो गने पडे है, उन्हे खा रह हैं, और बीच २ में ऊग भा चट जाते हैं । मूल शर ने साचा कि जो महादेव पडे २ दानों के व्यतिक्रम को नहीं सह सकता, और त्रिगुटा लेकर उन का सहार करता है, वह इन मूर्तों की मिग पर चढ़ने से तो अशक्य गरेगा । और कुछ नहीं तो सिर हिला कर ही उन्हे भगा देगा । परन्तु उसने आश्रय और विस्मय से देवा कि वह पत्थर पत्थर हा रहा, हिला जुला नहीं । तब क्या यह पत्थर ही वह शिव ह, जो केनास पर निरास करता है, निसम ससार का सहार करने की शक्ति है, जिनके त्रिगुल की ज्योति में दानों के कलेजे काप जाते हैं ? वह काई और ही शिव हागा— इसम और उसमें अशक्य भेट है । ये सत्र विचार मूलशर के, तीव्र प्रतिभा से मस्कृत मन में उठने लगे । वह दिन में शिव माहात्म्य सुन चुका था, उसे वह या आन लगा, और जो कुछ देखा, उसकी रेशानी में मुना हुआ महात्म्य निगून प्रतीत होने लगा ।

चिन्तित मूल शर ने जका निवृत्त करने के लिये पिता को जगाया । पिता के पास प्रतिभाशाला पुत्र के गहरे प्रश्नों का उत्तर कहा था ? वह जिन्सु की जिज्ञासा को तृप्त न कर सका । मूल शर विरत्माहित हाकर मन्दिर से घर चला आया, और प्रम

मया मा मे अपना भुव का निरापत्त को । 'मै ता पन्ने ही व न थी कि त मृगा न  
र मत्तया' इत्यदि बहुत मा ताने माना न कहा होगा । माता न पुत्र को पत्र भर कर  
बिना दिया जोर जिन्ना पर मुला दिया ।

यद्यपि ज्ञान शक्ति के आगम में मौलिक परिवर्तन उत्पन्न करने का कार्य है। मूर्ति  
पूजा पर मत्तया का श्रद्धा उठ गई । कई लोग आशङ्क किया करते हैं कि इतनी छठी  
सा माता-श्री व मा इत्यादि उपाय मा यथा मा म-उनका भारी परिणाम कैसे उत्पन्न का  
सकता ही ? अनुभव से देखा गया है कि ऐसा छोटा जालें छोटा अवस्था में ही इन  
प्रकार उत्पन्न करता है । उम समय बालक की बुद्धि बड़ी नम होती है  
उम पर छोटा मा मा आगत प्रतिक्रिया को उत्पन्न करता है । बला अवस्था म बुद्धि  
बड़ा हो जाता है, प्रतिभा अनुभवों ज ताकत से रूप जाता है, और बहुत न  
व्यक्तियों को जालें क हृदय में नई जाने के कारण उत्तमना उत्पन्न करती है, प्रौढ़  
रूप म बला व देवा हुई जाने क कारण कुछ भी प्रभाव उत्पन्न नहीं क ती  
इम घटना के पाठ मूल शक्ति की मूर्तिपूजा म श्रद्धा उठ गई । उनमें चचा और मा  
का विनाशित पर पित्त स पूजापाठ के कारणों स दु । ले ली और पठन पाठन में जी  
रागा दिया । इम समय दो ऐसी घटनाएँ हुई, जिन्में मूल शक्ति के स्वच्छदर्पण  
के समान हृदय पर स्थली प्रतिबिम्ब छोट दिया । उन घटनाओं का यथन चरित नायक  
का अपना माया म ही मुनाना उत्तर जाना । ऋषि ने आत्म परित म उनका इम  
प्रकार वर्णन किया है—'मेरी १६ वरस की अवस्था के पाछे मेरा १४ वरस की  
बलिनी थी, उसमें हना हुआ, जिन्का वृत्त न्त यो है । एक रात जब कि हम एक मित्र  
के घर नाच देखा गये हुए थे, तब अचानक नौकर ने आकर खबर दी कि उसे हैजा  
ह गया । हम सब तत्काल वहा से आये । वैद्य बुलाये गए, औषधि की, मगर कुछ  
फायदा न हुआ । चार घण्टा में उनका शरीर छू गया । म उनके मित्रों क पास  
दीवार से आग लेंग गया था । जन्म से लेकर इस समय तक मैंने पन्ना बार  
मनु य को मने देखा था । इसमें मेर गिल को बडा कष्ट हुआ और मुझे बहुत टर  
लगा, और मोरे टर के मोचने लगा कि मारे मनुय इस प्रकार मरेगे, और ऐसे ही  
में भ मर जाऊगा । सोच विचार म पड गया कि नितन जीव सत्ता में हैं उनमें मे  
एक मा न जचेग उमम कुछ एमा उपाय करना चाहिए कि जिमसे जन्म मरण मपी  
दुःख से यह पात्र दृढ और मुक्त हो । अर्थात् इस समय मेर चित्त में वैराग्य की जड  
जाम गड ।"

सब लोग रोते लगे, परन्तु गलत ही लहर म रहत हुए मल शक्ति की आग स  
आगु न निकले । जालक मूल शक्ति गन की चिन्ता में गई था, वह सदा क लिये

रोने से बचने का उपाय ढूँढ रहा था । इस घटना से मूल शरकर के हृदय में वैराग्य का अंकुर उत्पन्न हो गया ।

दूसरी घटना का चरित नायक ने इस प्रकार वर्णन किया है—“जब मेरी अवस्था १६ वर्ष की हुई तब जो मुझ से अत्यन्त प्रेम करने वाले बड़े धर्मात्मा तथा विद्वान मेरे चाचा थे, उनको हैजे ने आ घेरा, मरते समय उन्होंने मुझे पास बुलाया, लोग उनकी नाडी देखने लगे, मैं भी पास ही बैठा हुआ था, मेरी ओर देखते ही उनकी आँखों से आसू बहने लगे । मुझे भी उस समय बहुत रोना आया, यहाँ तक कि रोते-रोते मेरी आँखें झूल गईं । इतना रोना मुझे पहले कभी न आया था । उस दिन मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं भी चाचा जी के सदृश एक दिन मरने वाला हूँ ।” तबे हुए लोहे पर चोट लगी । मूल शरकर का हृदय बहिन की मृत्यु के दृश्य से पहले ही नर्म हो चुका था, इस दूसरी चोट ने उसे पूरी तरह वैराग्य की ओर झुका दिया ।

शिव लिंग पर चूहों की कूदता हजारों लोग देखते हैं, परन्तु उसे एक साधारण घटना समझ कर तरह दे जाते हैं । बहिर्न और सम्बन्धी किस से नहीं मरते ? परन्तु वैराग्य सब को नहीं होता । छोटी सी घटना से इतना बड़ा परिणाम निकालना हरेक बुद्धि के लिये सम्भव नहीं है, और असाधारण बुद्धि के लिए भी सदा छोटी बात से बड़ा परिणाम निकालना असम्भव है । एक फल को गिरते देखकर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का अनुमान सब नहीं कर सकते, पोप की सवारी न जाने कितने पादरियों ने देखी होगी, परन्तु ईसाई धर्म में सुधार की इच्छा सब के हृदय में उत्पन्न नहीं हुई । विशेष प्रतिभायें ही विन्दु से विश्व का अनुमान कर सकती हैं । परन्तु आश्चर्य यह है कि बहुत प्रचण्ड प्रतिभायें भी हरेक विषय में, या हर समय एक ही प्रकार से प्रभावित नहीं होती, बुद्धदेव ने रोगी या बूढ़ों को देखकर अमर होने का यत्न आरम्भ कर दिया परन्तु बहुत सी भौतिक घटनायें देखकर भी वैज्ञानिक परीक्षण आरम्भ नहीं किये । न्यूटन ने छोटी सी बात से विज्ञान के बड़े-बड़े सिद्धान्त निकाल लिये परन्तु बूढ़ों या मरतों को देखकर वैराग्यवान् नहीं हुआ । यह निश्चिन्ता पूर्व के सत्कारों को सिद्ध करती है । पूर्व सत्कार और अद्भुत प्रतिभा-यह दोनों मिलकर ससार में आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं । भगवान् के अभीष्ट बड़े-बड़े कार्य इन्हीं दो शक्तियों के मेल से हो सकते हैं । मूल शरकर में भी इन दोनों का पूरा समावेश था ।

मूल शरकर के हृदय में यह विचार उत्पन्न होने लगा कि ‘मुझे भी कभी मरना पड़ेगा । क्या इस से कितनी प्रकार बच सकता हूँ ?’ वह विद्वानों और धृष्टों से अमर होने के उपाय पूछने लगा । जब उसके माता पिता को यह पता लगा तो वह उसे बाधने के लिये विनाश कर देने का सकल्प दृष्ट करने लगे । विचारों का द्रव्य युद्ध होने लगा ।



मूलशरर ने इस कारणर से बचने के लिये कभी कारी ना जाने का प्रस्ताव रिया और अभी पनेम म विग्राभ्याम समाप्त करने की बात उठाई । उसके माता पिता वैराग्य से डरते थे, इस कारण उरका आर से विगाड की शीघता होने लगा । ऐसी दरारामें माता पिता अपन अधारता मे प्राय अपन काम विगाड लिया करते हैं । यह दूग्ने का यत्न करने वाली भन्तान को बहुत शीघ्र बात्रने का यत्न करते हैं । यह अधारता प्राय दु रान्त सिद्ध होता है । मूलशरर के माता-पिता न भी अपनी अधीरता से विगडते काम को शीघ्र से शीघ्र विगाड दिया ।

## दूसरा परिच्छेद

### अमृत की तलाश

मूल शंकर के जीवन में यह समय विषम परीक्षा का था । वह एक पहाड़ की ऐसी चोटी पर खड़ा था, जिसके एक ओर नीचे उतरने की शाही सड़क बनी हुई थी, और दूसरी ओर, जिम चोटी पर वह खड़ा था, उससे भी अधिक ऊँची चोटियाँ दिखाई दे रही थीं । बौद्ध जंगल था, कटावली पगड़डियाँ थीं, और नुकीले पत्थर थे । शाही सड़क पर हाकर नीचे उतर आना बहुत ही सहल था, परन्तु दूसरी ओर जाना जान को रतरे में डालना था । सरल मार्ग मृत्यु लोक को जाता है, उस पर अनगिनत प्राणी बड़ा सरलता से चले जा रहे हैं । दुगम मार्ग कहा का है ? क्या वह अमर लोक का मार्ग है ? कह नहीं सकते । कई राग उस मार्ग पर चलना आरम्भ करके ऐसी उलझनों में फसे कि न इतर के ही रहे और न उधर कहा जाए । बहुतसे लोग बौद्ध जंगल में कुछ कदम चलकर यह कहते हुए लौट आये, कि 'बस, जाने दो, यह सब दार्ग है' राजमार्ग का उद्देश्य निश्चित है, दूसरी ओर जाना अन्धे में कुत्त के समान हैं । त्रिशास्त्री जीव कहते हैं कि दूसरी ओर की चोटियों पर अमर लोक है, परन्तु यह किसी ने देखा नहीं । उद्देश्य सदृश—माग विरुद्ध । क्या इससे अधिक विषम समस्या भी हो सकती है ?

परन्तु मूल शंकर को इस विषम दशा में अधिक भयकना नहीं पड़ा । उसने इस प्रकार विचार किया "एक ओर राजमार्ग है, वह मृत्यु का रास्ता है । यह निश्चित है । वह मार्ग नीचे ले जाता है, यह भी निश्चित है । इस कारण वह हेय है । दूसरी ओर अनरता की सम्भावना है । नाश के निश्चय से बचाव की सम्भावना बहुत अच्छी है । यह विचार का मूल शंकर ने निश्चित मृत्यु का ओर लेजाने वाले राजमार्ग का एकदम त्याग कर दिया और सम्भावित अमरपद की तलाश के लिये कसर कसली । विवाह का कर्म देवरा उसने समझ लिया है कि इस संसार का तिलिस्मी द्वार खुल गया है । यह तिलिस्मी द्वार हरेक युग और युगती को अपनी ओर बड़े वेगसे खेंचता है । जहाँ द्वारके अन्दर पात्र धरा कि पाछे के किराड स्वय ही बन्द हो जाते हैं । पीछे लौटने के लिये सींग रास्ता तिलिस्मी बन्द हो जाता है । दयानन्द ने देखा कि द्वार खुल गया है । उसमें एक पग रक्की की देर है । द्वार बन्द होते ही अमरलोक एक इस्का सा सपना रह जायगा—पै न जागों में बर जायगे ।

अमृत क प्यासे मूलशर ने, प्रान्त घर, और साल गजमार्ग की लता का घर २१ वर्ष की उमर में बँदाइ बन वा रास्ता लिया । यह ज्येष्ठमास की एक रात (शु) घर में भाग पडा हुआ ।

मूलशर १६०२ विमाती के ज्येष्ठमास में घर से बाहर हुआ, और १६१७ विमाती के कार्तिक मास में 'राजराज' के पास गया । म पट्टा । इतना के १५ वर्षों में उमर एक सवे जिज्ञामु का जीवित व्यतात किया । घर से सम्बन्ध तोड़ दिया । घर छोड़ने से कुछ मास पीछे केवल एकताग मिश्रपुर के मेले में एक वैरागी से पुनः का सगा पार पाकर मूलशर के पिता ने उसे आ पकडा था । जब पिताने कई सिपाहियों के साथ आकर पकड लिया जब निरा किया है 'राजराज' में सिंग मुकाने के क्या चाग था । पिता सिपाहियों के पदों में खबर मूलशर का घर की और वापिस ले चले, परन्तु जिसे धुन समाई थी, वह अब कैद में पमोे वाला ग था । रात के समय सिपाहियों का सोते देत मूलशर फिर भाग निकला । दूसरा ठागर उसने एक बडे पड पर छिप कर बिताया । पिता ऐस वेमुम्बन पुनसे निराश होकर घर वापिस चले गये, और मूलशर न अपना रास्ता लिया । इसके पीछे मूलशर का घरवालों से कभासाक्षात्कार नहीं हुआ ।

मूलशर को एकही धुन था कि मृत्यु से छूटने का उपाय जाना जाय । इसे बताया गया था कि मृत्यु से छूटने का उपाय 'वाग' है । मूलशर योगी की तलाश में शहर गाव और जगल में भ्रमण करने लगा । पहले पहल तो नया होने के कारण उसे ठग साधुओं ने खूब लूटा । ठग ने रेशमी वस्त्र धरा लिये, परन्तु धारे २ कुछ विवेक हाता गया, और जिज्ञामु ठगा और सन्तों में भेज करने लगा । घर से भागने पर पहला काम मूलशर को यह किया था कि सागोे रामकृष्णम में एक ब्रह्मचारी की प्रेरणा से दीक्षा लेकर अपना नाम 'शुद्ध चेतन ब्रह्मचारी' रखा । बहुत समय तक जिज्ञामु ने ब्रह्मचारी रहकर भ्रमण किया परन्तु ब्रह्मचारी को उस समय गुजरात में सन्यासियों की भाति बना बनाया भोजन नहीं मिलता था, हाथसे बनाना पडता था । इससे शुद्ध चेतन के पठन पाठन में बहुत विग होता था । उसने कई सन्यासियों से सन्यास लेने का यत्न किया परन्तु थोड़ी आधु देखकर वह लोग सजोच करने रह । नमटा नदी के तट पर धूमते हुए उन्हें पूर्यानन्द सरस्वती नामके विद्वान् साधु के दर्शन करने का अवसर मिला । उनसे भी शुद्ध चेतन ने सन्यास देने की प्रार्थना की । पहले तो उन्होंने कुछ सजोच किया परन्तु और साधुओं की सिफारिश आने पर सन्यास देना स्वीकार कर लिया । पूर्यानन्द सरस्वती से सन्यास लेकर शुद्ध चेतन स्थामी दयानन्द सरस्वती बन गया ।

घर से निकल कर बुद्ध समय तक स्वामी दयानन्द न गुजरात में ही भ्रमण किया, वहा मे बडौदा होते हुए चेतन मठ होनर नर्मदा के तटपर चिरकाल तक भिन्न २ स्थानों में निवास किया । नर्मदा तट से आबू ठहर कर स० १६१२ के कुम्भपर स्वामी दयानन्द हरिद्वार आये और वहा के मठों और महन्तों की माया का पहली बार दिग्दर्शन किया । हरिद्वार से आप हिमालय की ओर चल दिये और सच्चे योगी की तलाश मे कठिन से कठिन चोटियों पर चढ़ कर, गुफाओं में घुसकर और घाटिया पाए करके सच्चे जिज्ञासु होने का परिचय दिया ।

इस भ्रमण में दयानन्द ने कई सच्चे और झूठे योगियों के दर्शन किये । झूठे योगियों से उन्हें घृणा उत्पन्न होजाती थी, और सच्चे योगियों से वह कुछ न कुछ सीख ही लिया करते थे । चाणोद कल्याण में वास करते हुए आपका योगानन्द नाम के एक योगी से परिचय हुआ । देर तक स्वामी ने उनके योग की क्रियायें सीखीं । अहमदाबाद में दो और योगियों से उन्हें योगदिया सीखने का अवसर मिला । इस प्रकार मिले हुए भ्रमणों से जिज्ञासु ने पूरा लाभ उठाया ।

हरिद्वार से टिहरी राय्य की ओर जाते हुए स्वामी जी को तन्त्र ग्रन्थ देखने का अवसर मिला । उन ग्रन्थों को देखकर आपके चित्त में इतनी प्रण्णा हुई कि वह फिर अनेक नई व्याख्यायें सुनकर भी दूर नहीं हुई । टिहरी से त्रिधा और योग की धुन में मस्त स्वामी ने केदारघाट रुद्र प्रयाग सिद्धाश्रम अदि का भ्रमण करते हुए मठों और मन्दिरों की दुर्दशा को अच्छी तरह देखा । तुगनाय की चोटी पर चढ़ते हुए उन्हें आशा थी कि ऊपर कुछ अच्छा दृश्य देवन को मिलेगा । वहा पहुच कर भी देवा तो वैसा ही मन्दिर, वैसे ही पुजारी—सब लाला मैदान जैसी ही था । गुप्त काशी का दौरा लगाकर श्री दयानन्द सरस्वती ओखी मठ में पहुचे । ओखा मठ हिमालय का बड़ा प्रसिद्ध मठ है । वहा की गुफाओंमें जिज्ञासु और सच्चे महात्माओं की बहुत तलाश का, परन्तु वहा भी चरत और सुल्फे के धुए से सब कुछ माच्छन्न ही दिखई दिया ।

वहा के एक महन्त ने स्वामी जी से बात चीत करके यह स्वरूप किया कि उन्हें अपना मुख्य चेला बना कर उत्तराधिकारी बनाये । ऐसा भय और पठित शिष्य उसे कहां मिलता । उसने अपना भाव दयानन्द के सामने प्रकाशित किया और यह भी बताया कि मठ के साथ द्रव्य की राशि भी कुछ कम नहीं है । दयानन्द ने उत्तर दिया कि 'यदि मुझे धन की अभिलाषा होती तो मैं अपने बाप की सम्पत्ति को, जो तुम्हारे इन माल और दौलत से कहीं बढ कर थी, न छोडता' फिर दयानन्द ने कहा कि 'जिस उद्देश्य से मैं घर छोडा, और सांसारिक पेश्वर्य से मुह मोडा, न तुम उसके लिए यत्न कर रहे हो, और न तुम्हें उसका ज्ञान है । फिर तुम्हारे पास मेरा रहना किस

प्रकार सम्भव है। यह सुनकर महन्त ने पूछा कि 'यह कौनसी वस्तु है जिसकी तुम्हें खोज है और तुम इतना परिश्रम उठा रहे हो ?' दशानन्द ने उत्तर दिया कि 'मैं स्वयं योग विद्या और योग की गायन से ही और जब तक यह प्राप्त न हो, तब तक योग विद्या की सेवा करता रहूँगा।'

मठ के महन्त ने पारा धन था, महान था, देश्य था, परन्तु न सत्य था, न योग था, और न भक्त का उपाय था—इस कारण यह त्रिशतम् दशानन्द को नष्ट कर सका। और मठ से उदा मठ छोड़ते हुए आप दरभंगा गये। आठने सुन राया था कि दरभंगागण्य क क म पास यागी रहा फल है। दरभंगागण्य की योगिण से विन्तुल शुन्य पारु योग क अभिवाध दशानन्द ने भोग प्राप्त की योगियों और गुरु भी म गान फोरे क मरुतु क्रिया। जगो आर बरु पनी हुई थी। नदियों क पानी नुमाने पथर्ग म स होकर बदला हुआ रान्तों को रोक रहा था। दशानन्द ने इ व टनाडियों की पत्रह न फाते हुए राज नारा रनी। पूाने २ आप अलहन्दा नदी के किनारे पहुँचे और उसे पार करने के लिये पानी में धुन गये। डगी नदी में किमी न डिमान धुन तक जल था, और कड़ी २ महगई बहुत अधिक थी। चौटाई छोड़ १० १।१ क अनुमान होगी। पानी बर्फ क समान टगा था, और बीच २ में नौकरार पथ और बरु क दुकने भी शिर लप थे। शीरे पर फपडा बहुत हल्लय था, और पन रिजुत नग थे। स्वामी दशानन्द का दगा बहुत ही शोचनीय होगई। पाला के अन्द बुद्ध समय के लिये ता वह विन्तुल मूर्ति से होगये, परन्तु धैय मे भपना भावर्ग बचाये रवा। शिमा प्रकार पा ता हर पर एक भाग री, दूसरी भाग भूग। पा पारंग से हिल गय व, और लटु जाग होगया था। आगे जाने की दिक्कत न गही परन्तु नदी टहर कर रात शिमान म नी मृत्यु का मामन था। उस समय परमान्वा न मृता स भक्त जो मदायता मिली। दो पडाटा राहा उधर आ गिले, यगवि व पडाडा दशानन्द को साग न ले जा गन, ता भा बुद्ध दरस अरश्य नम गया। धीव दर मुस्ता कर स्वामा जा उठ लगे हुए, और वसुधा तीथ पर बुद्ध नियम नके सदरी नागण्य को लौट गये।

दरभंगागण्य के पास पास योगी के दर्शन करने की अभिलाषा में निगम हेतु जिज्ञानु ने मन्त्र का और मुन माटा। गमपुर, दश सागर, और मुगलाबाद होते हुए आ मृदुभु न पहुँच गय। गंगा क किनारे घुम रहे थे। प्रसाह में बदला हुआ एक मु लई लिख दिया। दशानन्द ने हठ योग प्रापिका अदि में शरीर के आभ्यन्तर अंग के सम्बन्ध में बहुत कुछ पढ़ रखा था। उसके समय समय निर्णय का उचित अवसर जानकर आप पानी में नद पड़े और मुँह का किनारे पर खैव किया। लास किनारे पर र क चक्र से चीर फा का तो डा मन्त्रों म लिखे हुए शीरे वखन की बहुत अशु

पाया । असत्य से भरे हुए प्रश्नों का बोझ उठाने से कोई लाभ न देख कर दयानन्द न उन सब को फाड़ कर गंगा-प्रवाह के अण्डर कर दिया ।

गेगा तट का भ्रमण करके स्वामी जी दक्षिण का ओर जा निकले और बहुत दिनों तक नर्मदा के तट पर घूमते रहे । यहाँ बड़े २ धन जंगल हैं । एक जंगल में आपका एक बड़े भालू से सामना होगया । भालू को देखकर वह उसे नहीं प्रत्युत अपना सारा उठाकर उसकी ओर को बग्या । सीट से डर कर चिंटाडता हुआ वह भालू जंगल में भाग गया । एक बार घने जंगल में घूमते २ आपको रात होगई । अंधेरे में कहीं ठहरने का स्थान ढूँढते २ जंगल में कुछ कुटियाँ दिखाई दीं । पाम जाते पर कोई आगता हुआ प्राणी न मिला । तब रात भर आप ने एक वृक्ष पर बैठ कर गुजारी । प्रातः काल जब प्राणवासियों ने एक सन्यासी को देखा तो रात के कष्ट के लिये बहुत क्षमा मागी और उचित आदर सत्कार किया ।

नर्मदा के तट पर दयानन्द ने लगभग तीन वर्षे भ्रमण किया । भ्रमण में आपने सुना कि मथुरा में एक योगी और विद्वान् दण्डी रहते हैं । योग और विद्या के अभिज्ञापी ने यह समाचार सुनते ही मथुरा की ओर मुह मांडा और कार्तिक सुदी २ सं० १९७६ तदनुसार १४ नवम्बर १८९० के दिन मथुरा में स्वामी विरजानन्द जी का दर-वाजा जा खटखटाया ।

पन्द्रह वर्षों तक जिज्ञासु दयानन्द ने पहाड़ों और मैदानों को नाप डाला, इतने शागीर्षिक कष्ट सहे, और तपश्चर्या की—यह सब किस लिये ? सत्य योग और मोक्ष की प्राप्ति के लिये । परन्तु न हिमालय की सर्दी में दिल का भाग चुम्की, और न गंगा और नर्मदा के जलों ने ज्वालाला को शान्त किया । अब जिज्ञासु दण्डी स्वामी के द्वार पर विद्या के स्रोत में हृदय का ताप बुझाने पहुँचता है—चलो पाठक ! देखें कि उसे कहाँ तक सफलता प्राप्त होती है ?



# तीसरा परिच्छेद ।

## विद्या के स्रोत में स्नान

यह स्वामी विजानन्द जी कौन है ? पञ्जाब में कर्तारपुर के समीप गगापुर नाम का एक ग्राम था, उसमें नारायणदत्त नाम का सागस्वत ब्राह्मण रहता था । दयानन्द के गुरु श्री विजानन्द दण्डी ने उसी के घर जन्म लिया था । उच्चपन से ही बालक पर आपत्तियों का आक्रमण आरम्भ हुआ । ५ वर्ष की आयु में चेचक ने चाम की भाँखें शक्ति हीन कर दी, और १२ वें वर्ष में बालक के माता पिता होनहार बच्च को अपना छोड़ कर परलोक की यात्रा कर गये । बालक के पालन पोषण का बोझ बड़े भाई के कंधों पर पड़ा । बड़ा भाई मायावश दुनियादार भाइयों की भाती नासमझ था । वह एक भन्ने और अत एव अनुपयोगी भाई का पट पालना में कोई विलेप लाभ नहीं देखता था । भाई और मावज की कृपा से तब आकाश शीघ्र ही बालक को घर छोड़ना पड़ा ।

घर से भाग कर प्रतिभाशाली युवक हपीकेश और हरिद्वार में पहुँचा और वर्षों तक विद्यध्ययन तथा तपश्चर्या द्वारा अपनी आत्मा को सम्स्कृत करता रहा । हरिद्वार में ही स्वामी पूष्यानन्द सगस्वती की दया से उसे सन्यास मिला । सन्यासी विजानन्द विद्या की तलाश में हरिद्वार कनखल काशी गया आदि में विरकाल तक घूमते रहे और विद्वानों से व्याकरण तथा अन्य शास्त्रों का अध्ययन करते रहे । भ्रमृत के प्यासे ऋषि दयानन्द के गुरु बनने का अधिकार उसी तपस्वी को हो सकता था, जिसने एक उद्देश्य के लिये तपस्या की हो, किन्ती उराम पदार्थ की खोज में कौने २ द्दान मारे हों । इस दृष्टि से देखें तो स्वामी विजानन्द जी ऋषि के गुरु बनने के प्रणतया अधिकारी थे ।

विद्याध्ययन कर लेने पर दण्डी जी ने विद्यार्थियों को पढ़ाना आरम्भ किया । उनके यश का निम्तार चारों ओर होने लगा । विशेष कर ध्याकरण में उनका पाण्डित्य बहुत ऊँचे दर्जे का समझा जाता था । उनके पाण्डित्य और मधुर श्लोकगान से प्रमन्न होकर अलवर के राजाने कुछ दिनों तक उन्हें अपने यहाँ रखा । राजा की प्रार्थना पर दण्डी जी यह शर्त करके अलवर गये थे कि प्रतिदिन राजा ३ घण्टे तक तक अध्ययन किया करेगा । तिलामी राजा अपने प्रण को निमा नसका, पण्नु सन्यामी ने अपना प्रण निमाया । जिस दिन राजा पढ़ने नहीं आया, उससे अगले दिन दण्डी का आसन अलवर से उठ गया ।

कुछ समय रजवाडों में विताकर सा० विरजानन्द जी ने मथुरा में अपना पासन जमाया । व्याकरण पढ़ने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थी दूर देशों से—यहाँ तक के काशी से भी—दरदरी जी के पास आते थे । व्याकरण में दरदरी जी का पाण्डित्य मूर्ख हो गया था । इस समय उनके जीवन में एक विशेष परिवर्तन करने वाली घटना उपस्थित हुई । पड़ोस में एक ऋषिजी परितट रहता था । वह प्रतिदिन मूल अष्टाध्यायी का पाठ किया करता था । दरदरी जी उस समय तरु सिद्धान्त कौमुदी मनोरमा और शेर की हा व्याकरण का आदि और अन्त समझने थे । मूल अष्टाध्यायी का पाठ सुनकर मानों उनकी आँखें खुल गई । उन्हें प्रतीत हुआ कि व्याकरण का ऋषिनिर्णीत रूप कुछ और ही है । अष्टाध्यायी के सूत्र क्रम को देखने ही उनके हृदय में धारणा हो गई कि कौमुदी का बनाया हुआ रूप अस्वाभाविक है और अष्टाध्यायी के महत्त्व को कम करने वाला है । यह धारणा होते ही दरदरी जी ने ऋषिजी के ग्रन्थों का भार उनके साथ ही अन्य सब अर्वाचीन व्याकरणग्रन्थों का त्याग कर दिया । जनश्रुति है कि उनका यमुना में प्रवाह कर दिया । अष्टाध्यायी का क्रम दरदरी जी को इतना पसन्द आया कि उन्होंने अपने शिष्यों के पास जिनने अर्वाचीन ग्रन्थ थे वह फिकवा या जलवा दिये । अष्टाध्यायी और महाभाष्य—बस इन दो को हृदय के आसन पर बिठा लिया ।

क्रिया प्रतिक्रिया का सिद्धान्त सत्सरा में सभी जगह पाया जाता है । पानी एक ओर को बह रहा है । सामने पहाड़ का भागी चगन आ जाती है । पानी उल्टे पाय भागता है । उसके उल्टे भागने का वेग आगे बढ़ने के वेग के अनुपात से होगा । यदि पानी धीमी गति से आगे बढ़ रहा था, तो वीमा चाल से ही पाछे को लौटगा परन्तु यदि जल का प्रवाह वेगमन् था, तो उल्टी ठाँक भी जोर की लगेगी । दरदरी जी के विचार प्रवाह में भी जोर की ठाँक लगी । वह कौमुदी मनोरमा और शेर की के प्रवाह में बड़े वेग से बह जा रहा था । अष्टाध्यायी का मूल सूत्रक्रम सुनकर, और उसका सगल सौन्दर्य देखकर प्रताचक्षु की आँखें खुल गई । उन्हें मान होना लगा कि ऋषिनिर्णीत व्याकरण का रूप कौमुदी के घड़े हुए क्रम से बहुत उत्कृष्ट है । इतना उताहारे होते हुए भी सूत्र क्रम गुप्त क्यों होगा ? व्याकरण का पठनपाठन अष्टाध्यायी के क्रम से क्यों नहीं होता ? कारण यही प्रतीत होता था कि भोजिन्द्रिचित ने सिद्धान्त कौमुदी बनाकर सूत्र क्रम को पीछे फेंक दिया । इनसे दरदरी जी का सारा अमन्तोष भोजिन्द्रिचित पर केन्द्रित हो गया । अष्टाध्यायी और महाभाष्य से उनका प्रेम ज्यों-० बढ़ता जाता था, भोजिन्द्रिचित से त्यों-२ उन्हें घृणा होता जाता था । धीरे-२ उनके हृदय में यह निश्चय सा हो गया कि जब तरु कौमुदी और उससे सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थों का प्रचार नहीं कर जाता तब तक व्याकरण का ऋषिनिर्णीत पद्धति का उद्धार नहीं हो



सपना । यह विचार स्वयं जी के मन में सतत गया, उनके दिम पर सतत हास्य।  
 शरी विचार दिम का निरन्तर और राम का सपना हास्य। एक बार जगन्नाथ के लिए  
 रामासद ने स्वयं जी का दर्शन मं धुनारर बापन गदास्त्री होने का उपाय उद्घ।  
 प्र पक्ष प्रन्थों के भाव जगद जा न उतर में यह ब दम किया कि एक यही सब  
 कक देश म क विज्ञान का पद कर। ममा में हम विचार पर शास्त्रार्थ हा कि प्र-  
 काश का अविज्ञान म अच्छा है या कँमुी वा ? स्वयं जी न क  
 वि में उम रमा म सिद्ध कक गिया दूगा रि अविज्ञान क ठक है और कौमुी प्र-  
 प्रन्थ अशुद्धियों से भरपूर है । दूसरे एक आत्मा पर म्भुता क कसेक्टर मि० पदार्थ  
 स्वयं जी से मिलन बापे । मि० पदार्थली ग सन्तता क सीर पर उद्घा कि 'आप क  
 चाहा है , जो हम कर सकें ?' स्वयं जी ने उत्तर दिया कि 'यदि आप हमारा उद्घ  
 पुन किया चाहते है ता भोजिद विज्ञा क सत प्रन्थों का स्वयं कक जातयद ।' यह  
 प्रसिद्ध है कि स्वयं जी दालित क प्रन्थों पर गिन्थों क हाथों स जुने लगका  
 करत थे ।

यथा यह उचित था ? अष्टाध्यायी या कौमुदी क सम्प्रदाय में स्वतन्त्र सम्प्रति राग  
 स्वयं जी क लिये सवदा उचित था । यह उपाय अविज्ञान था । प्रन्थोंकी उपयोगिता  
 तथा अनुपमे गिता के विषय म स्वतन्त्र सम्प्रति गगन का विद्वानों का पूरा अधिकार  
 है । हम यह भी नहीं कह सकते कि जहाँ सम्प्रति निम्न थी । अष्टाध्यायी की  
 पद्धति का निगम परिनिर्मुक्ति न किया है । सूत्रों का क्रम अष्टाध्यायी का जीवन है ।  
 यदि क्रम की उपला कद्री जाय ता सुत्र यथ है । अनुवृत्ति असम्भव हो जाती है,  
 'विप्रतिपेये पर काय' विन्दुल व्य हो जाना है, और 'पूनासिद्धम्' का कुछ चल  
 हो नहीं रहता । अष्टाध्यायी क सूत्रों का इतना लघुकाय होना मय पर ही आश्रित  
 है । उसका मौल्य, उसका गौरव, बहुत बुद्ध म पर अवलम्बित है । क्रम का ह्रास  
 कर यदि सूत्रों का काय में ताया जाय, तो अनुवृत्ति के लिये स्मृति पर बोझ डालन  
 पडता है । 'परकाय' और 'अभिद्ध' का तो अनुमान मात्र खगाया ना सकता है । यह  
 कहा जा सकता है कि जो आत्मीमन्त्रव्याकरण वा विद्वान् बनना चाहे, यह यदि सिद्धान्त  
 कौमुदी को सत्यन्त पढ जाय तो भी सूत्रक्रम के परिचित हुए बिना वह सफलत  
 प्राप्त नहा कर सकेगा । अष्टाध्यायी और उसके सूत्रों क क्रम का अदृष्ट सम्बन्ध है ।

मुनि विज्ञानन्द ने देखा कि लोग सिद्धान्त कौमुदी को पदम सूत्रक्रम की उपेक्षा  
 करते हैं । भोजिदीक्षित के देखन म मरल पन्थु धन्तुन दूगाम प्रन्थ ने अविज्ञान  
 व्याकरण का लोप कर दिया है । उनका अन्तरात्मा इससे वित्र होकर प्रचलित पदार्थ  
 के विरुद्ध विरोह करने लिये स्वयं जी हास्य । विरोह के समय प्राय सीमा का उल्लंघन  
 हो जाता है । स्वयं जी क क्षाम न भी जा उत्र मय्य प्राय्य किया तत्र मयादा क

अतिक्रमण कर दिया इममें मन्देह नहीं । प्रन्थ को नदी में बहाने से कभी उमका शोष नहीं हुआ, और कभी जर्ना या पांथ के तले रौंदने से उसका प्रचार रुका है । परियाण प्रायः उल्टा हा होता है । आज भागतभूमि में सिद्धान्त कौमुदा की छपी हुई प्रतियां दयडी जी के समय की अपेक्षा बहुत अधिक हैं । परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि दयडी जी का यत्न व्यर्थ गया । जिस सत्य का अनुभव उन्होंने किया, और अपने शिष्यों को कराया, उसे देश के एक बड़े भाग ने अंगीकार कर लिया है । आज सुप्रक्रम पर श्रद्धा रखने वाले विद्वानों की संख्या, और मूल अष्टाध्यायी की प्रकाशित प्रतियों की संख्या भी दयडी जी के समय से बहुत अधिक है । सत्य ने अपना प्रभाव पैदा किया है, उसकी सहायता में यदि कहीं सीमा का उल्लंघन होगा था, तो वह पल का महत्त्व देखने हुए अब विस्मरण करने योग्य है । जहा एक ओर उमका अनुकरण बिल्कुल त्याज्य है, वहा दूसरी ओर बारम्बार उसे दोहरा कर शिकायत करना बुद्धिमत्ता में शामिल नहीं है ।

अस्तु । ऐसे दयडी विजानन्द जी थे, जिनके द्वारा पर कार्तिक सुदी २ सं० १६१७ ( १४ नवम्बर १८६० ) के दिन स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जाकर आवाज दी । परिचय हो जाने पर दयडी जी ने पूछा कि 'क्या कुछ व्याकरण पदा है ?' दयानन्द ने उत्तर दिया कि 'सारस्वत पदा हूँ' इम पर आवाज हुई कि पहले सत्र अनार्य प्रन्थ यमुना में बहा आओ तत्र आर्य प्रन्थ पढ़ने के अधिहारी हो सकेंगे । दयानन्द ने आज्ञा का पालन किया और योग्य गुरु के चरणों में बैठ कर विद्यामृत-पान का यत्न आरम्भ किया ।

स्वामी जी का विद्यार्थी जीवन अनुकरणीय था । प्रातः काल उठ कर नित्य किया सै निवृत्त हो कर पहले गुरु के लिये नदी से जटा लाते थे, फिर अपने सन्ध्योपासन के पीछे पढ़ने में लग जाते थे । प्रातः काल के समय कुछ चने चबा लेते थे, जो उन्हें दुग्ध खरी की छूना से प्राप्त होते थे । गणुग के बहूत से विद्यार्थियों के भोजन का प्रबन्ध बाबा अमर लाल जोशी की ओर से ग, स्वामी जी के भोजन का प्रबन्ध भी यहीं पर था । रात्रि के समय भी सोने से पहले कुछ न कुछ अभ्यास किया करते थे, जिसके लिये तेल का मासिक खर्च १) ला० गोवर्धन सराफ से प्राप्त होता था । इसी प्रकार उदार महानुभावों की सहायता से आवश्यकतायें पूरी हो जाती थीं, और शिष्य को गुरुदेवा करते हुए विद्याध्ययन करने का खुला अवसर मिलता था ।

दयडी जी का स्वभाव उग्र था । कभी २ बहुत नाराज हो जाते थे । शिष्यों के हाथों पर लाठी भी जमा देते थे । एक बार स्वामी जी की भी बारी आ गई । कहते हैं कि लाठी की उस चोट का निशान स्वामी जी के हाथ पर मरण पर्यन्त बना रहा, जिसे

देख कर वह गुरु के उपदेशों का स्मरण किया करते थे। एक गाग छोट से अपराध पर ड्योड़ी बन्द कर दी गई तब साधु शिष्यन को हितचिन्ता से सिफारिश कराई। सिफारिश से सन्तुष्ट हो कर गुरु ने शिष्य को क्षमा कर दिया।

स्वामी दयानन्द का जीवन पूरे यति या जीवन था। जिस दिन से यह जिज्ञानु भने, उस दिन से तब तक और कम से कम ब्रह्मचारी रहने का कठोर व्रत धारण किया। विद्यार्थी जीवन में दयानन्द ने पूर्ण ब्रह्मचारी रहने का उद्योग किया। एक दिन की घटना है कि आप नदी के तट पर सन्नाया कर रहे थे। घ्याल खुला तो क्या देखते हैं कि एक युवती चरणों का स्पर्श कर रही है। स्पर्शस्पर्श मक्ति में था, परन्तु पूर्ण ब्रह्मचारी ने उतने स्त्रीस्पर्श को भी पाप समझा, और कई दिनों तक एकान्त में जा कर निगहारे व्रत द्वारा हृदय को शुद्ध किया।

दयडी जी ने स्वामी ने अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि व्याकरण ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य भाष्य ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। इस से यह न समझना चाहिये कि आप न गुरु से केवल ग्रन्थों का विद्या हा प्राप्त की, उस ग्रन्थ विद्या से कहीं बढ़कर वह भाव थे, जो उन्हें गुरु से प्राप्त हुए। आधुनिक या अवाचीन ग्रन्थों का छोड़ कर प्राचीन भाष्य ग्रन्थों में श्रद्धा, मूर्ति पूजा आदि कुरीतियों से वैरभाव, और कठोर सत्य इन सब के लिये योगी दयानन्द गुरु का आभारी था।

विद्याध्ययन समाप्त हुआ। रीति के अनुसार शिष्य कुछ लोगों की भेंट लेकर गुरु के चरणों में उपस्थित हुआ और निवेदन करने लगा कि महाराज मेरे पास और कुछ नहीं है जो भेंट करूँ, इस कारण केवल आप मेरे हाँगी लेकर उपस्थित हुआ हूँ। गुरु ने कहा "कि मैं तेरे से ऐसी चीज माँगूँगा जो तेरे पास उपस्थित है" दयानन्द के ब्रह्मजलि होने पर गुरु ने आदेश किया। बड़े दुःख की बात है कि गुरु के उस समय के शब्द परार्थ रूप में प्राप्त नहीं होते। जीवन चरित लिखने वालों ने दयडी जी के वाक्य अपनी र रचित के अनुसार घड़े हैं। पं० लेखराम जी के संपादित किए जीवन चरित में जो शब्द दिए हैं वह बहुत कुछ स्वाभाविक हैं। यह कहा जा सकता है कि यदि दयडी जी ने ठीक वह शब्द नहीं कह थे तो कम से कम भावार्थ नहीं होगा वहाँ दयडी जी के निम्न लिखित शब्द दिये गये हैं।

"देश का उपकार करो। सब शान्तियों का उद्धार करो। मत मत्तान्तरों की अविद्या को मिटाओ, और वैदिकधर्म फैलाओ" दयानन्द ने आदेश को अंगीकार किया। अन्त में आशीवाद देते हुए दयडी जी ने और भी कहा। 'मनुष्य कृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषियों की निन्दा है, और ऋषिकृत ग्रन्थों में नहीं, इस वसोटी को हाथ से न छोड़ना।'

इस अमूल्य उपदेश को गिरागने करके श्री दयानन्द सरस्वती जी के द्वारा प्रकाशित  
 हुए। जो वस्तु पर्यंत की चामी पर, इन की महाराज म, स्वयं के प्रकाश में ही  
 महन्तों के डेरों में दूडी, पर १ मिनी, यह अमृत क, प्यसु गान्धर्व के मन्त्रान्त में  
 देडी विरजानन्द के शरणों म मिली। उद यन्तु प्रिया भी विरुद्ध सुद र्थ। अथ यन्तु  
 को पाकर, ब्रह्मचर्य के तेज से तेजस्वी ब्रह्मचर्या मत्ता रूप में प्रिय प्रकाश है।  
 पाठक। चलिये हम देखें कि यह क्या समार काय है, जन्ममें इसे से उद  
 करना है ?

# चौथा परिच्छेद

## खायडन वन

1875

जिन समय गुरु स आशीवाद लेकर दयानन्द ने काशी में पंच धरा, आर्य जाति का दृशा उस समय गुरु कथत स चिल्ला चिल्ला का कह रही थी कि मुझे ऐस दैव की जल्द है । भारत देश अपन पराधीनता शत्रु और दुःखों के कारण सपों भी काटकर काटियों से भरे हुए खायडन वन क समान दुगम और नीहड हो रहा था । उस धारण्यकता थी एक अज्ञान की, जो एक और अरिष्टों की रगड में आम निकालन का दावानल को प्रन्वलित करे, और दूसरी ओर आम बुझाने का यत्न करने वाले दवों और अमूर्तों के आक्रमणों का उत्तर दे सक । आर्य जाति का दुःशा उस समय एक सुवारण को बुला गही थी—एक ऐसे परगण्ये को बुला रहा थी जो उसके पीडित अंगों पर शानि देने वाला हाथ रख सके । इस परिच्छेद में हम देखेंगे कि उस दुःशा का क्या इतिहास और क्या स्वरूप था, अगला सम्पूर्ण अर, अरिष्ट दयानन्द ने उस दुःशा के मुधारने के जो यत्न किया, उसके अर्पण दिया जायगा ।

बहुत पूर्व—ऐतिहासिक काल से भी पहले—वेद और प्रगणतया वैदिक साहित केवल भारत की सीमाओं में परिमित हो चुका था । जो लोग ईसा म. ब. म, या ग्रीस में पहुँचे वह भारतीय आर्यों क अन्धु थे, परन्तु यह विषय कल्पनामक यद्यपि यथा इतिहास का है । जिस समय इतिहास क प्रकाश में दुनिया अपना मुँह उधाड़ती है भारतवर्ष का धर्म और सामाजिक संगठन और सच देशों से भिन्न ही भिन्नता है । ऐतिहासिक काल से पूर्व भारतवर्ष एक जुदा इकाई बन चुका था । गही काण्य है कि इतिहास हमें भारतवर्ष क धार्मिक और सामाजिक परिवर्तनों का जितना व्यौरा सुनाता है, वह देश की सीमाओं से परिमित है । भारत के धार्मिक परिवर्तनों का प्रभाव सामाज्यों ने बाहिर नहुन हा कम पडता है—और बाहिर के धार्मिक परिवर्तनों का प्रभाव भारत पर सभी पडता है जब उन धर्मों के अनुयायी लोग विजेताओं के रूप म देश में आ जाते हैं ।

भारत का धन, उसका विस्तार, और उसकी अन्दरूनी भिन्नता—यह सब बाहिर के विजेताओं को खेंचती रही हैं । समय २ पर बाहिर का लगनू जातिया सस्ता शिकार मारने के लिये इस स्वर्ण देश पर छापा मारती रही हैं । भारत पर मुख्य २ भावे ४ अरिष्टों में नाडे जा सकते हैं । पहला भावा सिन्दूर का था । दूसरा भावा

उत्तर की अनेक जातियों का था जो सदियां तक जारी रहा । कभी हग, कभी सीपिन और कभी पारसाक नाम भाग्य को जीतने का यत्न करते रहे । तबका धारा इस्लाम का हुआ, जो पहले के सब धारों से जगस्त, सबमे अधिक स्थायी और सास भरी कामर उत्पन्न करने वाला हुआ । चोगा धारा योगपियन जातियों का है, जो यद्यपि बहुत पुराना नहीं है तो भी बड़ा गहरा है, बड़ा जगस्त है, बड़ा भयकर है ।

भारत के धार्मिक परिवर्तनों पर यह चारों मक्रमण बड़ा गहरा असर उत्पन्न करते रहे हैं, परन्तु इसका यह अभिप्राय न समझना चाहिये कि बसल जाहिर क प्रभाव ही भारत के धार्मिक विचारों को हिलाते रहें हैं । समय २ पर आवश्यकता होने पर आन्तरिक प्रतिक्रिया भी उत्पन्न होता गी है । जाति का जगस्त के अनुसार बदले हुए यथुमडल के साथ अनुकूलता पैदा करने के लिए या मिगडे हुए द्वाचे को सुगान के लिये ऐमे सुवारक पैदा होते रहें हैं जो मिगटा के बनाने का यत्न करते रहें हैं । यदि भारतवर्ष के धार्मिक परिचयना का इतिहास देखा जायक, ता हम तबत हमका कि उसमे अतर्किक प्रतिक्रिया और बाह्य आक्रमण—दोनों का ही प्रभाव है ।

यूनानियों क आक्रमण से पूरा जो वडे २ धार्मिक परिवर्तन हुए, वह मुख्यतया आन्तरिक प्रतिक्रिया के ही परिणाम थे । ब्राह्मणग्रन्थों के याग-प्रधान धर्म के विरुद्ध उपनिषदों के ज्ञानवाद की प्रतिक्रिया हुई । फिर वही विचार उत्पन्न होने पर बौद्धधर्म प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुआ । यह दोनों बडी २ प्रतिक्रियायें बाहिर के प्रभाव से शून्य थीं । यह केवल अन्दर से उत्पन्न हुई थीं । यही कारण था कि उह सब एक ही शरीर के अंगों के समान परस्पर पूरता उत्पन्न करती थीं । ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थ एक दूसरे के हाथ में डालकर चलते रहे और एक ही पुरुष के भाव कान के सदृश जीवित रहे । उपनिषदों का उचा ब्रह्मज्ञान धरे २ त्रियाहन इशर विश्वास के रूप में परिणत हो गया और ब्रह्मण ग्रन्थोंका कमराड हिमपण यज्ञ प्रक्रिया की पद्धतियों में तत्रदाल होगया । उस समय महात्मा बुद्ध ने त्रियात्मकाम का उपश्र देते हुए प्रेम और त्याग का सदृश सुनाया और एक सारभौम धम की नींव डाला ।

बुद्ध के पीछे भारत पर सिक्न्दर का आक्रमण हुआ । सिक्न्दर का भारत में निगम बडुन जोडे समय तक हुआ । उसका कोई गहरा प्रभाव दिगर्द नहीं नेता, तो भी हम दो बडी घटनाओं में उसके दृष्टात की छाया देख सकते हैं । चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य—यत्न सिक्न्दर के उदाहरण से प्रभावित हुआ था, और अशोक का धर्म-साम्राज्य स्थापित करने का उद्योग भी सिक्न्दर के सारभौम विजय के यत्न में प्रभावित हुआ होता थाई अश्वर नहीं । जैम चन्द्रगुप्त का भारत में साम्राज्य यूनान के अमाट भारतवर्ष सम्रज्य का उत्तर सभ्यता और मत्कृति

॥ अशोक का धार्मिक आक्रमण यूनान की प्रयुक्त था ।

यदी एता एव गुण-काल म देता है। गुणों का राजनीतिक साम्राज्य हुआ और सभियनों के आकाशों से दृग रा गहारे एक प्रकाश का गिरा था। राजनीतिक संगठन प्रथम आर्य म आन वाला चणों के बाग्य ही उत्पन्न हुआ करते हैं। गुण साम्राज्य उत्तर की जातियों की दिग्ग कायग का फल था। साथ ही गुणों ब्रह्म धर्म का पौराणिक धर्म का रूप म संगठन जहाँ एक ओर आर्य जाति का सामाजिक निर्मित को मृत्ति करने वाला बग सिद्ध था, वहाँ मान है, उन उत्तर दिशा के अन्तर्गत अन्तर्गत जातियों का प्रभाव स भी हीन नहीं था। पौराणिक धर्म के संगठन में अन्दर की हलचल और बाहिर की क्रिया दोनों ही स्पष्ट दिखाई देती हैं।

बहुत काल पीछे, लगभग ११ वीं शताब्दि के आरम्भ में मुसलमानों का भारत पर पूरा आक्रमण प्रारम्भ होता है। इस्लाम का भारत पर राजनीतिक आक्रमण नहीं था। वह आक्रमण प्रामाण्य धार्मिक था, राजनीतिक राज्य उमरा केवल आनुययिक फल था। इस्लाम का तत्कार भारत को मुसलमान बना आई थी। भारत देरता को शिकार को निम्न पाया। दिन भित्त भारत बाड़ ही गुण में राजनीतिक एग्रीमता म आ गया। तत्कार का अमली उद्देश्य भारत का धार्मिक शक्ति म सर करना था। यह निधम स ता जा सता है कि उद्देश्य म इस्लाम की काफी सफलता नहीं प्राप्त हुई। कारण यह कि जना भारत कई हिया तर पराधीन रू कर भी अपनी सम्मिलित राजनीतिक शक्ति को मुसलमानों का राजनीतिक शक्ति का विरोध म मडा न कर सका, यही उमन प्रारम्भ से ही अयो धार्मिक संगठन को सपनानुहल परिवर्तित वरके अलगहा के लिय मडा कर दिया था।

मुसलमानों के मुदीरि काल में भारत क धर्म में हम जो उत्तम अन्त दिखाई देने है, वह दो प्रकार के है। एक आर बाय आक्रमण को रोकने के लिये खाइयां खुली है, दूसरा आर वड मशाओं पर एक विधायी निद्रान्त में इस्लाम और हिन्दू धर्म को सम्मिलित करने व प्रयत्न कर रहे है। इन दोनों ही में हमें बाहिर का अमर दिखाई देता है। मनाप्रभा पना खानपान के बन्धन, जति के वडे विभाग, हूँ छत, पद बाट थीं, जिना उद्देश्य भारतीय धर्म का उस्ताम से रखा करना था। सभियों तक भारतीय धर्म इस्लाम के प्रभाव को रोकने के लिये चेष्टा करता रहा और उनम कुछ भी सन्देह नहा कि जैसा असफलता धार्मिक दृष्टि से उस भारत में हुई, वैसी कहीं नहीं हुई।

परन्तु जो अन्दर इस्लाम की गति को रोकने के लिये बन रहे थे, वह हर प्रकार से लाभदायक ही सिद्ध नहीं हुए। उन्होंने शुद्ध हवा का प्रवेश रोक दिया, उन्नति और विराम के लिये गुणायक न जेता, और धर्म के अलखान् प्रवाह को ऊँच किनारों में

घेर कर काई मच्छर और कीचड़ का घर बना लिया । शत्रु के घाघे को रोकने के लिये शहर के निवासी चार्ग और खाई खोद लेते हैं, ऊची दीवार चुन देते हैं, बाहिर जाना भाना रुक जाता है । शु. अन्दर न आ सके परन्तु शहर के निवासी भी बाहिर नहीं जा सकते । उन्नति रुक जाती है, खाना पीना कम हो जाता है, महामारी पड जाती है । यदि कोई नगर अपनी रक्षा भी करना चाहे, और महामारी से भी न मरना चाहे, तो उसके लिये एक ही माग है । वह किन्हेसे निकल कर शत्रु पर जा दूटे और उसे मार भगाये । दुर्भाग्य से उन समय हिन्दू धर्म में जान नहीं थी । वह आत्म रक्षा में लगा रहा, इस्लाम पर प्रत्याक्रमण करने का उसने विचार नहीं किया । फल यह हुआ कि घर में महामारी पड गई । १६ वीं शताब्दि के मध्य में हम भारत के असली धर्म को जजीरों से बचा हुआ, दीवारों से घिरा हुआ, और शहतीरों से दबा हुआ पाते हैं ।

मुसलमान काल के अन्तिम भाग में, अकर की उदार धर्म नीति के प्रभाव से कुछ ऐसे भी यत्न हुए जिनका उद्देश्य धर्म के विश्वरूप को आगे रखकर हिन्दू मुसलमान के भेद को मिटाना था । भक्त कबीर ऐसे यत्न करने वालों में से मुख्य था । कबीर के शिष्य उसके सिद्धान्त का निम्नलिखित शब्दों में बयान करते हैं—

सबसे हिलिये सत्र से मिलिये सत्र का लीजिये नाऊ ।  
हानी हाजी सब से कीजिये वसे आपने गाऊ ॥

भक्त कबीर के वचना में ज्ञात होगा कि वह धर्म के व्यापक रूप में भेदों को किस प्रकार तिरोहित करना चाहता था ।

कबीर के शिष्य बुल्ला साहिब ने अपने झूलने में यह कविता लिखी है ।

जह आदि न धन्त न मध्य है रे जह अजरु निरजन है मेला ।  
जह वेद किते धन भेद है रे, नहिं हिंदू तुर्क न गुरु चेला ॥  
जह अश्या मरन न हानि है रे, अगम अवार में जाय खेला ।  
बुल्ला दास अतीत या बोलयारी सत गुरु सत शब्द देला ॥

मारवाड के भक्त दरिया साहिब ने हिन्दू मुसलमान दोनों को एक ही पलडे में डाल दिया है ।

मुसलमान हिंदू कहा, पट दरमन रक राव ।  
जा दरिया निज नाम बिन सत्र पर जम का दाव ॥

दुलनदाम जी अपने झूलने में कहते हैं—

हिंदू तुर्क दुइ वीम अजाम, आपनी ताकीन म ।  
यह सब है, फल यान दशरथनन्द का ॥



वही कवि मत्तनाम र्च च के विषय म कर्त है —

तीन लोक तो वेद धर्याना । चौथ जात्र का मम १ जाना ॥

भजात्र धर्मीदाम जी कहते हैं —

एक धना धन मारा हो ।

ज। धन ने जल भये धनी बधु दिव तुम्ह रडोरा हो ।

सा धन धरनी सज्जदि पावो केवल स गुरु के निहोरा हो ॥

कनार तथा अन्य भक्त का यह यत्न चाहे रितना ही उत्तम था, परन्तु उसी सफलता नहीं हुई । सफलता न हान का कारण स्पष्ट है । मत्त लाग दो ऐस धर्मो क मिलाना चाहते थे, चिनके मिलन में दो वही २ रहस्यो थी । पहिल रफ का ग- न्तिकि ३ । मुसलमान विजेना थे, हिन्दू विजिा थे । जग एक मे विजेना वि- के धम का तुच्छ मान कर उससे साथ सन्धि करम को उद्यत गही हेत ३१ वि- जाति यन् इति, स चौध आत्माभिमान ररती हा तो कमा विगे ॥ के धमो का स्वीर करने के लिये उद्यत नहीं हाता । राजनातिक पराजय से गये हुए आत्मपम्माय क न धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र म चौगुन हठ के साथ सभलने का यत्न करि है कत्रो और उमक साधियों की अमरता मा दूनरा कारण यह हुआ कि ३० ऐमः धर्मो को विनाना चाहत थे, जो मौलिक रूप से भिन्न हैं, जिमी भावार भूत्र फल नाथ ही हटा २ है ।

विशेष के पन्न निम्न हूण । हिन्दू धर्म ने प्रत्यक्रमय करन मा यत्न न कर आत्मरक्षा के लिये खाई पर खड स्वाग, नीरार पर दाखर खुती । यदा तक कि र पुन लगा, उचित भोजन क अभाव स टाचा दीला हान लगा, भग से अग जु हागया । हाभ हूण, निरे हूण, भूमे सिने में सदा फूण पड जाया रगी है । हिन्दू के त्रिे हूण किले म भी फूण पड गई । परिणाम म अनगिनत मत और सम्प्रदाय उन्प हागये जिनरा अतिक सय्या का अनुमान इमी से लग सन्ता है कि वैश्य, जय, और शाक्त इन तीन बडे पन्त्रो में से कवल वैश्य क हो निम्नलिखित २० सम्प्रदाय थे जो एन दूमेर का मूठ मानत और कहत थे ।

( १ ) श्री सम्प्रदाय ( २ ) बल्लभाचारी ( ३ ) मन्वाचारा या ब्रह्म सम्प्रदाय ( ४ ) सनरातिक सम्प्रदाय या 'नीमायत' ( ५ ) रामानन्दी या रामायत ( ६ ) राधावल्लभी ( ७ ) निवानदी ( ८ ) फरीफन्थी ( ९ ) म्वासी ( १० ) मल्लुन्दामी ( ११ ) दादु- पन्दी ( १२ ) रमदासा ( १३ ) मेनाई ( १४ ) मीनेवाइ ( १५ ) सानीभाय ( १६ ) चग्गादामी ( १७ ) हागिबन्दा ( १८ ) सबनाप'या ( १९ ) गण्डी ( २० ) वै मी और नाम सत्य सा ।

-जंगों के ७ बड़े भेद थे --

( १ ) सन्धासा दगडी आदि ( २ ) घोमी ( ३ ) जगम ( ४ ) ऊर्ध्व बाहु ( ५ ) गूदड़ ( ६ ) रखड ( ७ ) कटावगी ।

शक्तियों के बड़े भेद निम्नलिखित थे --

( १ ) दक्षिणाचारी ( २ ) वामी ( ३ ) कानचलिय ( ४ ) कगरी ( ५ ) अघोरी ( ६ ) गायपत्य ( ७ ) सौगपत्य ( ८ ) गनहगन्नी ( ९ ) गगालाला ( १० ) प्राण-नाथी ( ११ ) साध ( १२ ) सन्तनामी ( १३ ) शिखनागायणी ( १४ ) गन्यपादा ।  
( आयदपख । जून १८८० ई० )

तालिका यह दिखाने के लिये उद्धृत की गई है कि १६ वीं शताब्दि के मध्य में हिन्दू धर्म का ढाँचा किस प्रकार से विगड़ चुका था । भेद वेदव बढ गये थे । मनाचार पूरे जोर पर था । धर्म की प्रेरिका शक्ति जता रहा थी ।

भारत का प्राचीन आर्य धर्म हम सडई का तथा म. भा जन देश पर चौथे विदेशी तूफान का आक्रमण हुआ । यूरोपियन जातियाँ आखेट भूमि की टोह लगती हुई भारत के समुद्र समीपवर्ती सीमाप्रान्तों पर आ पहुची । उन्हें किस प्रकार देश में प्रवेशमिला, किस प्रकार देश की जिवाडी हुई दशा में उन्हें यहा आधिपत्य जमाने में सहायता दी, किस प्रकार अन्य शक्तियों को परास्त करके अप्रेजों में प्रभुत्व जमाने में सफलता प्राप्त की—यह मत्र विषय सा इतिहास के हैं । हमें यहा यह देखना है कि यूरोपियन सफलता का प्रभाव भारत के वार्मिक विचारों पर किस प्रकार पडा । यूरोपियन जातियाँ अपने साथ दो वस्तु लाई—एक ईसाइयत, और दूसरा पाश्चात्य मन्थता । इन दोनों का भारत पर एक साथ हमर हुआ । इस्लाम तलवार के साथ आया था, यह बढ वग स फैला, परन्तु उसका प्रतिरोध भी उसी वग से हुआ । ईसाइयत का प्रचार दूसरी विधि से हुआ । उस विधि में शिक्षणात्मक, प्रचार का साठन और प्रलाभन—यह तीन साधन प्रदान थे । ईसाइयों ने स्कूल और कालिज खोलकर भारत के शिक्षित समाज को या जाने का यत्न किया । कुछ काल तक उन यत्न में सफलता भी हुई । ईसाइयों का प्रचार सम्बन्धी अगलन पहिले ही बहुत बढ़िया था—भारत के अनुभव में उत्तर अंग भी अधिक प्रगता आमाई । जो भारतवासी ईसाई बन गये, वह चाह विन्नी भी दर्जे के हों, सरकारी नोकरियों में उन्हें तर्जिह दी जाने लगी । इस प्रकार ईसाई धर्म धीरे २ परन्तु निश्चित रूप से देश की गडगई में प्रवेश करने लगा ।

जब तक इस्लाम का प्रचार तलवार के जोर में होता रहा, हिन्दू धर्म भी उरम्मे बढ़ने के लिये अपने का के चारों ओर बाँधे खेदता रहा, परन्तु अलग तरा उपाध

दो उत्तरवर्ती राजाओं ने गहरे शान्त उपायों से इस्लाम की जड़ पाताल में पहुँचाने का उद्योग किया, तब ऐसे भक्तजन उत्पन्न हुए जिन्होंने हिन्दू मुसलमानों के परस्पर भेदों को दूर करके एकेश्वरवाद के मरुदे तटों राने का यत्न किया। फिर जन भीरगजरा ने शान्त नीति का परित्याग किया, तब उत्तर और पश्चिम में हिन्दू धर्म तराना गर गर बढ़ा हुआ। यह स्मरना रखना चाहिये कि भीरगजरा की अनुदार धार्मिक नीति से पहिले सिन्धुसमाज भी हिन्दू मुसलमान के भेद को मिटाने का ही एक यत्न था।

ईसाइयत का प्रचार अरुण का नाति से शुरू हुआ। परियास भी वैसा ही हुआ। निरशान्ती भावनामित्री ने हृदयों ने दिना निमा आशरफ के ईसाइयत के प्रभावों का स्वागत किया। कड़ बडी प्रकृष्टा और धान्यता रखने वाले भारतयत्ना, जो शायद तब धारी धर्म का सामना करने में तलवार के घाट उभरने को सहर्ष उद्यत होते, इस शान्त धानि के शिकार हुए। कुछ ही समय पीछे ईसाई काल के कबीर भा जन्म लेने लगे। धर्म के निरुवरूप में इसाइयत और हिन्दुधर्म के भेद का क्पना देने का उद्योग बगाल में ब्रह्मसमाज ने उठाया। यदि ब्रह्मसमाज के इतिहास को विस्तार से पढ़ें तो हमें प्रीति हागा कि उनके नेताओं का उद्योग इसाइयत और हिन्दू धर्म की मध्यमवस्था निकालकर दोनों को साथ २ दार्शनिकी बनाने के लिये था। हिन्दुधर्म को इसाइयत की कनन लगा कर उस रगड को दूर करने के लिये था, निमका शान्त या देर में उत्पन्न होना अब शक्यमानी था।

शान्त परन्तु गहर और पेचगर उपायों से इसाइयत भारत के धार्मिक दुग में प्रवेश कर रही थी। यह दुर्ग बडी शोचनीय दशा में था। रीति और बन्धन की जो बाड़ें इस्लाम के धानि को रोकने के लिये बनाई गई थीं, वह अपनी ही पृथि को रोक रही थीं। चारदावारी से धिर जाने के कारण हवा गन्दी हो गई थी, पानी सड गया था, अन्न कण्ट क कारण दुर्ग के निवासियों में शूट पडी हुई थी। दुर्ग की दशा को यदि सक्षेप में कहना हो तो हम कहेंगे कि भारत के निजधर्म हिन्दू धर्म—को रुडि और तुच्छ भेने क रोग लगने हुए थे। एक थोर बन्धन और राति रिवाज का थार दूसरी थोर तुच्छ भेदों के कारण एकता का नाश—यह दो रोग थे, जिन्से भारत का धर्म रूपी शरीर पीडित हो रहा था। चुपचाप इसाइयत क कीटाणु हवा और पानी क साथ उस शरीर में प्रवेश कर रहे थे। ब्रह्मसमाज ने इस दशा का अनुभव तो किया परन्तु रोकने का जो यत्न किया यह यह था कि इसाइयत के कीटाणुओं से युक्त जलको 'कुछ स्नादु रूप द दिया। इस उपचार से रोग दूर होगा या नहीं—कीटाणुओं से युक्त जल शरार में प्रकृष्ट होने से रुकेगा या नहीं—उन प्रश्नों का उत्तर हम नहीं देंगे, क्योंकि इतिहास दे चुका है।

यह दशा थी जब दयानन्द ने गुरु से विदायगी ली। उसने इस दशा के मुधार का क्या उद्योग किया? यह अगल परिच्छेदों का विषय है।

# पांचवां परिच्छेद

## सुधार की प्रारम्भिक दशा ।

( ई० १८८३ से १८८६ )

यह सम्झना भूल है कि स्वामी दयानन्द न गुरु के पास से आते ही सुधार का पूरा कार्यक्रम विस्तारण कर दिया था । गुरु के पास से गिरा हाने के समय स्वामी जी के पास ये वस्तुयें थीं । ( १ ) उनके पास सत्कृत व्याकरण और दशनों का पाण्डित्य था ( २ ) अखण्ड ब्रह्मचर्य, प्रतिभा, उत्साह और व्याख्यान शक्ति-यह गुण विद्यमान थे ( ३ ) विद्वानों साधुओं और पन्थाइयों की दशा देख कर निश्चय हो चुका था कि धर्म की दशा बिगड़ी हुई है । सुधार करने और विशुद्ध धर्म का प्रचार करने की अभिलाषा विद्यमान थी । एक सुधारक में जिन गुणों की वाजरूप से आवश्यकता होती है, वह स्वामी दयानन्द में विद्यमान थे । साथ ही यह भी निश्चित है कि सुधार कार्य के यौवन में स्वामी दयानन्द के शस्त्रागार में जो २ साधन सन्नद्ध हो गये थे, अभी उनमें से कुछेक का विकास होना बाकी था । ( १ ) अभी स्वामीजी को वेद पूर्णतया प्राप्त नहीं हुए थे । वेदों की पुस्तकों तक की खोज अभी शेष थी, उनकी व्याख्या या उनमें एकान्त भावना की अभी चर्चा तक नहीं थी, ( २ ) विस्तृत ससार का ज्ञान ससार में भ्रमण करने पर ही प्राप्त होता है । अभीतक गृहस्थों और पुजारियों की सृष्टि में अधिक प्रवेश का अवसर नहीं मिलने से रोग का पूरा २ ज्ञान भी नहीं हुआ था ( ३ ) रोग का ज्ञान होने पर भी सुधार रूपी दवा का ठीक प्रयोग तभी हो सकता है, जब वैद्य कुछ परीक्षण कर ले । वैद्य पहले एक दवा का प्रयोग करता है, फिर उसके फल यदि सन्तोष दायक हो तो उसी को जारी रखता है अन्यथा बदल देता है । चतुर से चतुर वैद्य ठीक परीक्षण करके ही ठीक औषध पहुचता है ।

पहले तीन साल तक स्वामी दयानन्द ने जो सुधार का कार्य किया, वह एक प्रकार से परीक्षात्मक था । वह उस भारी और सवतोमामी सुधार का प्रारम्भिक पड़ाव था, जो कुछ वष पीछे भारत के विशाल कार्य को प्ररम्पित कर देने वाला था, हम इस प्रारम्भिक कार्य में भी उन सभ गुणोंको वीज रूप में पाते हैं, जो पीछे से वृक्षरूप में परिणत हो कर सफलता के साधन हुए, परन्तु पीछे से सुधार के प्रोग्राम में जो पूर्णता आ गई थी वह

आ गई बली । सुधार रूपी चित्र की वाणरेखायें तय्यार थीं,

पान्तु उसमें गी और छया का स्थान खाला था, जिसे भाने क विषे समय और और अनुभव का आशय था ।

इन प्रारम्भिक मान गला में 'सामी जी' का सुत्र उपस्थित विषे, उनमें से पहला और मुख्य रंग मूर्ति पूजा के व्यवस्था का है । मूर्ति पूजा में उनका विरक्त उमा लक्ष्मी म हिल चुका था, पिन क्षण उन्हीने शिवगति की अपिपारी म शिवार्णव के ऊपर स मूर्ते को गणल उठाते हुए लेला था । उस समय जो अभवा उपपन्न हुए, वह सन्मग शिवाभ्यास और शिवार्णव शिवेरी विषय के रूपा म परिणत हुए । मूर्ति पूजा को नाना-वर्ण मान का परात्मा के निःकार निरूप अद्वितीय रहस्य का प्रतिपादन स्थाना दयानन्द का प्रारम्भ में ही लक्ष्य था । सुत्रार्थों की कर्तव्य ईश्वरसम्बन्धी विज्ञान है । कोई सुत्रार्थक या धर्म-शास्त्रक उपास्य द्रव का जिम स्वरूप में प्रतीयता काता है, उपासने उसका ऊच गच परणव जाता है । ईश्वर-रूप-सम्बन्धी विचार धर्मों के पौनर्द । कोई म वतोरक्षण जन्ता म कोई मारी परिचयन नहीं उपपन्न का सकता, जब तक वह उनके मूल शक्ति विरलो को गय रण पर नहीं मेड लेना । मूल धार्मिक विचारों में प्रथम रक्षा रक्षण शक्ति का है । कई सुत्रार्थक यत्न करते हैं कि वह आद के पड का पत्तिा में पैरन्द लगा कर फल को मीड बना सकते, परन्तु निराश है कि वे निगण हुए । उने यत्न हुए, और निराल हुए । जब तक तने में पैरन्द नहीं लगता । तब तक फल मठि नहीं हो सकते । स्वामी दयानन्द के हन्व में पुत्रों की भावना का प्रारम्भ मूर्ति की मत्ता म अथवा हान से हुआ था । ईश्वर सम्बन्धी अशुद्धि-विचारों की जड में यह पहला युद्ध था । ज्यों-रे विद्या का वृत्ति होता गई, ज्ञान क चक्षु खुलते गये, सन्मगों में उपदेश सुनने का अन्तर मिलता गया वही प्रारम्भिक भवना अप्रिकारिक पुष्ट होती गई । शिवाभ्यास ममास करने क अनन्तर स्वामी दयानन्द ने जो पहला सन्देश जनता को सुनाया वह निगकार ईश्वर की उपासना का था । मथुरा से सीधे आप आगरे गये, और यमुना क किनारे गैर के पाम लाला गन्तामन्ल रूपचन्द के वाग्धे में ठहरे । वहा अन्य स दुपदेशों के साथ रे मूर्ति पूजा का व्यवहन गकर जारी रहता था । स्वामी जी ने वहा पञ्चशी की कथा प्रारम्भ की । उसकी १६ वीं कारिका का उक्तार्थ यह है 'माया शिब्यो वशी कृत्य तास्यात्सर्वं ईश्वर' माया में चिदात्मा का प्रतिबिम्ब पडता है, 'वह माया को वश में कर लेना है और ईश्वर कर्ता है । कहा निगकार ब्रह्म—और कहा उसका प्रतिबिम्ब पडता । ईश्वर प्रतिबिम्ब मात्र है—तरा नहीं । जिस दयानन्द ने वेदों म 'अकार्यमदृष्टमन्तारि' इत्यादि शब्दों से विशेषत ब्रह्म का अध्ययन किया म, और प्रथम तत्रा ईश्वर एक ही चिदात्मा के नाम है—यह निर्याय किया था, उसे पञ्चदशी क एस लेने ने धक्का दिया । स्वामी दयानन्द ने उस समय से पञ्चदशी और अद्वैत के भव्य मन्त्रों को त्याज्यों का श्रेणी में निम्न लिया ।

जीवन चरितों के लेखकों ने लिखा है कि इन पहले तीन मानों में स्वामी दयानन्द वैष्णव मत का खण्डन करते थे, और शैव मत का प्रतिपादन करते थे। उम समय, (और अब भी यही दशा है) मथुरा के भरत पास वैष्णव सम्प्रदायों का बड़ा जोर था। मधुग कृष्ण जी की पुरी है। वह वैष्णवों का गुरु है। वहां रहते हुए आपने उस अन्व परम्परा को देखा जो कृष्ण के नाम पर चलाई गई थी। रामानुज और बल्लभ सम्प्रदाय की लीलाओं के देव्यन का भी आपको अवसर मिला। भागवतकर न योशिराम कृष्ण के चरित को कई अंशों में पैसा बिगाडा है, यह भी आपन भली प्रकार देखा। इस कारण उस समय स्वामी जी के हृदय में वैष्णवों के विभक्तों के प्रति बड़ा क्षोभ था। श्रुन्दावन की लीलाओं उन्हें प्रेरित करती थी कि वह वैष्णव मत का खण्डन करें। आगर से जौलपुर ठहरते हुए स्वामी जी ग्वावियर पहुँचे। वहां सीविया की ओर से भागवत की कथा का प्रबन्ध हो चुका था। एक विद्वान् साधु आया है, यह सुनकर महागज ने स्वामी जी को भू निमन्त्रण भेज दिया। स्वामी जी ने हल्का भेना कि नागवत की कथा से दुःख के मित कुत्र मिलेगा, यदि सुख चाहते हो तो गायत्रा का पुश्रण कराओ। राजा यह सुनकर कराल हस दिया। भगवत की कथा प्ररम्भ हो गई। उर स्वामी जी ने मन्त्रण में भागवत के खण्डन में श्रान्तान दो आरम्भ किये। स्वामी जा बुद्ध समय भ्रमर और उपदेश में विता कर जयपुर पहुँचे और वहां चार मास तक रह। यहां आप उरनिपणों की कथा कर्ण थे, आर मूलरुका का खण्डन करते थे। भागवत के खण्डन में जयपुर में मने एक विज्ञापन भी प्रकाशन किया, जिसमें बतलाया कि भागवत के रत्नावधामदेवनी, अन्तु वापट्य ना। का खण्डन हे, सिताकृष्ण के निरालक चरित को कलकित कर दिया है। पु एर के मेले में ह्वरर स्वामी जी ने रामानुज सम्प्रदाय का खूब खण्डन किया, और क खण्डन म तुणई। इस प्रकार स्वामी जी मूर्ति पूजा और अन्य सब कुरीतियों के विरुद्ध जो भयंकर तृप्तान खटा करण वाले थे, उसका पहली चोटें वैष्णवों पर पड़ी। प्रतीत होगा है कि वैष्णवों के विरोध में प्रारम्भिक काल में वह कभी २ शैव मत का पक्ष ले लिया करते थे। उमके दिपय में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम तो यह कि अब तक स्वामी जी का सुशर का पूरा प्रोत्राव बना नहीं था— बन रहा था। दुमरी यह बत कि स्वामी जा कहा करते थे कि शिव परमात्मा का नाम है, पार्वता के पति को मैं नहीं मानता।'

आपको गोरक्षा की प्रारम्भ से ही धुन थी। १८६६ ई० के मई मास में स्वामी जी अजमेर पहुँचे, और बसंतलाल जी सरिश्तेदार क यहां ठहरे। यहां आप मेजर ए जी डेरिडसर, कमिश्नर और कर्नल लुक, असिस्टेंट कमिश्नर, से मिले और उनके सन्मुख गोरक्षा का प्रश्न रखा। स्वामी जा ने उन्हें समझाया कि गौओं की हत्या बन्द करने से राजा और प्रजा

है। सरकारी अफसर तो सरकारी अफसर ही ठहरे हैं।

कॉन्ग्रेस कमिश्नर सारथि ने स्वामी जी को मात्र माद्विष के नाम एक पिस्ट्री गिण दी और वह दिवा कि आप "सम सन्धि स अक्षय भिन्ने, जिम महिष का आप मेरी पिस्ट्री गिणाले, यह आप स आदय निनेगा" सरकारी अफिस का मोटा इन्कर स्वामी जी न जानित स अनीवार कर लिया । यह स्वामी जी के हृदय की सुदृढा और सादगी का सबूत है ।

प्रारम्भ से अन्दरे विभागों को प्रगट करने के लिए स्वामी जी नीच उपाय काम में लगे थे । व्यवस्थान देने थे, विद्यापन निरालने थे, और शास्त्रार्थ के लिए सलसवाते थे । व्यवस्थान तो समा स्थानों पर देते थे, जद्युग भाषि में लिगिया विज्ञापन भी प्रकाशित दिये । पहले पदल आपरा स्वालिग में भागरा के विषय में वैषम्य परिदृशों को धेरेज दिया । जीवन चरित्तों में लिगा है कि सत्र पौगथिक परिदृश इतर उतर भिन्नक गये, कई सामने नहीं आपा । कि जद्युग में महामाज के सागा ध्याम कशीराम जी आदि स स्वामी जी का शत्रुम डुभा । इसमें भी पौगथिक परिदृश निदतर होगये । शास्त्रार्थों की बहुत घूम तो पुनःप्राज स रही । यहाँ आप देर तक ब्रह्मा जी के मन्दिर में निवास करत रहे । कभी पयडों में, कभी ब्राह्मणों से, और कभी सन्यासियों से शास्त्रार्थ की चर्चा चलती ही रहती थी । एक बार बहुत से पयड लट्टे गेरर स्वामी जी पर चढ आपे । यों ता स्वामी जी अकेले ही पर्याप्त थे, परन्तु एक सहायक भी आ पड्डा । ब्रह्मा जी क मन्दिर के पुत्रारी मानपुरा जा मोटा टपडा लेकर पड्डेच गये और पयडों को मला दिया । अनमर में लौटन पर आपका पान्दरी शैविन्दन और पान्दरीशुल ब्रेड से ईंधन जात्र आदि विषयों पर ३ दिन तक शत्रुार्थ होता रहा । पादगियों की निरुता होत पडा । वह स्वामी जी के मुँरे हुए विभागों और वाक चापुरी से इतने प्रसन्न हुए कि स्वामन जी को एक पत्र लिख कर दू दिया, जिसमें लिगा कि हमन जीवत भर में एसा सन्कृत का विद्वान् नहीं दला । एसे मनुष्य मसाल म तम हान हैं ।

इस प्रकार यह तीनों उपाय, जिसे एक प्रचारक को काम लेना चाहिये, प्रारम्भ से ही श्रुति द्यानन्द ने अगीकार कर लिये थे । आगे इन्हीं साधनों का विकास होता गया यहा तक कि स्वामी जी वाखी लेख और शास्त्रार्थ-इम तीनों प्रकार की युद्ध सामग्री के अधाधर हो गये ।

## छठा परिच्छेद ।

### सुधार की मध्यमदशा का आम्भ !

१८६७ ईस्वी के अत्रैन नाम में हरिद्वार का बड़ा कुम्भ था । देश भर के साधु सन्यासी इस मेले में एत्र रहते हैं । हिन्दू जाति की भलाई और सुगई, सुन्दरता और पुरुषपता, दोनों का ही स्पष्टरूप से दिग्दर्शन करना हा, सो दस पाव दिन इस विख्यात समारोह की सैर कर लेना पर्याप्त है । हिन्दू जाति श्रद्धामयी है । उस श्रद्धा का कुम्भ के मेले में मानों समुद्र उमड़ पड़ता है । जहाँ एक ओर ऐसे बड़े पुरुष लठिया टेक कर स्टेशन से धर्मशाला की ओर जते दिखाई देंगे, जिनकी फरर झुक गई है, दात मुँह को छोड़ भागे हैं, एक पाव यमपुरी की दरतीज पर धरा जा चुका है, वहा दूसरी ओर दुधमुह बन्धे, धूप और व्यास का कण सहन करती हुई असुर्यम्पश्या हिन्दू ललनाभा की गोद में रह कर भारत की माताओं के अतुल विश्वास और तप की सूचना देते हैं । गृहस्थ लोग लाखों की सख्या में एत्र होकर साधु सन्तों के दशा व्रते हैं, गंगा के त्रिशुद्ध शीतल जल में स्नान करके अपने को धन्य मानते हैं, और अत्र तक भी हिन्दूपन जीवन है, इसकी सूचना देते हैं । ऐसे ही मेले भारत की आर्य जाति की मौलिक एकता को निद्र करते हैं । भीड़ में दृष्टि उठा कर देखिये कहीं आ-घड पनानी साफा दिखाई देता है, तो कहीं लखनऊ के शौमीन की दृपल्ली टोपी में से घुमगले बाल दृष्टि मोचर होते हैं । कहीं मद्रासी के नगे सिं पर मोस्तुर से दुगनी शिगा नजर आती है, तो कहीं नाशुक गुजराती के नाटे शरीर के शिरो-भाग पर लाल पगडा सुहाता है । सागरा यद् कि भारत भर के हिन्दू निरामी एक डोरी में बन्धे हुए हैं—कुम्भ के मेले पर अविश्वासी से अविश्वासा हरय मा इस बात पर विश्वास किये बिना न रहगा ।

यद् रास्वीर का उज्वल पहलू है । प्रधेग पहलू भी कुछ का गहन नहीं है । छल कपट आलस्य तथा स्वार्थ के शरीर बिना दूडे ही नित्र जायंगे । भोगमय त्याग, दुःआचारमय साधुभाव, और एत्र का त्रिरोधी रूप आचरने पग पग पर निगाई देगा । नित्रके गृहस्थ नहीं हैं, उनके अन्त पुर में पुत्र कलत्र, नित्रकी आनन्दनी का कोई नाथा नहीं है, उनके ब्या पर हाथी और घोडे, और जो त्यागा बन्धवाने हैं उनके मन्दूओं म ताबों के तोडे—यद् सत्र कुछ बिना विगम मत्र के ही दण्य जायगा । सरत दृढा भक्त और भक्ताओं के विश्वास का तत्र बग्ने काले भग्ना भेश्यगी श्रेष्ठर बित्र र



उपायों से अपने इन्द्रिय मुख की साजना म गग गिगाई देना है । जिसे हिन्दू धर्म को गिरा डूँडे दशा दबनी हा, वह आर्यों खाल पर एक वाग हरिद्वार के कुम्भ की सँ का था । नए एक आग कुम्भ पर एकल हुआ जन नरुद देश म क हिन्दुओं की मौलिक पन्ता की सूचा करता है, व.। गाव ही वह हिन्दुओं की नासमका और धन्वी श्रद्धा म पन्ता का भी सूचा करता है ।

स्वामी दयानन्द कुम्भ-स्नान से एक मास पूर्व हा हरिद्वार पहुच गये, और सप्तमी के पास गंगा को रेती में बुल द्वाप डाल कर म य में पाण्डव-सगडनी भण्डी गाड दी । सत्सनात म सड ह्य युक्त मुआक क सामन जो पारुण शिवा उपस्थित हुआ हागा, उसरी कल्पना का ना मरनी है । एक ओर समार म अरुठ हिमालय और भागीरथी का प्राकृतिक चित्र, दूसरी ओर अज्ञान और छल क मातृक चमत्कार क्या यह आश्चर्य और वेद उन्वन करने वाला दृश्य नहीं है ? सप्तमी पर खडे हो कर नरा उत्तर का ओर दृष्टि उठाइये । परंत के पाछे पवन, नगल के ऊपर जगल, यहा नय बराबर चला गया है, यत्र तक कि हिमालय की गगामशिनी चोटिया चादी के सदरा चपफते हुए बर्फ के मुकुट म अन्तगान हो गई है । इस चाटी कापिनचा हुआ प्रवाह, घाटियों कन्ठगओं और तचेटियों में से हाकर हरिद्वार के पास से गुजरता है । जल नया है—नील मखियों की उत्रि से प्रतिनिम्बित शुद्धता भमून है, जिसरी शीतलता सोन में सुगन्ध के समान है । एक ओर यह मन और तन को प्रमत्त और उत्तन काने वाला दृश्य—दूसरी ओर स्वार्थ अज्ञान और टम्म की लता से निगटी हुई मनुष्य प्रकृति । जिसे परमात्मा ने इनना सुन्दर बनाया है, उसे मनुष्यने कितना निगाड दिया है । जिसे मनुष्य नहीं निगाड सका, वही सुन्दर है । ईश्वरगय मुन्दरता और माननाय नीचता के पश्य देव कर यदि युक्त दयानन्द के हृदय में एक उग्र ज्वाला न भन्क उठनी तो निमन्देह वह पापाणाम्य मित्र होना ।

स्वामी दयानन्द ने मेले पर पत्र हुए हिन्दू समाज को देखा, और मन्थर समाज को एक ही नीमरी का शिकार पाया । क्या शैव, क्या वैष्णव, क्या सान्यासी क्या धर्मगामी, मय एक हा धुन म मल्ल हैं, सत्र पर ही लीक के सही है । मुधर की प्रारम्भ-दशा म म्याम जी न श्यों को शैख्यों में बुद्ध उना दहराया म, कुम्भ पर देखा कि सत्र एक ही धरती के चेटरे है । न वह पूर जानी है, और न यह अधिक अज्ञानी है । जो जोडा सा साम्प्रदयिक भेद हृदय में विद्यमान था, गंगा के निमल जल से वह भी धुन गया ।

कुम्भ के समारोह में शक्तिपागत स्वामी दयानन्द की प्रसिद्धि शीघ्र हा फेल गई । गृहस्थ और सागु लोग निडर मुआक के तजन्वी भागण मुाने के लिए

आने लगे । कई विद्वानों ने योग्यता की परीक्षा करके उत्सुकता को दूर किया । यहाँ पहले पहल स्वामी दयानन्द जी की कारी के प्रसिद्ध स्वामी विशुदानन्द जी से मुठभेद हुई । विवाद पुनःपुनः पर था । स्वामी विशुदानन्द जी ने 'ब्राह्मणो-  
ऽन्यमु व्रामीत्' इत्यादि मन्त्र से ब्राह्मण आदि वर्गों का ब्रह्मा के मुख से उत्पत्ति बत-  
लाई, और स्वामी दयानन्द जी ने शब्दाश्रय से यह सिद्ध करने का यत्न किया कि  
इस मन्त्र में ब्राह्मण को मुख के समान कहा है, मुख से उत्पन्न नहीं कहा । कारी के  
दिग्गज पण्डित के साथ एक युवक साधु की ऐसी बहिया टक्कर का जनता पर अवश्य  
ही बड़ा प्रभाव हुआ होगा ।

कुम्भ का मेला हा गया । इस मेले में स्वामी जी के डेर पर कई साधु और शिष्य  
उठे हुए थे । सबके लिए भोजन आदि का बड़ा प्रबन्ध था । उस समय की रीतिके अनुसार  
एक सच के मुखिया साधु को सब प्रकार की जिम सामग्री की आवश्यकता होती थी,  
स्वामी जी के पास भी इस समय तक वह नियमान थी । मठारियों और महन्तों की  
दुर्गशा देखकर स्वामी जी का विशुद्ध हृदय जल उठा । उन्हें अपनी थोड़ी सी सामग्री  
भी बेमूल प्रतीत होने लगी । उनके हृदय ने कहा कि यदि त्यागियों की विलासिता का  
नारा करना है, तो पहिले स्वयं सवत्यागी बनना होगा । धर्म की जिगडी हुई दशा का  
अनुभव करके उन्हें अपने शरार पर धारण करने के थोड़े से कपड़े भी बहुत प्रतीत  
होने लगे । साधु का सन्तिस सामग्री भी कैलाश ने की जगह प्रतीत होने लगी । गृहत्यागी  
दयानन्द ने सर्वत्याग करने निश्चय कर लिया ।

डेर पर जो कुन्ड भी था, भित्तारियों को बाट दिया गया । स्वामी दयानन्द ने एक  
कीपीन रख ली, शेष सब सामग्री दरिद्रों में वितीर्ण कर दी । मलमल का धान और  
महाभाय का प्रन्ध गुम्बू जा की सेवा में मथुरा भेज दिया । इस प्रकार सासारिक  
वस्तुओं के इस हलके से बन्धन को काट कर सर्वत्यागी स्वतन्त्र दयानन्द मनुष्य जाति  
के बन्धनों को काटने के लिये सन्नद्ध हुआ । गंगा के पार, चाटी के पर्वत के नीचे  
रेतीले किनारे पर कुछ समय तक तपस्या करके उन्होंने अपने आपको उस महायुद्ध के  
लिए और भी अधिक तय्यार किया, चिमका और भगवान् की इच्छा उन्हें खँचे ले  
जा रही थी ।

पाठक वृन्द ! यहाँ मुझ की दूसरी दशा का आरम्भ होता है । सुधारक की  
दृष्टि अधिक विस्तृत हो गई है, रहे सहे रूढ़ि के बन्धन टूट गये हैं, और निसर्ग से  
ही उज्ज्वल प्रतिभा वास्तविक सत्तार की घटनाओं से रगट खाकर और भी अधिक  
उज्ज्वल हो उठी है ।

# सातवां परिच्छेद ।

## गंगातट पर सिंह नाद ।

(सन् १८७५ में १८६२ के गिरगिर मास तथ)

स्वामी ज्ञानानन्द हिन्दू जति में पैदा हुई बुद्धिनिष्ठता का तादात्म्य करने के लिये कर्म-पर होकर गंगा तट पर भाग्य फलन लगे । मुगल ही पाली तथा में जो दृष्टि सम्प्रदाय का रणभूमि स परिचित थी, वह इन दूसरी तथा स सम्पूर्ण भाग्य ( हिन्दू ) जति तक निम्नृत हो गई । इस समय स्वामी ज्ञानानन्द के प्रोत्साहन में सम्पूर्ण भाग्य जाति के लोगों को गट करना और धर्म के स्वरूप को प्रकाशित करना था । जहाँ कहीं जाने थे, निम्न लिखित पाठ गण्यों का गवहन करते थे । यह ध्यान ही रहना चाहिये कि इन सात स्वामी जी प्रायः सत्सङ्ग में ही व्याख्यान देते थे । गर्भों यह थे—(१) अत्र रह पुण्य (२) मूर्ति पूजा (३) जैन, शाक्त, रामजुग आदि सम्प्रदाय (४) तन्त्र ग्रन्थ वाग मार्ग आदि (५) भगवत आदि सनन्ये की चीजें (६) परस्त्रीगान (७) चोरी (८) दूत अभिमान मूत्र आदि । वह इन पाठ गण्यों का सारदन करते थे और यह उपदेश देते थे कि ब्राह्मण सत्रिय जदय का एक ही गण्यती है । इन चीजों ही गण्यों को गण्यता के पाठ का सानन अधिकार है, और उनमें से कोई गण्य भी ऐसा नहीं जो यज्ञोपवीत का अधिकारी न हो ।

इस समय के कार्यक्रम पर ध्यान देने से निम्न लिखित बातें स्पष्ट होती हैं ।

(१) इस समय स्वामी जी का वाद्यक्रम सारदनरमक था । भाग्य जाति की हृदय देव कर स्वामी जी का हृदय रो रहा था । उनका परोपकारी हृदय अपने सजातीयों की दशा देख कर शान्त नहीं रह सकता था । दुःख का मूल युगद्वयों में था, इस काग्य भाग्य युगद्वयों को तर्क और ज्ञान के शायतन से जला कर राख कर देने का निश्चय किया । आपके जीवन का यह सारदन युग बहा जा सकता है ।

(२) उपर दिये हुए वाद्यक्रम को देखने से यह भी स्पष्ट होगा कि स्वामी जी की दृष्टि जहा सम्प्रदायों का सीमा से बाहिर जा चुकी थी, तहा भाग्य

जाति की सीमाओं का उल्लंघन नहीं कर सकी था । इसका कारण यह नहीं था कि सत्तर मात्र से उनके दृश्य में स्नेह का भाव नहीं था, या वह कबल आर्य जाति को ही धर्म की अधिकांशियों समझने थे । इसका मुख्य कारण यह था कि विसा भी मुग़लक को लाजिये, वह सार्वभौमसिद्धान्तों का प्रचारक होता हुआ भी अपने वातावरण के अन्दर ही रह सकता है । ईसा को एक सार्वभौम मुग़लक कहा जा सकता है, परन्तु बादविल में यहूदियों के पादमियों के दुर्यन्तहारों का खरडन है, भारतवर्ष के ब्राह्मणों या बौद्धों में प्रचलित रीतियों का खरडन नहीं । चाहे मनुष्य कितना ही बड़ा हो, वह सार्वभौम सिद्धान्तों का प्रचार अपने दृष्टि क्षेत्र में आये हुए विषय की अपेक्षा से हा कर सकता है । उसकी बुद्धि वहीं तक फैल सकती है, जहाँ तक मनुष्य की बुद्धि का फैलना सम्भव है । इस समय तक स्वामी जी के दृष्टिक्षेत्र में आये जाति की अन्तरेक दशा ही आई थी । सार्वभौम सिद्धान्तों का प्रयोग करके स्वामी जी ने उस बिगड़ी हुई दशा के कारणों पर विचार किया, उनका अनुसन्धान किया । जो उपाय उन्हें प्रतीत हुआ, उसका प्रयोग करने का यत्न किया । यह इस समय प्रान्ततया खरडनामक था ।

कौपीन मात्रधारी स्वामी दयानन्द हरिद्वार से हयानेश और लडौरा हाते हुए करियास पहुँचे । हरिद्वार के कुम्भपर्व पर प्राप्त किया हुआ पांडित्य का यश स्वामी जी के आगे र जाता था । कुम्भ पर प्राय सारे देश के सधु और यात्रा एकत्रित होते हैं । उन लोगों ने युवक सन्यासी के तेजस्वी भाषणों को और उनकी ख्याति को सुना था । यह लोग स्वामी जी के यश को उनके पहुँचने से पूर्व ही भिन्न २ स्थानों पर पहुँचा चुके थे । जहाँ स्वामी जी जाते, शत्रु ही चारों ओर धूम मच जाती कि एक त्यागी सन्यासी आये हैं, जो धाराप्रवाह सस्कृत बोलते हैं, जिन्होंने हरिद्वार में स्वा० विशुद्धानन्द जी से टकर ली थी, जो पुराण और मूर्ति पूजा आदिका खरडन करते हैं । स्वामी जी गंगा के तट पर रेती में विश्राम करते । रात को बालू का सिंहाना बनाकर सो रहते । दिन में गण्डों का खरडन करते और सदुपदेश दते । शीघ्र ही चारों ओर चर्चा फैल गई । गृहस्थ लोग स्वामी जी के उपदेशों को सुनने, पहले आश्रयित होते और फिर सन्देश करन लगते । सन्देशनिवृत्ति के लिये अपने गुरु ब्राह्मणों के पास जाते । यहाँ स्वामी दयानन्द के दिये गालियाँ तो मिलतीं, परन्तु सन्देश का समाधान न मिलता । पण्डित लोग स्वामी जी के सम्मुख आकर प्रश्नोत्तर करने का माहसन करते । अनूपशहर में प० अम्बादत्त वैद्य और प० हीराचल्लभ पर्वती स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने आये । शास्त्रार्थ का उद्देश्य मूर्ति पूजा का मण्डन करना था, परन्तु फल उलटा निकला । प० अम्बादत्त ने स्वयं उत्तर देकर एक दूसरे पण्डित की ओर निदेश कर दिया, और पर्वती जी ने पण्डित होकर अपनी पहिले की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार

मानने रक्खी हुई जालिमाम की मूर्ति का गंगा में प्रवाह कर दिया। फिर कहा था, प्रसन्न ने मूर्ति का गंगा प्रवाह के अर्पण करवा, कथिठ्या तोड़ डाली-माना अन्न को ब्यां दिया, और बन्दों को काट डाला। क्षत्रियों और वैश्यों के समूह का आकर स्नान जी स गायत्री और यज्ञोपवीत का प्रसाद लेने लगे। गंगातट पर भावपूर्ण मंत्र होते लगा, और सदियों से अत्रिकारे यज्ञिक भारतीय प्रजा अपने धार्मिक अधिनारी के प्रसन्न करके स्वामी दयानन्द का जय जयकर करने लगी।

कुछ दिनों तक इसी प्रकार भ्रमण करके स्वामी जी २० मई सन् १८६८ के दिन सिद्धार्थ कर्णवस आये, और अपनी कुत्रि में आसन जमाया। स्वामी जी अत्यन्त निर्भय थे। यदि वह निर्भय न होते तो मुगल के काम में हाथ ही न डालते। मुगल का कार्य शेरों का है, गीदड़ों का नहीं। जो मनुष्य लोभ-गिन्ना से, सिन्धी पागल के आक्रमण से या किसी शक्तिशाली के शास्त्र से डरता है, वह सदियों से जमी हुई कुत्रि रूप काई को उपायने का प्रयत्न नहीं कर सकता। कुत्रि और रट्टि के कटील जपों का तर्क और मुकुटि के कुत्रि से वही काट सकता है, जिसके हृदय में वाणी या वाक्य का भय नहीं है। स्वामी दयानन्द ने सदियों से प्रचलित अत्रिपरवासी और रट्टियों के अड्डन का बीड़ा उठाया था, उन्होंने कुत्रि मन्त्रों और पुराहितों और टीकाकारों द्वारा कुत्रि हुए जनता के अधिकारों का फिर से जगन्ने और अत्रिकारियों को सौंप का सम्भल किया था। यदि अत्रि शेर न होता, तो भारत भर के सम्प्रदायवाच्यों ने ललकार सकता।

कर्णवस में स्वामी जी की निर्भयता का एक दृष्टान्त सबदित हुआ। यरौनी के राजा कर्ण सिंह गंगास्नान के लिए कर्णवस आये। कर्णसिंह वृन्दावन के वैश्याचर्याचार्य के शिष्य थे, और तिचरछाप लगाने थे। स्वामी जी की प्रसिद्धि सुनकर उनके स्नान पर पहुँचे। कर्णसिंह की प्रकृति बहुत लज थी। उसने मुना था कि स्वामी जी तिलकछाप का खण्डन करते हैं, उस लिए पहिले स ही उसके धर्म का पारा चला हुआ था। स्वामी जी ने आदर्शमक पाम के आसन पर बैठने के लिये कहा। कर्णसिंह ने उत्तर दिया कि 'हम वहाँ बैठेंगे, जहाँ तुम बैठे हो' इस पर स्वामी जी ने जिनसीतलपाटी पर वह बैठे थे, उसका कुछ भाग त्वाली कर दिया। यहाँ तो ऋगडा न मग। ऋगडा पैदा करने पर तुला हुआ कर्णसिंह निराश हुआ, तब नया टग प्रारम्भ हुआ। गव 'साहिब बोले कि 'तुम गंगा जी को नहीं मानते?' स्वामी जी ने कहा कि 'जिननी गंगा जी हैं उतनी मानते हैं'

कर्णसिंह 'जिननी ?'

स्वामी जी 'हम लोगों का तो गंगा जी कमण्डलु ही हैं'

इस पर कर्णसिंह ने गंगास्तुति के कुछ श्लोक पढ़े ।

स्वामी जी—‘यह सब तुम्हारी गाथा है । यह केवल पीने का पाना है, उससे मोक्ष नहीं है। सत्ता, मोक्ष तो केवल कर्मों से होता है, तुमको पानों ने बहकाया है’ । फिर स्वामी जी ने उसके माथे पर तिलरु छाप दान कर कहा—

‘तुमने क्षत्रिय होकर मस्तरु पर यह भिखारियों का चिन्ह क्यों धारण किया है?’  
कर्णसिंह—‘हमारे स्वामी के सामने आपसे बात चीत भी नहोगी, तुम उनके सामने कांडे के तुल्य हो, तुम स उनके जूते उठाते है’ ।

स्वामी जी ने हसकर उत्तर दिया कि ‘अपने गुरु को शास्त्रार्थ के लिये बुलाओ, यदि उनमें आने का साहस न हो तो हम वहां चलें’ ।

इस पर क्रोध में आकर कर्णसिंह वेतुकी कहने लगा और स्वामी जी को धमकाने लगा । धमकी में आने वाले व्यक्ति हमारे ही होते है । स्वामी जी ने धमकी के उत्तर में चक्राकृत सम्प्रदाय का बड़े बल से खण्डन किया, और अन्त में कहा कि ‘तुम क्षत्रिय हो, जो रामलीला में लोटों का स्वाग भ्रवा, महापुरुषों की नकल उतरवा उनको नचवाते हो, अगर तुम्हारी बहन वेदी को कोई नचवाव तो तुम्हें क्या बुरा लगे ? ’ यह सुनकर कर्णसिंह की आँसू लाल हा गईं, नयुन फडकने लगे, और हाथ तलवार की मुट्ठी पर गया । कर्णसिंह का एक पहलवान आगे बढ़कर स्वामी जी पर हाथ डालने लगा । ब्रह्मचारी ग्यानन्द ने एक झटके से पहलवान को दूर पेंक दिया, और केहरी के सदृश गर्ज कर कर्णसिंह से कहा—

‘अरे घूत ! यदि शास्त्रार्थ करना है तो जयपुर और धौलपुर के राजाओं से जालो, और यदि शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रमाचार्य को बुन्दावन से बुलाना लो ।’  
इतने में वहां उपस्थित जनता में से ठाकुर कृष्णसिंह आदि राजपूत लठ्ठ लेकर खड़े होगये, और कर्णसिंह को ललकारने लगे । कायर कर्णसिंह अपने पहलवाना को साथ लेकर वहां से चला गया ।

बहुत से लोगों ने स्वामी जी से प्रार्थना की, कि इस घटना की सूचना पुलिस में की जाय । स्वामी जी ने स्मरणीय उत्तर दिया । आपने कहा कि ‘यदि वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो हम क्यों अपने सन्यास वर्म से पतित हों, सन्तोष करना ही हमारा प्रथम धर्म है ।’

इसके पीछे भी कर्णसिंह कई नीच उपायों से अपना क्रोध शान्त करने का यत्न करता रहा । स्वामी जी को मारने के लिये उसने कुछ बदमाश भेजे, योगी का हठकर

सुन वह इस प्रकार वेहोश होकर भागे कि गिरफ्तार करते २ वत्ते। कर्णोन्निह ने कुछ पैसालिये को भी स्वामी जी के मारने के लिये तयार करना चाहा, पर किन्नी की हिम्मत न पड़ी। आगि बाग नष्ट हुई, स्वामी जी के भक्त राजरूपा ने लटलट लेकर कर्णोन्निह के बगल धर लिया और तिलकर लटने के लिये ललकारा। कर्णोन्निह कश्मुर ठापुर मेहन सिंह ने भी उसे समझाया कि यदि स्वयं चाहते हो तो यहा से भाग जाओ। कर्ण कश्य सिंह दूरे राजकर्णरास से भाग गया, और घर जाकर पागल होगया। शिव और शिव की प्रकृतिशक्ति में मखि ने मखिना प्रगट करदी और काच ो काचता। शेर की राल धादकर गियार कमरी नदी बन सरता, जो दर्य से गेर है, वही असली शेर है। स्वामी दयानन्द दर्य के शेर थे।

कर्णोन्निह से आसन उठा, स्वामी दयानन्द चारानी, ताहरपुर और अहार हाते हुए अनूरसहर पहुचे। जग गये, वहा मूर्ति पूजा मृत्कर श्राद्ध और फलित ज्योतिष आदि का परखा किया।

अनूरसहर में स्वामी जी रागमग चार मास तक रहे। जिन लोगों ने उस समय उन्हें देखा था, वह देख कर भी उस मूर्ति को न भूल सके। लम्बा कन्ध, सुडौल शरीर चौड़ी छाती, सुन्दर और प्रभावशाली चेहरा, शेर का भाव को कपफा देने वाली प्राकृतिक और त्रिशूलमस्तर-यद् बनाकर बिसने एक बार देख ती वह उसे कैसे भूल सकेगा। उस समय एक कोनी ही स्वामी जी का परिच्छेद था। सर्प हो या गर्मी-आगी हो या पानी-बहा परिच्छेद शरीर की रक्षा के लिये काफी था। प्रातः काल प्राणमुद्रा में उठ कर नित्यकर्म से निवृत्त होकर स्वामी जी समाधिस्य हो जाते, और धरया तक ध्यानार सिंग रहते। उनके पथार्थ एतन्न हुई प्रजा की वम का उपदेश देते। जो मिच्छा था जागी, उसी से निर्माद कर रोते। उपदेश प्रति दिन ही जाता। पण्डित लोग अपने बाहुसा की परीक्षा के लिए आते, उनम से कोई शहर से बाहिर ही रक जाते, जो शहर में आते वह सामने आकर शत्रुत्व करने की अपेक्षा दूर से गालीप्रहार को ही बहादुरी समझते। जो सामने आ जाते, वह प्राणुत्पन्नबुद्धि, सुतिसुक्त भाषण और ब्रह्मचर्य के भोज ने प्रदीप्त आर्यों के सामने या तो चिन्तु सुनाने या शीघ्र ही कोई बहाना बनाकर सरकने का उपाय ढून्ते। ५० हीरा रत्नम और ५० टीकाराम मूर्तिपूजक थे। कई बार रामा जा मे भिन्ने भा, परन्तु अन्त का शिष्य बन गये, और मूर्तियों को गंगा में प्रवाहित कर दिया। उनका देखादेखा मन्त्र गृहस्थों ने भी मूर्तिपूजा को त्यागकर पूजा की समन्ता भागारती के पवित्र प्राण के अपण्य करती।

मूर्तियों का जलप्रवाह उन लोगों से न सहा गया, जिनकी उदर-गर्ति का साधन ही मूर्ति पूजा था । ब्राह्मण लोग नाराज हो गये और पराजित कायरों के हथियारों से कार्य लेना आरम्भ किया । स्वामी जी को एक ब्राह्मण ने पान में जहर दे दिया । स्वामी जी को पता चल गया और उन्होंने ने न्योली कर्म द्वारा विष को शरीर से निकाल दिया । यह घटना वहाँ के तहसीलदार सय्यद मुहम्मद को पता लग गई । वह स्वामी जी का बड़ा भक्त था । उसे ब्राह्मण की दुष्टता पर बड़ा क्रोध आया । ब्राह्मण को उसने गिरफ्तार कर लिया और यह जानने के लिये कि उसे क्या दण्ड दिया जाय, स्वामी जी के निकट आया । स्वामी जी उससे बोले तक नहा । वह आश्चर्यित हुआ, और रष्टा का कारण पूछने लगा, स्वामी जी ने उस समय जो उत्तर दिया, वह उनके सारे जीवन की चान्नी है, और प्रत्येक हृदय में अंकित करने योग्य सन्देश है । उत्तर निम्न लिखित था ।

‘मैं ससार को फँद कराने नहीं आया हूँ जल केंद्र से छुड़ाने आया हूँ । यदि वह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें ?’

स्वामी जी की आज्ञा से तहसीलदार ने उस ब्राह्मण को रिहा कर दिया ।

अनूपशहर से प्रस्थान कर स्वामी जी अतरौली, जलेश्वर व गढिया, सोरों, पीलीभीत, शहबाजपुर, कसोडे घाट, नरोली, कायमगज आदि में प्रचार करते हुए फरीदाबाद पहुँचे । मार्ग में कई स्थानों पर शास्त्रार्थ और विचार हुए । प्रचार का अखण्ड क्रम जारी ही रहा । सोरों में ५० भगद शाखी से शास्त्रार्थ हुआ । ५० भगद शाखी की इस प्रदेश में बड़ी मानता थी—उह उस घेरे के प्रान मल्ल समझे जाते थे । भगद शास्त्री ने देर तक शस्त्रार्थ कराने के पाठे स्वामी जी क कथन की सत्यता स्वीकार की, और अनुयायी बन गया । तब तो चारों ओर सुधार की वाद आ गई । लोग धडावट मूर्तियों का प्रवाह करने लगे, कश्मिठा टूटने लगीं, मागवत के प्रन्प रदी की टोकरी में पहुँच गये, और स्वामी जी का जयकार चागे और गूजने लगा । जब स्वामी जी शहबाजपुर में थे, तब उन्होंने दण्डी गिरजानन्द जी के देहावसान का समाचार सुना । स्वामी जी को बड़ा दुःख हुआ, वह अपने गुरु के बड़े भक्त और मधे शिष्य थे । उन्हें दण्डी जी के शिष्य होने का अभिमान था । समाचार सुनकर स्वामीजी के मुह से हठात् यह शब्द निकले कि ‘भाज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया’ । स्वामी दयानन्द का ‘व्याकरण के सूर्य’ के प्रति इतना श्रद्धाभाव यथार्थ ही था । स्वामीजी ने जो बड़ा कार्य धर्म के लिये किया, उसके लिये दण्डी जी का श्रेय कुछ कम नहीं है । यह ठीक है, कि दयानन्द में बीज रूप में ही प्रकृत शक्ति का निवृत्त रूप ही था । दण्डी जी के स्वभाव के विपरीत



कई प्रकार का सम्मेलन हो सकती है। यह आर्जन नहीं था। गुरदो जी के हृदय में सुधार का सारा क्रम भा निष्पन्न रूप से प्रियता नहीं था। परन्तु उनका भाव-पाण्डित्य, भाव प्रणयों में अभिरुचि और रूढ़ि को न मानने की और अभिरुचि—यह गुण थे, जिन्होंने योग्य शिष्य के हृदय में विद्यमान बीज को भली प्रकार सींच कर धरे धरे कल्पद्रुम के रूप में परिणत कर दिया।

परमात्माद में स्वामी जी बहुत देर तक रहें। वहाँ भी थोड़े बत से कुरीतियाँ व सखडन किया गया, और द्विजों का यज्ञोपवीत तथा गायत्री का प्रदान किया गया। प० गोपाल जिसका साहस योग्यता का अपरा सैनिकों गुना अधिक था, शास्त्रार्थ का के लिये आया। बेचारा शास्त्रार्थ-गुरु से क्या टक्कर लेता? शास्त्रार्थ में पराजित हुए परन्तु साहस ने उसका साथ न छोड़ा। वह भागा हुआ वाराणसी गया, और बुध्नराशि दे दिला कर मुरती और सुनने के उपकरणों में मूर्तिरूपा के पक्ष में श्रद्धा ले आया। वह व्यवस्था परमात्माद में डक का चेहरे मुनाई गई, परन्तु भूत कुत्र भा न हुआ। होगा भी कैसे? मत्र लोग व्यवस्था का मूल्य जानते थे? 'क्या है?' 'महाराज! यह एक मोटर है, और हस्ताक्षरों के लिये एक व्यवस्था पत्र है। 'मेरे का लिखवना है।' 'महाराज मूर्तिरूपा का समर्पण किया है' महोपाध्याय मोहर का अन्टी में दनाया, सुनने की एक चुन्नी नाक में दी और 'लाट' यह व्यवस्थापत्र मंग लिया। लिखने की सामग्री हस्ताक्षर करने वाला साथ लाता। उसने कलम महामहोपाध्याय का क हाथ में पकड़ा दी। अत्र देर क्या है—बत उठाई, पत्र पढ़ने को पुरसै कटा? नीचे हस्ताक्षर कर लिये। प्रजा के धर्म का निर हो गया। इससे परिणतमहाराजों का कोई मतलब नहीं कि व्यवस्था में बदलित है।

व्यवस्था का भी कुछ प्रभाव होता देख, ब्राह्मणतागतान्त्रिकों ने कानपुर से प० हल ओम्का का धुनवाया। प० हल ओम्का व्याकरण को अच्छे पण्डित थे। उन्हें धर्म विषय में कुछ अधिक ज्ञान नहीं था। शास्त्रार्थ धर्म विषय पर था पर ओम्का जी व्याकरण में गैर ले गये। उन्हें यह ज्ञान नहीं था, कि स्वामी जी व्याकरण के भी पण्डित हैं। व्याकरण में भी प० हल ओम्का का हाथ हुई। उपस्थित पण्डितों ने इस बात स्वीकार किया। तब तो स्वामी जी का प्रभाव और भी अधिक हो गया। परमात्माद क कई भक्त सेठों ने वेद वेदांग की शिक्षा के लिये एक पाठशाला स्थापित की दी। मूर्तिरूपा, मृत्पूजा आदि से लोगों का ध्यान उड़ गइ, और गली २ कूचे २ पाठशालाओं के बालक तब स्वामी जी से सुनी हुई सुक्तिरों दोहरा कर ब्राह्मण गुरु का नासं दम करने लगे।

फर्रुखाबाद से अनेक स्थानों पर भ्रमण करते हुए स्वामी दयानन्द कानपुर पहुँचे, और गंगा तट पर भासन जमाया । जैसे गंधु की प्यासी मधु मकरिया दूर २ से आकर फल के इर्द गिर्द घूमने लगती है, इसी प्रकार उग्र जागृति काल की उतावली जनता धर्म की प्यास बुझाने के लिये विधान्त घाट की ओर उमटन लगी । पौराणिक मण्डलर्म हलचल मधु गई । धनी साठूकारों ने बहुत सा धन व्यय करके परिश्रमों का जागव किया । फर्रुखाबाद का चौर से घयल प० हलधर ओम्का अपनी नष्ट हुई कर्तिषो फिर से स्थापित करने के लिये तल तल सशित उगस्थित हो गये । बटा नगी जमाव हुआ । भैरव घाट मनुष्यों से भर गया । कानपुर क ज्वाइंट मचिस्ट्रेट मि० डब्लू धेन सभापति के आस्ता पर मिठये गये । लगभग ५० हजार मनुष्यों की भीड़ भाड़ में स्वामी जा मे और प० हलधर में शास्त्रान आरम्भ हुआ ।

शास्त्रार्थ का विषय मूर्तिपूजा था । प० हलधर ने महाभारत से कुछ श्लोक पढ़ कर कहा कि भील ने द्रोण की मूर्ति बनाई थी । इस पर स्वामीजी ने उत्तर दिया कि भील कोई वेदज्ञ ऋषि नहीं था, वह एक अनपढ़ आदमी था, उसका कार्य सा के लिये प्रामाणिक नहीं हा सन्ता । इसी प्रकार शम्भ्राय जागी रहा, अन्त मे सभापति को निश्चय हो गया कि स्वामी जी का कर्न ठाक है और प० हलधर केवल समय बिता रहे हैं । वह स्वामी जी क विजय की घोषणा देकर सभा से उठ गये । सभापति के उठ जन पर लोगों में हल्ला मच गया, और 'बोल सनतन धर्म की जय' का पौराणिक धर्म के विजय तारा पराजय का सूचक पक्की शब्द आवाश में गूजने लगा । दोटे दिनों पाछे मि० धेन ने एक लिखित चिट्ठी बुद्ध सज्जनों का दी जिसमें लिखा था कि 'शास्त्रार्थ के समय मैंने स्वा० दयानन्द फकीर के पक्ष मे व्यवस्था दी थी, मुझे विश्वास है कि सनकी युक्तिया वेदानुक्ल थीं ।'

# आठवां परिच्छेद ।

गढ़ से टकरा

७०००००००

बनारस में राजा माधवसिंह का भानन्द बाग प्रसिद्ध है। उस बाग में कार्तिक सुदी  
 के सम्बन्ध १६२६ के दिन बड़ी घुमनाम थी। कुछ दिन हुए, एक लगोटानन्द 'स-  
 ' इस बाग में आकर ठहरा था। विद्या की पुगी काशी क सभी प्रसिद्ध २ पण्डित-  
 उस लगोटानन्द के साथ अपनी बल परीक्षा कान के निचे आने वाले हैं। २२  
 १६६६ ई० के दिन राजपुर में स्वामी दयानन्द बनारस में आकर उमठवानमें  
 है। उनका आते ही सारे नगर में हलचल मच गई है। बुद्धि और धर्म में पूर्ण  
 न्यता का माननेवाला सुधारक दयानन्द, अन्ध विश्वास और रूढ़ि के गढ़  
 उस की दीवारों को सत्य की टक्कर से गिरा कर चक्रनाचूरे करने के लिये, केवल  
 परमारमा का सहायक मानकर युद्ध भूमि में उतर आया। काशीपुरा बहुत प्राचीन  
 से विद्या की खान समझी जाती है। उसके काने कोने में विद्याशास्त्र, और गली  
 में महामहोपाध्याय रहते हैं। स्वामी दयानन्द हिन्दू धर्म की वृत्तियों का संहार  
 ना चाहते थे। जब तक काशी अपराजिता थी, तब तक पौराणिक धर्म को भी हाग  
 नहीं मान सकते थे। जो पौराणिक पण्डित निरन्तर होता था, वह काशी की धोर  
 गता था। कोई टकरा से व्यवस्था ले आता था, कोई स्वा० विशुद्धानन्द के नाम की  
 है देता था, और कोई प० राजाराम शास्त्री का नाम लेकर धमकाना चाहता था।  
 श्रम हीन अन्धकार का अन्तिम आश्रम बनारस ही दिन्वाई देता था। निमय और  
 रानन्द ने गुप्त में पहुँच कर शेर को ललकारने का निश्चय किया, और माग बाग में  
 टकरा धर्म का कण्डा गाड़ दिया।

स्वामी दयानन्द ने काशीनरेश को बहला भेजा कि यदि सन्यासस्य का निश्चय  
 करना चाहते हो तो पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये तय्यार करो। काशीनरेश ने पण्डितों  
 को बुलाकर शास्त्रार्थ के लिये कहा। पण्डितों ने उत्तर दिया कि स्वा० दयानन्द वेद  
 का पण्डित है और वेद की ही दुहाई देता है। हम लोगों को कुछ दिन बंदों में से प्रमाणा  
 खोजने के लिये मिनने चाहिये, पाछे हम शास्त्रार्थ कर सोंगे। १५ दिनों की मुहलत  
 दे दी गई। पण्डित लोग तैयारी करते रह। शास्त्रार्थ के लिये कार्तिक सुदी  
 द्वादशी का दिन निश्चय किया गया। मभा के लिये मागो बाग ही उचित स्थान  
 समझा गया, क्योंकि स्वा० दयानन्द ने सन्यास धर्म के अनुसार दूसरे के स्थान पर

जाना स्वीकार न किया । १५ दिन व्यतीत होगये । आज एक ओर मायोबाग में समा का समारोह होने लगा और दूसरी ओर से पण्डितों को समास्थान तक पहुँचाने के लिये काशी नरेश के दरबार से पालकी, छत्र, चैवर आदि सामग्री भेजी जाने लगी । आज मानो काशी के पण्डितता का परीक्षादिन था । इस दिन की सफलता पर उनका भविष्य अवलम्बित था । प्रतिपक्ष में कौपीनधारी साधु था, विद्या ही जिसका शास्त्र था, सत्य ही जिसका किला था, और परमात्मा ही जिम्मा सहायक था । इतर अनेक पण्डितों की मण्डली थी, जिनके पास विद्याम्बुध तो थी, परन्तु स्वतन्त्र विवेक के अभाव से रूढ़ि-रूपी जगार से निरुन्मी होगई थी । सत्य का मुख हिरण्य पात्र से बद्ध हो चुका था । परमात्मा का स्थान एक ओर जन्म मूर्तियों ने और दूसरी ओर अन्नदाता काशी नरेश ने छीन लिया था । जहाँ कौपीनधारी, अपने सहायक पर भरोसा करके, सत्य के गढ़ में डेर जमाकर, विद्या की तलवार पकड़े निर्भीक बैठा था, वहाँ अपनी शक्तियों और सहायकों को कमजोर समझकर पण्डित मण्डली कभी छत्र चवर के ढोंग का आसरा ढूँढ़ती थी, और कभी संकड़ों शिष्यों की पत्नियाँ बाहर समझती थी कि अब तो दयानन्द अवश्य दहल जायगा । परन्तु यहाँ वह लोहा न था, जो जरासी आच से पिघल जाता । यहाँ वह लौ न थी, जो हवा के जरा से झोंके से धुँस जाती ।

जो जनता मायोबाग की ओर उमड़ने लगी, उसमें निन्यानवे फौमदी मूर्तिपूजा के मानने वाले थे । वह लोग सत्यासत्य निर्णय देखने नहीं जा रहे थे, बल्कि माने हुए 'सनातन-धर्म' को जिताने जा रहे थे । उन्हें बतलाया गया था कि धनारस में एक बड़ा भारी नास्तिक आया है, जो विश्वनाथपुरा में ही विश्वनाथ जी को गालियाँ देता है । उसका दमन करना हिन्दूमाल का कर्तव्य है । लोग अपनी अपनी भावना के अनुसार एक बड़े नास्तिक का पराजय देखने जा रहे थे । जानेवालों में भले भी थे, और बुरे भी थे । भले आदमी अपने पण्डितों को आशीर्वाद देते जा रहे थे, और बुरे आदमी नास्तिक पर ईंट पत्थर बरसाने के मसूबे बाध रहे थे । समा मण्डप का प्रबन्ध शहर के कोतवाल खुनाथ सहाय के आधीन था । वह बड़े सज्जन थे । शान्ति से शास्त्रार्थ का कार्य चलाने के लिये उन्होंने बैठने की ऐसी व्यवस्था की थी कि स्वामी जी के साथ एक समय में एक ही पण्डित बोल सकें, और पण्डित लोग उन्हें घेर कर न बैठ सकें । तीन ऊँचे आसन जमाये गये थे—एक स्वामी जी के लिये, दूसरा प्रति पक्षी पण्डित जी के लिये और तीसरा काशीनरेश के लिये ।

विरोधियों की इतनी सख्या—और उनमें भी काशी के प्रसिद्ध गुण्डों की काफी राशि—स्वामीजी के भक्तों के हृदय कापने लगे । एक भक्त ने स्वामी जी से भय की चचा की । स्वामीजी ने अपने स्वभाव के अनुसार ईश्वर-विश्वास और निर्भयता का उपदेश देकर

सामरता देते हुए कहा कि 'एक परमान्ता है और एक ही वी है । दूसरा कौन है निम्ने डों ? उन सभ को भा जाने दो—जो कुछ भागा उनो समय देवा जायगा ।' स्वामी जी के भक्त प० जगदरत्नस जा न मी कुछ संकेत प्रगट किया, और देमा ही उत्तर पाया । निर्भय, निरभ्य, नि शक्त सन्न सी उमडत हुए रिगोमन के बरफा प्रण को महन के लिये तैयार होकर बैठा था, और थारा गज पर मुल्ग रहा था । जे बडाटा, कया का उमकी गुला म जाकर तककर सकता है, यह उनकी गडगडाइट को भा अनुग्र चित्त न मुन सकता है ।

पौराणिकों की अज्ञीहिरी सेना आ पहुनी । रोम जनान को कारी नरेश, बालक एरत उषेडने को वृद्ध स्वा० विशुद्धानन्द, प्रसिद्ध बाल शात्रा, और अन्य गात्राचार्य वामनाचार्य नारायण भाति विख्यात पंडित, और हरना मचा को काशी के विद्यार्थ और गुडे, इस प्रण मूमती मामता और वेतहाशा जय जयकारों स भाषाज को गुजार्त हुडे भगवत सम्पन्न पौराणिक सेना माप्रो वाग में पहुव गई । नियम हीन सेना के पहुचते ही भटप का नियम टूट गया । कातपाल का या व्यर हुआ । स्वाभा जी को पडिों ने चारों ओर से घेर लिया । उनके पास किसी हितैषी को बैठन का भा अवसर न दिय गया । राम्ते गेरु लिये गये, और अकेले न्यानन्द को घेरकर पचास हजार विरोधी, सनातन धर्म का जयकारा बोलन लगे ।

शास्त्राय आरम्भ हुआ । कहने को शास्त्रार्थ था, परन्तु रस्तुत वया ऋतु के बडे हुए वीक्षियों प्रारम्भ नातों की चट्टान से टकरा थी । हेरेक पण्डित अपनी बलपरीक्षा कर रहा था, और चाहता था कि निम्ना प्रकार स्वामी निरुत्तर हो जाय, परन्तु प्रत्युत्पन्नमति मन्यामी काबू नहीं आता था । बरमों अभ्यास और प्रबचयें पालन से सगह किये हुए, निमगता, धैर्य और स्मृति आदि गुण इन समय उसके परम महायक हुए । प्रश्नरूपी तीरों की अनरत बौझार हो रही थी, साधन सम्पन्न ब्रह्मचारी पेंके हुए तीरों को मार्ग में ही काडता जाता था, और साथ ही अपने धनुष की कामात दिख रहा था । उस उपजाऊ ऋतु से फके हुए अनोप वाद्य विरोधियों की कवचों में छेद कर रहे थे ।

प० ताराचरण ने पूछा—'आप मनुस्मृति को वेदमूलक कैसे मानते ह ?'

स्वामी जी न उत्तर दिया—'सामवेद के ब्राह्मण में कहा है कि जो कुछ मनु ने बर्खन किया है वह औरों का भी औप है ।'

ताराचरण जी चुप होगये, स्वा० विशुद्धानन्द जा मदद के लिये पहुचे ।

आप वाने—'रचनानुपगतैश्चनानुमानम्' इस ब्रह्मन्त सूत्र को वेदमूलक सिद्ध कीे ।

स्वामी जी ने उत्तर दिया—‘यह उपदिग्ताद क भीतर नहीं है’

स्वामी विशुद्धानन्द जी—‘प्रारण्य के बाहिर है तो क्या हुआ ? यदि तुम्हें इसका समाधान आता है तो कहदो ।’

स्वा० दयानन्द—‘इसका पूर्णरूपाठ देखकर समाधान किया जा सकता है’

स्वा० विशुद्धानन्द—‘यदि सब कुछ याद न था तो काशा में शास्त्रार्थ करने क्यों आये थे ?’

स्वा० दयानन्द—‘क्या तुम्हें सब कुछ कगठाए है ?’

स्वा० विशुद्धानन्द—‘हा, हमें सब कुछ स्मरण है ।’

यहां उल्टा वार प्रारम्भ हुआ । पेंच में आता २ चतुर सिपाही निकल गया ।

स्वा० दयानन्द ने पूछा—

‘तब बताइये धर्म के लक्षण कितने हैं ?’

स्वा० विशुद्धानन्द ने सज्जता का दावा तो किया, परन्तु उन्हें मनुस्मृति का धर्म लक्षण मन्मन्त्री ‘श्रुतिज्ञाना दमोस्तेषाम्’ इत्यादि श्लोक याद नहीं था । वह निरुत्तर होगये । स्वामी दयानन्द ने श्लोक पढ़ मुनाया । इस पर प्रसिद्ध धर्माचार्य प० बाल शास्त्री जी मदद पर आ पडचे । आपने कहा कि ‘हमन सम्पूर्ण धर्मशास्त्र का अध्ययन किया है, इस विषय में कुछ पूछना हा तो हमसे पूछिये’

स्वा० दयानन्द ने पूछा—‘आप अधर्म के लक्षण बतलाइये ।’

बाल शास्त्री जी न कभी सोचा भी नहीं जा कि कोई आदमी अधर्म क लक्षण भी पूछ सकता है । उन्हें निरुत्तर होना पडा ।

इसी प्रकार प्रश्नोत्तर होत रहे । मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में काशी के पंडितों ने दो ही बातें पश कीं । एक तो यह कि वेद में प्रतिमा शब्द आया है, वह मूर्ति का वाचक है, और दूसरा यह कि ‘उद्बुध्यमाने’ इत्यादि मन्त्र में जो ‘पूतं’ शब्द आया है, वह मूर्तिपूजा का वाचक है । स्वामी ७१ १ दोनों का हा समाधान कर लिया । ईश्वर की प्रतिमा का वेद से स्पष्ट निषेध है, और पूतं शब्द नगी, तडाग आदि का वाचक है । यह समाधान करके स्वामी जी बागवार यही पूछते रह कि ‘वेद में मूर्तिपूजा का विधान कहा है ?’

हर तरह से लाचार होकर परिदित मगहली ने चालाकी यी शररली । इस विषय पर शास्त्रार्थ करने स टलकर परिदित लोग स्वामीजी को उत्सम्भाने

की स्त्री व पुग्या का शिव पर विश्वास करने लगे, परन्तु शीघ्र ही शत्रु  
 मय करने लगा कि वह व्युत्पन्न भू भवेत् नदी है । स्वामी जी ने आशा  
 परका ध्यानात्मक संस्था प्रशासकियों के माते शशा—पौर्ण भी सम्भार-  
 नरक गगन किया । परिवर्तन लागू पित्त और इत्यादि हाव गग । तब मन्त्रालय जी  
 आशा से और कार्य दो पर साक्षात् योग में गगन दूर क्या कि 'यही पर लिखा है कि  
 पर का सन्धि पर प्रजाता दमर्ष पित्त पुग्या का पाठ ध्याव पर, पर स्त्री जी  
 बताये कि 'पुग्या' किन्ना विशेष है ?'

स्वामी जी—भाप पाठ पर का मुनश्ये'

स्वामी विशुद्धानन्द जी ने पर रसायन दयानन्द जी के हाथ में परका का क्या कि  
 'आप ही पर लीजिये'

उस समय साक्षात् भाग आशा पर उता आया था । स्वामी दयानन्द ने परे  
 लौकिक रूप रसायन विशुद्धानन्द से कहा कि 'आप ही पर लीजिये'

स्वामी विशुद्धानन्द जी बोले 'मैं परम के दिना नहीं पर सरण, इस लिये आप  
 ही को परना होगा' स्वामी दयानन्द ने पर हाथ में ले लिये । अन्धेरे के कारण  
 परना कठिन था । दीपक भगवाया गया । तालिका का राशनी भी बड़ी मन्त्र थी, परे  
 परा में बुद्ध समय लगा । उचित मीका समक पर परिवर्तनगडली उतराई हुई । इस  
 प्रकार परका हाते देन का स्वा० दयानन्द ने स्वा० विशुद्धानन्द का हाथ परक पर  
 क्या कि 'बैठ जाइये । निम्न लिये विना भीष ही में उठ लड़े हाना आप ऐसे विगतों  
 को कल्पि उचित नहीं' परन्तु रसायन विशुद्धानन्द जी ने बैठ और स्वामी दयानन्द की  
 पीठ पर हाथ पर पर का लग कि 'अब बैठिये, जो बुद्ध हाना था ही चुना ।'

परिदलितों का इशारा परका कार्या नृपेश ईश्वरी नारायणसिंह भी गडे हाथये, और  
 ताला पीठ दी । इतर इशारा पहिले से क्या हुआ था । सारा जन समुद्र एक दम खडा  
 हातर 'सनातन धर्म की जन' बालन लगा । कोतवाल बडा मन्त्र था । उसे कारी  
 नरेश का ओझा व्यवहार बहुत भवता । उतने काजा नरेश ने कहा कि 'आपने ताली  
 पीठ पर बहुत बुरा किया, पर काये सभा क नियमों के विरुद्ध था ।' नरेश कोतवाल  
 की बगल में हाथ देकर आगे बढ गये और समझाया कि हम तुम सभी मूर्खतामक है,  
 तब अपने सामान्य शत्रु को जैसे ही पराजित करना ही चाहिये । इस दगा-कायड के  
 नेता कारी नरेश का इशारा परकर सम्पूर्ण जनसमूह मनमानी करने लगा । किसी ने  
 पत्था, किसी ने कर, किसी ने जूता—अधिक क्या लिये, जिम जा मिला, उसने  
 उतारा, और स्वामी जा की

के समय दगा के जगदर

भक्तों के साथ मरी, ककर, लकड़ी और पत्ता आदि पदार्थों पर पत का निरुद्ध चक्रान पर टकराने हैं, और लज्जित हाकर नीचे गिर पडते हैं, इसा प्रकार स्वार्थपूर्ण दम्भ द्वारा भङ्ग्राये हुए इन अज्ञानी लोगों क भेजे गहित पदार्थ भी लज्जित होकर गिर पडे, सन्यासी के पयोधि—गर्भोर्ग हृदय पर कोई प्रभाव न उत्पन्न कर सके ।

पौराणिक दल न शर्र भर से परिडता का जुलूस घुमाया, मूर्तिरजा का जय जय का मचाकर अपनी सत्य प्रियता का परिचय लिया और सब स्थानों पर समाचार भेज लिया कि दयानन्द पराम्त हो गया है । शर्र में पडितों का ओर से विज्ञापन लगा लिये गये, कि दयानन्द के पास कोई न जाय, जो जायगा पातकी हूँ जातगा । यह सा कुठ किया गया परन्तु मत्सर की आगों में धूत न डाली जा सकी । देश के पद्म-पात-हीन समाचार पत्रों ने स्वामी दयानन्द जी के विचय का ही समाचार प्रकाशित किया । प० सत्यव्रत सामाश्रमी जी ने अपनी 'प्रत्न कर-नन्दिनी' नाम की मासिक पत्रिका में स्वामी जी की सत्कथा की घोषणा की । 'रङ्गेनगड' नामक पत्र न लिखा कि 'स्वामी दयानन्द जी ने काशी के पण्डितों को जीत लिया है' । 'ज्ञान प्रदा-पिनी' ( लाहौर ) ने समाचार दिया कि 'इसमें मन्देह नहीं कि पण्डित लोग मूर्ति पूजा की आत्रा वगैरे म नहीं दिवा सके' । हिन्दूपत्रियट ने प्रकाशित किया कि "पण्डित लोग यद्यपि अपने ज्ञानशास्त्र का अतिगर्व करते थे, परन्तु उनका बड़ी भागी हार हुई ।"

स्वामी जी का उपदेश सुनने से गेरुनेशाला विन पन भी विरक्त हुआ । हरा का भौंका भूमरों को कुल के पाम जाने से न रोक सका । लोग और भी अधिक उन्मु कता में सन्यासी का सदुपदेश सुनने जाने लगे । स्वामी दयानन्द की धाक चारों ओर नेठ गई । निस फौलाती ढाल से टकरा कर काशी के मुमन्कृत तीर बुण्डित हो गये, गिनकों की क्या मजाल न कि उस पर अड सके । देश देशान्तर में इन शास्त्रान का सारा हरा की तरह फैल गया, और अपने साथ स्वामीजी की पाण्डित्य-कार्ति के सौरभ को भी लेता गया ।

रुद्रि के मद्र से दयानन्द की टकर का जो भयकर शर्र हुआ, उसमें दिशाये गू उठा । गूज से आधर्यिन देश ने देगा कि सदियों क अरे में खडा किया हुआ दुर्गीतियों का मीनार टोकर खानर भाषण शर्र कता हुआ विश्वनागुपी की तरह में विनीत हारण है । स्वाम काप उठा, और सत्ता का चेहरा चमकन लगा ।



# नवाँ परिच्छेद ।

## सुधार की तीसरी दशा

( १८७० से १८७५ ई० )

धीरे २ स्वामी दयानन्द जी के सुधार-कार्य ने अपनी तीसरी दशा में प्रवेश किया । सुधारक के विचार पहले से ही विस्तृत थे, अमुक्त के अधिक होने से उनका प्रियमक रूप भी विस्तृत होने लगा । यह नहीं समझ लेना चाहिये कि बनारस के शास्त्रार्थ के पीछे एक इस कई दशा परिपूर्ण होगी । कार्य का क्षेत्र धीरे २ घट रहा था । बनारस शास्त्रार्थ के कारण स्वामी जी की ख्याति सारे देश में फैल गई । देश की दशा से चिन्तित सुदूरवर्ती महानुभावों ने, काशी के पंडितों की पराजित करने वाले वायदूक के वृत्तान्त पढ़ कर दय का धारस किया । उद्यम फलकृता बम्बई आदि के पण्डितों पर स्वामी जी की धक बंध गई । सुधारक दयानन्द की सब ओर चचा होन लगी ।

पश के विस्तार के साथ २ स्वामी जी का दृष्टिकोण भी विस्तृत होने लगा । अगले पाच सालों में हम सुधार के कार्य का फैलाव होता देखते हैं । हम देखेंगे कि धीरे २ स्वामी जी का कार्य करने का ढंग बदलने लगा । पुरानी केवल शास्त्रार्थ की या अजन बरे पर प्रचार करने की गीति को छोड़कर निपणूर्णक समार्ये करने और उनमें व्याख्यान देन का पद्धति का अनुसरण होने लगा । स्वामी जी अब तक केवल सत्सृजत में व्यख्यान देते थे, उसमें परिवर्तन हो गया । आप हिन्दी में व्याख्यान देन लगे । अब तक केवल कौपीन धारण त्रिये रहते थे—आश्रम पर, मभा में, शास्त्रार्थ के समय, इसी वेष में रहने थे । वह भी बदलने लगा । समा में आप कपडे पहिन कर जाने लगे । इसी समय सत्याय प्रकाश भी लिना गया । इस प्रकार स्वामी जी का प्रचार का क्रम अचानका से परिवर्तित होने लगा । यह परिवर्तन कार्य का अधिक विस्तृत और लक्ष्कोपयोगी बनाने का साधन हुआ ।

परिवर्तन एक दम नहीं हुआ, कार्य के फैलाव के कारण नये २ उपायों का अवलम्बन आवश्यक होना गया । दोरे के प्रसंग में देश के कई अन्य सुधारक महानुभावों से मिलने का मौका मिला । उनके साथ विचार विनिमय में कई नये विचार उठे, जो शीघ्र ही कार्य में परिणत हो गये । जिस समय का वृत्तान्त हम लिखने लगे हैं, वह सुधार

की अन्तिम दशा के निर्माण का समय था । उसके अन्त में हम गृहपट्यान्द को एक पूर्ण सुधारक के साथ २ एक भारी कार्य का कण्ठ बना हुआ पायेंगे । सुधार की अन्तिम दशा पर पट्टवस्त्र स्वामी जी की कार्य शक्ति निर्माण के रूप में प्रगट होने लगी । वह पिपय भगल परिच्छेदों का होगा । वर्तमान परिच्छेद में हम स्वामी जी के मुधाग-कार्य का पूर्ण पैलाव का वृत्तान्त लिखते हुए, उन सीदियों की खोज करेंगे, जिसे हारुण कार्य का काम पूरी ऊँचाई तक पहुँचा ।

घनागम से प्रयाग होने हुए स्वामी जी निर्माण गये । निःशुभ म कई माम नरु धर्म प्रचार करके स्वामी जी फिर घनागम में पधारे । इस वाग विशेष घटना यह हुई कि काशी नरेश ने अपने गत वर्ष के व्यवहार के लिये प्रायश्चित्त किया । नरेश ने स्वामी जी के दर्शनो की इच्छा प्रगट की, और अनुमति पाकर अपनी गाड़ी भेजी । स्वामी जी जब नियत स्थान पर पहुँचे तब महागज ने खडे होकर स्वागत किया, अन्त ले जाकर स्वर्ण के सिंहासन पर बिठाया, और अपने हाथों से स्वामी जी के गले में हार पहिनाया ।

प्रारम्भिक कार्य समाप्त हो जाने पर महागज ने स्वामी जी से हाथ जोड कर निवेदन किया कि 'मूर्तिपूजा में हमारे कुल की सनातन काल से श्रद्धा है । उसके प्रसंग में शान्तार्थ के समय आपकी अज्ञा हो गई थी । आप सन्यासी हैं—आशा है, क्षमा कर देंगे' । स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि 'हमारे मन में उस बात का लेशमात्र भी संस्कार नहीं है' महाराज ने त्रिदा करते हुए स्वामी जी की सेवामें उचित भेंट उपस्थित की । इस प्रकार यह सुखान्तप्रसंग समाप्त हुआ ।

घनागम से स्वामी जी कासगज गये । यहा आपकी स्थापित की हुई एक पाठशाला थी, जिसमें ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन के साथ अष्टाध्यायी महामाष्य तथा मनुस्मृति आदि का अध्ययन कराया जाता था । कासगज की पाठशाला का स्वामी जी ने निरीक्षण किया । यहा पर एक और घटना हुई, जो देखने में बहुत सामान्य थी, परन्तु उसमें स्वामी जी की निर्भयता का पुष्ट प्रमाण मिलता है । आप बाजार में जा रहे थे, सामने से एक भक्त मखना साड आ रहा था । बाजार का सब लोग इंग उधर भाग रहे थे, कोई रास्ता रोकने का साहस नहीं करता था । स्वामी जी राम्ने से न हटे और चलते ही गये । जब स्वामी जी बहुत पास पहुँचे तब साड स्वय ही रास्ता छोड कर अलग होगया । जनता के आश्चर्य का ठिकाना न रहा—। एक भक्त ने पूछा कि 'महागज' यदि वह साड सामने से न हन्ता तो आप क्या करते ?' स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'सांग से पकड कर अलग कर देते' स्वामी जी पर शारारिक भय कोई प्रभाव नहीं कर सकता था । यहा से चलकर स्वामी जी छन्नैसर कण्ठवास पहुँचावा

जादि 'य' न पर भयकर कागज हुए बनकर गये, और वहाँ से पूरे का भाग प्रकट किया।

पूरे की यात्रा में एक बड़ा मोरगा पटना हुई। गुजर का राज हुए रातो में जगन्पुर जदरा पर तुड देर तक ठहरना पडा। स्वामीजी के शगर पर केवल योर्न थी। अतः पोटकाम पर घुम रहे थे। स्टेशन पर एक पत्नी महिला, अमन इन्जीनियर विद्यमान था। उगा शगर दर दर इन्जीनियर माह्य क मन्थान्दन्धी विचारों पर नडा धरा लगा। आन भन् स्टेशन मास्टर का बुलगा कर कहा कि 'यह लेगा यी ठहर रहा है, इसे इस उर 'मुरो स बन् करदो' 'देशा मास्टर का अग्रन ही ईगर था। उरन न्नामो जी के पास जाकर विवेदन किया कि 'महाराज ! दूसरो और चलकर कुर्मी पर आताम क्षत्रिय। मुगेर की गाग के जा म अगी दर है' स्वामी जा राष ताड गये। आपा न्दशन मास्टर म कहा कि 'जिाने तुहें हमर हटा के लिय दगा है उससे कदा वि ह्य उम समय के मनुय है जय अल्प हटा नगे अदनवाय में सिर किया करते थे। स्टेशन मास्टर यह उत्तर मुन कर टन गया। स्वामी जा टहलते रहे। इन्जीनियर न फिर उस बुलवाया। स्टेशन मास्टर ने तथु को प्लेन्फम से हटो म अममता प्रकट नते हुए कहा कि 'वृत्तवत् सन्यासा है' आधरित होकर अग्रन ने ताम पुट्टा। स्टेशन मास्टर ने नाम नगा दिया। साहा य कदा हुमा वि 'क्या ये हा प्रसिद्ध मुगरेक दमानद साम्यी है ?' भन् स्वामीजी के पान चलागया और बहुत दर तक नागीत करता रहा।

मुगेर म भागनपुर होते हुए स्वामीजी १८७२ ई० क दिसम्बर मास म बराकत पहुचे। वहा उन दिनों बा० केशवचन्द्र सेन यी घूमनाम था। ब्राह्म समाज क आकाश में सेन वायु का सिनाग चमक रहा था। प्रारम्भ में बराकत के ब्राह्म ममाविया की आर से न्याग जा का विमप सत्कार भी हुआ। यद्यपि ब्राह्मो समाज के वृद्ध नेता श्रीशु दवेन्द्र-राय टागर न अपना रगा स्वामी जी के उरारे के लिये नहीं दिया तो भी अन्य मादा सगानिर्ण ने स्वामी जी का अच्छा आर किया। प० हेमचन्द्र चणवती उन लोगों म स ये जा विग्रस से ब्राह्मो थे, परन्तु बा० केशवचन्द्रमेन की ईसाइयत की ओर प्रवृत्ति से कुछ कस-तुष्ट थ। स्वम जा क उपेक्षा से उन पर बडा प्रभाव हुआ। वह देर तक स्वामी जी के साथ रह कर योगाभ्यासाणि सीखते रह।

बा० केशवचन्द्र सेन कहीं बाहर गये हुए थे। जय वह मन्वकते आये, तो स्वामी जी का मनाचा मुना। मिनन का इच्छा से सन महाराय स्वामी जी के पाम गये, परन्तु परिचय न किया, और बातचात काने लगे। बात चीत क पीछे सेन महाराय न स्वामी जा से पूछा कि 'कस आन कभी केशवचन्द्र सेन से मिले है ?'

स्वामी जी ने उत्तर दिया 'हा, मिले है' सेन महाशय ने कहा 'आप उससे कय मिने ?' स्वामी जी ने उत्तर दिया 'अभी' । सेन महाशय आश्चर्यित हुए । आपने पूछा "यह आपने कैसे जाना कि मैं हा केशवचन्द्र हू ?" स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'जैसी बात आपने की है, वैसे किता दूसरे से नहीं हो सकता' इस प्रकार इन दो महा पुरुषों में परिचय हुआ । इनके निरन्तर स्वामी जा और सेन महाशय में वार्तालाप होता रहा ।

दोनों महापुरुष देश की भलाई में दक्षिण थे, दोनों ही अद्भुत वक्ता थे, दोनों में ही लोगों पर बिजली का अस्तर पैदा करने की शक्ति थी । निम्न प्रकार समानताय थी, वैसे हा असमानताय भी बहुत सी था । एक उठी असमानता दोनों महापुरुषों की निम्न लिखित बात चीत से स्पष्ट होगा । एक दिन सेन महाशय ने स्वामीजी से पूछा कि 'भिन्न भिन्न धर्मों के मानने वाले लोग अपने अपने मान्य ग्रन्थ को ईश्वरीय और अतिम प्रमाण मानते हैं, और कहते हैं । आप वेद को ईश्वरीय ज्ञान कहते हैं । हम कैसे जानें, किमता कहना सच्चा है ?" स्वामी जी ने उत्तर में कुरान और बाइबिल में से अनेक दोष दिए थे और वेदों की निर्रोपना दिखाते हुए कहा, "निशेष होने से वैदिक धर्म ही सच्चा है ।" इस वाक्य पर सेन महाशय ने कहा ।

'शोक है कि वेगों का अद्वितीय विद्वान अंग्रेजी नहा जानता अथवा इंग्लैण्ड जाने समय वह मेग इच्छानुकूल मारी होना' ।

स्वामी जी ने उत्तर दिया 'शोक है कि ब्राह्मो समाज का नेता सस्कृत नहा जानता और लोगों को उस भाषा में उपदेश देता है जिसे वे नहा समझते' ( श्रीमद्दयानन्द प्रकाश )

दोनों नेताओं में यही भेद था । एक की दृष्टि पूर्वाभिमुख थी, दूसरे की पश्चिमाभिमुख । एक को भारत की आर्य्य प्रजा की हितकामना थी, दूसरे का अधिक ध्यान योरप के साधुवाद की ओर था । व्यक्तिगत स्वभाव में भी अनेक भेद थे, परन्तु उनके उल्लेख की यहा आवश्यकता नहीं । एक का जीवन हृदय का खिनोना था—दूसरे की उमंगे उच्च जीवन की दासिया थी । एक के आत्मा की उच्चतर अभिलाषा यह थी कि वह 'ब्रह्मा से जेमिनिपर्यन्त' ऋषियों का अन्यतम व्याख्याता बने, और दूसरे का हृदय ससारे में एक नया धर्म स्थापित करके मुहम्मद और ईसा की श्रेणी में शामिल होने पर तुला हुआ था । इन भेदों के होते भी यह कहने में कुछ अत्युक्ति नहा है कि अपने अपने क्षेत्र में दोनों ही असाधारण थे, दोनों में चुम्बक का शक्ति थी, प्रतिभा थी, महापुरुषता के सम्पूर्ण चिन्ह थे । ऐसे दो महापुरुषों का परस्पर मेल मिलाप निशेष फल उत्पन्न किये बिना नहीं रह सकता था । यदि निशेष विचार से देखा जायतो मालूम होगा इस बात चीत का बहुत गम्भीर परिणाम दोनों ही पर हुआ

बा० केशवचन्द्रसेन के जीवन का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन करें ता हम उममें दो तीन परिवर्तन देखते हैं। प्रारम्भ में उसका मुकाब ईसायत की ओर था। उनका पहला प्रकाश १८९६ में हुआ, जब मैट्रिकल कालेज हाल में 'Jesus Christ as a and a Prophecy' इन विषय पर व्याख्यान देते हुए मेन महाशय न ईसा का ईश्वर का पुत्र और पैगम्बर का सद्धार बताया। यह लहर बहुत चर्चा तक रही और इस लहर में बहते हुए ब्राह्मो नेता का ध्यान योग या तपस्या की ओर नहीं गया। लगभग ७ वर्ष पीछे हम एक दम बड़ा परिवर्तन देखते हैं। १८७५ के अन्त में बा० केशवचन्द्र सेन को तप और योग की ओर मुकाम हुआ पाते हैं। स्वामी दयानन्द जी १८७३ के प्रारम्भ में कलकत्ता गये थे। इन दोनों प्रकाशों में परस्पर सम्बन्ध दूना पैना कुछ कठिन नहीं है। एक बार परिवर्तन आगम हो जाने पर सेन महाशय की गतिशील प्रवृत्ति का बहुत आगे बढ़ जाना स्वाभाविक ही था। भक्ति मार्ग पर चलकर उस समय के ब्राह्मो समाजियों ने कैसे २ परिहास किये, यह बताने की आवश्यकता नहीं, परन्तु लेखक की सम्मति है कि केशवचन्द्र सेन के हृदय में जो बहिष्केत लहर बढ़ रहा थी, उसे अन्तमुक्त करने के लिये प्रारम्भिक चाट स्वामी दयानन्द से मिली हो—यह कुछ असंभव नहीं है।

यह मानने में कोई संकोच का कारण नहीं है कि बा० केशवचन्द्रसेन और ब्राह्मो-समाज के कार्य का कलकत्ते में अनुशीलन स्वामीजी के कार्यक्रम पर भी कुछ कम प्रभाव उत्पन्न करने वाला नहीं हुआ। यह मानी हुई बात है कि स्वामीजी ने समाज प्रारम्भ में भाष्यभाषा में व्याख्यान देना बा० केशवचन्द्रसेन के करने पर ही प्रारम्भ किया था। इससे पूर्व वह सन्स्कृत में ही व्याख्यान देते थे। अब तक प्रायः स्वामीजी की पीढ़ी मानते रहे, व्याख्यान के समय भी यही वेप रहता था। बा० केशवचन्द्रसेन के कथन पर स्वामीजी ने व्याख्यान देने के समय अन्य बल धारण करना भी आगीकार कर लिया। इन दो बातों के अतिरिक्त यह भी कुछ कम महत्त्व की बात नहीं है कि धार्मिकशास्त्र रूपी संगठन स्थापित करने का विचार स्वामीजी के हृदय में कलकत्ते से पीछे ही उत्पन्न हुआ। इससे पूर्व किसी संगठन की स्थापना का विचार उद्बुद्ध हुआ प्रतीत नहीं होता। ब्राह्मो-समाज के मिहान्तों और संगठन की अप्रगता को देखकर स्वामी दयानन्द के हृदय में एक अन्य वैदिक समाज के स्थापित करने की इच्छा उत्पन्न हुई हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

कलकत्ते में स्वामीजी के कई व्याख्यान हुए। एक व्याख्यान सेनमहाशय के घर पर भी हुआ। व्याख्यानो का बहुत उत्तम प्रभाव होता रहा। उत्साह पूर्ण बंगालीजनना का हृदय स्वामीजी के भाषणों से उद्वल पडा। कलकत्ते में हुगली भागलपुर आदि स्थानों पर प्रचार करते हुए स्वामीजी परभावनाद गये। वहाँ पाठशाला का निरीक्षण

काक २५ दिम्बर १८७३ के दिन आप अलीगढ़ पहुँचे । यहाँ आपने राजा जयकृष्ण दाम जी के यहाँ अरुण जमाया । अलीगढ़ से हाथरस होते हुए स्वामी जी मथुरापुरी गये । मथुरा वैष्णवों की राजधानी है । वहाँ के रंगाचार्य जी तिलक छाप धारियों के परम गुरु माने जाते थे । फाल्गुण एकादशी संवत् १९३० के दिन, ब्रह्मोत्सव के समय स्वामीजी न वृन्दावन में पहुँचकर मत्स्यरूप के रायाग में आसन जमाया । यहाँ पर आपकी स्थिति अनेक मनोरंजक घटनाओं से परिपूर्ण हुई । वृन्दावन में ब्रह्मोत्सव के अक्षर पर हजारों लोग एकत्र होते हैं । स्वामीजी न निर्भीकता से मूर्ति-पूजा तिलक छाप आदि का खंडन प्रारम्भ कर लिया । पौराणिक-सरोवर में भारी हल-चल मच गई । लोग भागे हुए रंगाचार्य जी के पास पहुँचे । इन्होंने स्वामीजी ने भी रंगाचार्य जी के पास एक पत्र भेजा, जिसमें उन्हें शास्त्रार्थ के लिए आमन्त्रण दिया । रंगाचार्य जी न अक्षर के शास्त्रार्थ की घटना मुन ही रखी होगी । जिस वीर योद्धा पर वशी के हथियार नाकाम हुए, उस पर मथुरा के निजल हथियार क्या अक्षर टाल सकते थे ? रंगाचार्य जी ने पहले तो कहा भेजा कि मेले क दिनों में आकाश न होने से शास्त्रीय विचार होता कठिन है, और जब मेला हो चुका तो रोगी होने के कारण स्वामी जी के आमन्त्रण को स्वीकार न कर सके ।

रंगाचार्य जी शस्त्रार्थ के मैदान में न आये परन्तु उनके शिष्य नीचता के मैदान में उतर आये । कई उपायों से स्वामी जी को डराने या बडन्त करने का यत्न करते रहे । वृन्दावन में धर्म की ध्वजा गाड़ कर स्वामी जी मथुरा चले गये । यहाँ परबों गुण्डों और चौकों के एक बड़े समूह ने स्वामी जी से निवासस्थान पर धावा किया । धावा करने वालों के हाथों में डण्डे थे । इन्होंने स्वामी जी का स्थान भी अज्ञात नहाया । स्वामी जी के भक्त राजपूत सग पहरे का प्रबन्ध रखते थे । गुण्डा मण्डली स्वामी जी के द्वार को सुगन्धित देर कर आगे न बढ़ सकी, और गालिया बरूने लगी । स्वामी जी के सेवरु गालिया मुन कर जोश में आगये, परन्तु शान्ति का उपदेश मुन कर शान्त हो गये । स्वामी जी न उन्हें समझा दिया कि नासमझों की ना समझी देर कर समझारों को अपनी समझ नहीं ओड देनी चाहिये । गुण्डे निराश हो बर लौट गये ।

यहाँ से निराश होकर विरोधियों ने दूसरी चाल चली । उन्होंने चाद पर थूकने का विचार किया । स्वामीजी उपदेश दे रहे थे, उस समय विरोधियों के बहकावे हुए एक फसाई और शराब की दूकानवाले ने पुकार कर कहा कि 'स्वामीजी, आपका कई दिनों का लेखा होगया है, दाम देकर उसे चुका क्यों नहीं देते ?' विरोधी निराश हुए, क्योंकि उपनिषत् जनता में ने किमी न भी यह निश्वास न किया कि सुभ कलका हुआ है ? समा के अन्त में उन्हें बुलाकर पूछा गया तो उत्तर मिला कि 'महागज हम मागीलाल

मुनिम ने कहा था कि समा में जाकर तुम यह वाक्य कह देना, मैं तुम्हें पीछे पुस्कर दूंगा' किमधिया ने एक बुलगा का भी धन का लोभ देकर तय्यार किया कि यह समा में जाकर स्वमा जा पर लाञ्छन लगा दे। कुलटा समा में पहुँची। स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे। अमृत का धारा में पपिन के हृदय का पाप धुल गया। उसे पश्चात्ताप हुआ। 'य ज्ञान का समाधि पर रज्य हा स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ी और अपना मानमिक अपराध के लिये क्षमा मागन लगी। ब्रह्मवाग का चरित निर्गेष था। जो निर्गेष है, उम पर फेंका हुआ मैना लौट कर फेंकने वाले पर ही पड़ता है।

मथुरा से चलकर मिर्जापुर और बनारस होते हुए भी स्वामी जी प्रयाग में पहुँचे। यहाँ पर उनके प्रचार का यश पहिने स ही पहुँच चुका था। शिक्षित समाज बड़ी उत्सुकता से आपके व्याख्यान सुनन आता था। रायबहादुर प० मुन्दरलाल आपके विशेष भावों में से थे। वह बदायन सत्संग में आया करते थे। इन दिनों स्वामी जी ईसाइयों का बड़े जोर से खण्डन किया करते थे। सत्याध्वप्रकाश के लेख का कर्तव्य भी बदायन होता था।

आपका योगशक्ति की मृत्तना समय २ पर लोगों 'तो मिलती रहती थी। योगशक्ति का ही फल था कि आप परोक्ष की कल्पना कर लिया करते थे, और वह कल्पना ठीक निरालता थी। एक बार रायबहादुर प० मुन्दरलाल आदि सज्जन स्वामी जी के स्थान पर बैठे हुए थे। स्वामी जी मुस्कराते हुए उनका सन्मुख आये और उन लोगों से कहा लगे कि 'एक मनुष्य मेरी ओर चला आता है। उसके आन पर आपका एक कौतुक गिवाई देगा' धोली देर में एक ब्राह्मण मिठाई लिये आ पहुँचा, और सामने खड़ी। स्वामी जी ने मिठाई का एक टुकड़ा उम खाने की दिया, पन्तु उसने लेने से इन्कार किया। उल्टा आपने लगा। तब सबने मास्क लिया कि अरश्य इस मिठाई में विष मिला हुआ है। मिठाई का टुकड़ा बुत्ते के आगे फला गया, जिसे ग्यारस बुत्ता छटपटाने लगा और शत्रु ही मर गया। तब ता उपस्थित ताग उस ब्राह्मण को पुलिस के सुपुद्र करने का सत्याग हागपे। स्वामी जी ने अपनी दयानुताके कारण उने क्षमा कर दिया। १८७४ ई० के अक्टूबर मास के मध्य तक स्वामी जी प्रयाग में रहे, फिर पश्चिम की ओर भी प्रस्थित हुए।



## दसवां परिच्छेद ।

धार्मिक समाज का स्थापना—बम्बई प्रान्त में प्रचार ।

—

स्वामी दयानन्द का सुधार-सम्बन्धी कार्यक्रम सर्वोत्तम होकर जनता के सामने आया। स्वामी जी ने अपने कार्य को वैष्णव सम्प्रदाय के खण्डा से प्रारम्भ किया था। धर्म २ नसा खण्डनाह्न सारे पौगणिक मतों पर व्याप गया। वह सुधार की दृष्टि आया। ज्यों २ वैदिक धर्म का रूप अन्य सन मतों की अपेक्षा उज्ज्वल रूप में आया। स्वामी जी ने लगा, त्यों २ अन्य सब धर्माचार्यों का अपनी रक्षा के लिये यत्न भी नहीं किया। ईसाई और मुसलमान अपने सम्प्रदाय की रक्षा के लिये चला करन लगे। स्वामी जी का मौलवियों और पादरियों से भी सघर्ष उत्पन्न हो गया। स्वामी जी ने सब मतों और सम्प्रदायों का खण्डन कर वैदिक धर्म को स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार स्वामी जी कार्यक्रम पूरा हो गया।

स्वामी जी ने ईसाइयत और इस्लाम का खण्डन प्रारम्भ कर दिया। इसी बात को निमित्त बताया जा सकते हैं। एक निमित्त तो यह कि स्वामी जी उन गल्पों की जाति पर इन दो मतों से उत्पन्न होने वाले खतरे को देख रहे थे। स्वामी जी ने कहा कि हिन्दुओं को ईसाई और मुसलमान बनलित कर रहे हैं। ईसाई, ईसाई दुर्भाग्य से हिन्दू जाति का नाम भी दिया गया था, पादरियों को ईसाई के सामने डायडोल हो रही थी। स्वामी जी धर्म जानि के खण्डन कर रहे थे, ईसाइयत तथा इस्लाम की बाढ को रोकने का यत्न करने लगे।

एक दूसरे प्रकार से भी इसी बात को समझाया जा सकता है। स्वामी जी स्वामी मात्र के हितैषी थे, वह चाहते थे कि हिन्दू हो या बौद्ध, ईसाई या मुसलमान, भारतवासी हो या विदेशी-मनुष्यमात्र वैदिक धर्म का धर्म को रक्षा कर लें। स्वामी जी स्वामी स्वियों को धर्मसम्बन्धी भ्रान्तियों में से निकालने का कार्य कर रहे थे। स्वामी जी ने स्वामी का कार्य प्रारम्भ किया था। खण्डन का उद्देश्य स्वामी जी का था। स्वामी जी अपितु अन्य मताचार्यों का खण्डन ही था। स्वामी जी ने स्वामी जी को स्वामी जी के स्वामी पर मित्र २ प्रकार का प्रभाव पड़ता है। स्वामी जी ने स्वामी जी के स्वामी खुदा परिच्छेद में कहे, यह केवल इतना विकल्प ही है। स्वामी जी ने स्वामी जी तीसरा दशार्थ भी भेद था, उसका निमित्त स्वामी जी ने स्वामी जी के स्वामी



जी का केवल भार्यजाति के प्रति प्रेम था, या मनुष्यगत के प्रति प्रेम ! यदि तो ईसाइयों और मुसलमानों का खण्डन केवल भार्य जाति को उनके आक्रमणों से बचाने के लिये ही था तो खण्डन का निमित्त केवल भार्यजाति के प्रति प्रेम होगा, परन्तु यदि खण्डन का निमित्त ईसाई मुसलमानों को वैदिक धर्मा बनाना था तो निमित्त मनुष्य प्रेम होगा ।

मेरी सम्मति है कि स्वामी जी ने दोनों ही निमित्तों से ईसाइयों तथा मुसलमानों का खण्डन किया । उन्हें मनुष्यमात्र से प्रेम था परन्तु भार्यजाति से विशेष प्रेम था । उस प्रेम का केवल यह कारण नहीं था कि वह भार्य जाति में उत्पन्न हुए थे, यह भी कारण था कि वह भार्यजाति को शेष सब जातियों की अपेक्षा सत्य का अधिक पास समझते थे । वेद धर्म का स्रोत है, केवल भार्यजाति ही है जो धर्मों को प्रामाणिक मानती है । जिन आपमन्थों में स्वामी जी वेद के आशय को ढूँढते थे, उनका खजाना भी भार्यजाति के पास ही था । वैदिक सस्वार, वैदिक-ज्ञान, वैदिक-धर्म-सत्य के अवशेष यदि कहीं थे, तो भार्यजाति में थे । इस कारण स्पष्ट है कि जहाँ भार्यजाति को शुद्ध वैदिक धर्म पर लाने के लिये केवल सुधार की आवश्यकता थी, वहाँ ईसाइयत और इस्लाम का मूलमहित पण्डितों को बिना वैदिक-धर्म के लिये स्थान नहीं निकाला जा सकता था । एक जगह केवल फाट छाट चाहिये, जहाँ दूसरी जगह उखाड़ना आवश्यक है । भार्य जाति की रक्षा और सुधारणा आवश्यक थी, परन्तु अन्यमतवादी का स्वरपरिवर्तन ही अभीष्ट था । स्वामी जी ने भार्यजाति की रक्षा और सुधारणा करते हुए ईसाइयत और इस्लाम को रास्ते पर राडा पाया । वह धर्म भार्यजाति को सत्ता का नष्ट करने की धमकी दे रहे थे । भार्य जाति को सुधार कर, शुद्ध वैदिक बनाकर स्वामीजी सत्ता की भलाई का सोचन बनाना चाहते थे । भार्यजाति के लिये भयानक समय कर भार्यजाति के रक्षक ने ईसाइयत और इस्लाम पर प्रत्याक्रमण किये । इससे मनुष्य मात्र का भला ही अभीष्ट था । प्रथम तो स्वामी जी समझते थे कि यदि भार्य जाति के विचारों का पूरा सुधार हो जाय तो २३ करोड़ से अधिक वैदिक-धर्म सारे सत्ता को सच्चे धर्म की शरण में ला सकते हैं । वह देखते थे कि भार्य जाति के अग्रे वैदिकधर्मा अन्य प्रभावों में आकर विलुप्त और वैदिक और अनार्य बन रहे हैं । मनुष्य जाति की भलाई इन्हीं में थी कि भार्य जाति अपने रूप को समझ कर सत्ता को शुद्ध धर्म का प्रकाश दे सके । दूसरे स्वामी जी चाहते थे कि अपने २ मतों की निर्मलतायें देखकर ईसाई, मुसलमान आदि वैदिक धर्म की शरण में आ सकें । स्वामी जी का भार्यजाति के प्रति पक्षपात था परन्तु वह गुणों का पक्षपात था । भारवि कवि ने कहा है—

धीतरुपूडाप्यामपि मुक्तिभाजा  
अमग्नि भयेन्द्रि पक्षपाता ।

स्वामी दयानन्द आर्य-जाति को अपना विगडा हुआ किला समझते थे और अन्य धर्मावलम्बिनी जातियों का उस किले पर आक्रमण करने वाले प्रतिपक्षी । यह विचार समय के साथ धीरे २ पूर्णता को प्राप्त हुआ । जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय स्वामी जी रक्षा, सुधार और प्रत्याक्रमण के पूरे कार्यक्रम को तय्यार कर चुके थे । वह इस समय युद्ध की गहराई में थे । सब प्रतिपक्षी चौकन्ने हो चुके थे, और स्वामी जी से सीखे हुए अस्त्रों की सहायता से उनके प्रत्याक्रमणों को रोकने का उद्योग कर रहे थे ।

इस प्रकार प्रत्याक्रमण द्वारा आक्रमणों को रोकते हुए धर्म-महागृही २२ अक्टूबर १८७४ को प्रयाग से बम्बई पहुँचे । देर से स्वामी जी के पास बम्बई-निवासियों के निमन्त्रण आ रहे थे । बम्बई के समाज-सुधारक सुधार-सम्बन्धी कार्य को उन्नति देने के लिये व्यग्र थे । इस कारण उनका आग्रह था कि स्वामी जी शीघ्र ही बम्बई पधारें । स्वामी जी के भक्त प० सेवकलाल जा आदि ने पहले ही से काशीशास्त्रार्थ की प्रतिपाशर में बटवारा प्रसिद्ध कर दी थी । स्टेशन पर स्वामी जी का अच्छा स्वागत हुआ । बालुकेश्वर पर एक उत्तम आश्रम में स्वामी जी के निवास का प्रबन्ध किया गया था । वहाँ पर प्रतिदिन धर्म-वर्चा होने लगी । बम्बई में बल्लभ सम्प्रदाय का विशेष रोर है । स्वामी जी ने उसी का खगडन धारम्भ किया । बल्लभ सम्प्रदाय की लीला का उल्लेख अब आवश्यक नहीं रहा । सम्प्रदाय के गुरुओं की घृणास्पद लीलाओं से अब देश काफी परिचित हो चुका है । स्वामी जी ने जब बम्बई में उनका आचरण देखे और सुने, तो उनके हृदय में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ । उन्होंने बलपूर्वक खगडन प्रारम्भ किया । बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों में हलचल पैदा होगई । गोकुलिये गोसाइयों में जीउन जी गोमाई बहुत चलता पुजा था । उसने स्वामी जी के सेवकों तक को बहकाकर विपद्द्वारा धर्म की आवाज को शान्त करने का यत्न किया परन्तु स्वामी जी को, रहस्य का पता चल गया और जीवन जी का कण्ठक दूर न हुआ । कुछ लोग स्वामी जी का पीछा करने लगे । वह छाया के समान पीछे रहने लगे ताकि भवसर पाकर काटे को उखाड दें—परन्तु सफलता प्राप्त न हुई । स्वामी जी निभय तो थे, परन्तु असावधान नहीं थे । बहुत सी आपत्तिया तो उनकी सावधानता से ही दूर हो जाती थी । कई लोग समझते हैं कि आर्खें बद करके चलने का नाम निर्भयता है, स्वामी जी उनमें से नहीं थे । भय को न देखना निर्भयता नहीं, भय को देखना और देखकर भी कर्तव्य के मार्ग से न विचलना ही निर्भयता के नाम से पुकारा जा सकता है । सावधानता स्वामी जी का विशेष गुण था । अपने डेरे की छोटी से छोटी बात पर भी स्वामी जी की दृष्टि रहती थी । बम्बई के एक सेठने दूकान पर कह छोडा था कि 'स्वामी जी का नौकर खाने पीने का जो सामान लेन आये वह दे दिया जाय, और बिल मेरे पास भेज दिया जाय' एक

का आशय था कि वे लोग जो कि धर्म परतर्क के आनन्दपरतर्क से तब मुझ पर्यन्त समाज के पर आया है। तब तब धर्म परतर्क का धर्म परतर्क अपनी मुद्रती गन कर रहे हैं। स्वामी जी का आशय ही नीचे के गान में पृथक् कर दिया।

इस समय स्वामी जी का अग्रिम विचार ही मन्दाप इत्यादि से अतिरिक्त ही सुधी थी मुझे तब विचारों का जग देश भर में फैले हुए थे। यह जग विचार हुए हुए ही मन्दाप इतिहास उज पर थे, उनही मन्दाप ही हुए ही। मन्दाप का हाने का शक्ति का मन्दाप पैदा हुई थी, उनका कोई मन्दाप ही था। इस प्रकार ही स्वामी जी के अग्रिम विचार से अग्रिम कर रहे थे। मन्दाप में मन्दाप से आशय पुण स्वामी जी के पास आये और आशय का एक समाज बनाया + विचार में प्राधान्य की। एक एक विचार होता रहा। विचार विन्ता नाम का विचार में थी। स्वामी जी का 'आर्य समाज' नाम उपस्थित किया, जो आर्य पुराणों के इत्ये के एक अग्रिम था। स्वामी स्वामी आशय मन्दाप व मुद्राका और रक्तक था, यह आशय के मन्दाप और प्रविर्गिता था। 'आर्यसमाज' यह नाम इस बात को सूचित करता है। यह नाम स्वामी अग्रिम पुराणों के इत्ये में दीक जग, और आर्य-समाज बनाने का तन्त्रावियां होना लगी।

हरेक समाज के लिये कोई-कौड़ी आधार चाहिये। आर्यसमाज का मूल वेद हैं, परन्तु अभी तक यह आशय समाज थे, जिन तक पहुँचना किन्ही आर्य पुराण की शक्ति में नहीं था। अभी यह समय नहीं आया था कि वेदों के आधार पर ही आशयसमाज की स्थापना करदी जाती। आधार में रखने के लिये एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता थी, जो लोगों को समझ में आ सके, ताकि प्रत्येक आर्य पुराण आशयसमाज में आने से पूर्व जान सक कि कितने विद्वान्तों का मानने वाला पुण्य आर्यसमाज में प्रविष्ट हो सकता है। सोमय से इस समय ऐसा ग्रन्थ भी तन्त्राव हा चुका था। तब स्वामी जी अन्नाग्र में प्रचार कर रहे थे, तब रामा अग्रिम स्वामी जी ने प्राधान्य का था कि एक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित कर दिया साथ जिनम मन सिद्धांतों का समावेश हो। स्वामी जी ने उन प्रस्ताव को स्वीकार करके अपने व्याख्यानों का समावेश किया, और वह 'सव्याप्त-प्रकाश' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस समय सव्याप्त प्रकाश प्रथम बार प्रकाशित हो चुका था।

समय अग्रिम था परन्तु स्वामी जी का शीघ्र ही मन्दाप में रूत जाना पडा, इस से कुछ समय के लिये समाज का स्थापना विवर्जित होगई। २४ नवम्बर १८७४ से यह परमेश्वर आरम्भ हुआ था, लगभग ६० सजना न समाप्त करने की प्रतिज्ञा का थी। दिसम्बर में स्वामी जी की मन्दाप से जाना पडा। ३ मारु क लगभग मुद्रात पुनः में प्रचार करने का अनन्तर जब जनग म फिर स्वामी जी बंधे गए, तब आर्यसमाज की

स्थापना का प्रस्ताव अविक उत्साह से उठाया गया । इस बार यत्र शीघ्र ही सकल हागया राजमान्य राजश्री पानाचन्द्र आनन्द जी सर्व सम्मति से नियमों का मसौदा बनाने के लिये नियत किये गये । उनके बनाये हुए मसौदे पर विचार करके चैत्रसुदा ५९० १८३२ सन्नुसार १० अप्रैल १८७५ के दिन, गिरगाव में, डा० माणिकचन्द्र जी की वाटिका में नियमपूर्वक आर्यसमाज की स्थापना हुई । आर्यसमाज के २८ नियम बनाये गये । वर्तमान १० नियम लाहौर में पीछे में बनाये गये थे । प्रारम्भिक २८ नियमों में सभा कुण्डे, उद्देश्य, नियम, उपनियम आदि सब कुछ उनमें आगये हैं । यह पहला अग्रसर था कि स्वामी दयानन्द जिन सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहते थे, उनके माननेवाले लोग एक सूत्र में पिरोये जाकर संगठित हुए । आर्य समाज की नींव में धौन २ से विचार कार्य कर रहे हैं—यह जानना है । तो इन प्रारम्भिक २८ नियमों का विवेचन आवश्यक है । ऐसा विवेचन मनोऽब्धता से भी खाली न होगा ।

बम्बई आर्य समाज का पहला नियम बड़ी स्पष्टता से आर्य-समाज के उद्देश्य को प्रकाशित करता है । वह कहता है—‘सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का होना आवश्यक है’ आर्यसमाज का उद्देश्य सब मनुष्यों का हित करना है । यह विस्तृत उद्देश्य है, जिससे आर्यसमाज की स्थापना हुई है । तसवार म इससे बढ़कर व्यापक उद्देश्य नहीं हो सकता । दूसरा नियम बताता है कि ‘इस समाज में मुख्य स्वतः प्रमाण वेदों को ही माना जायगा’ इस वाक्य में, आर्यसमाज का धार्मिक आधार स्पष्ट रूप से बतला दिया गया है । केवल वेद ही स्वतः प्रमाण और धर्म के मूल आधार है—अन्य सब ग्रन्थ चाहे वह आर्य ही क्यों न हों—जहां तक वेदानुवूल न हों, शब्दप्रमाण नहीं है । यह नियम बड़ा स्पष्ट है । यदि इसके महत्त्व पर पूरा ध्यान दिया जाय तो आर्यसमाज की वृत्तियां शाखाओं में बिखरने से बचाई जा सकती हैं । दूसरे और चौथे नियम में प्रधान और शाखाभेद से आर्यसमाजों के दो भेद किये गये हैं । इन नियमों में प्रतिनिधि सभा और सार्वदेशिक सभा आदि विन्तून संगठना की कल्पना नहीं है । पाचवा नियम समाज में सस्कृत और आर्यभाषा के पुस्तकालय की आवश्यकता बताता है, और यह भी आशा दिलाता है कि समाज की ओर से ‘आर्य-प्रकाश’ नाम का साप्ताहिक पत्र निकलेगा । यह नियम—तथा आगे के कुछ और नियम भी—इन संपूर्ण नियमों को एक देशी बना देते हैं । इन नियमों को बनाते हुए बम्बई की दशाओं को विशेषतया ध्यान में रखा गया था । ७वें नियम में केवल दो अधिकार निस्त करने का निर्देश है । एक प्रधान—दूसरे मन्त्री । अभी उपप्रधान उपमन्त्री आदि की रचना की आवश्यकता नहीं समझी गई । इस नियम का दूसरा भाग बड़े महत्त्व का है । पुरुष और स्त्री-दानों ही समाज के समासद् बन सकेगे । यह उदार नियम आर्यसमाजों में प्रायः उपेक्षा की दृष्टि

से देखा जाता है। स्त्री समाजें जुरा खोलनी जायँ-इससे शायद उतनी न हानि हो, जितनी मुख्य धार्मिकसमाज से स्त्रियों का बहिष्कार करने से होती है। स्त्रियों का दृष्टिक्षेत्र बहुत सन्वित हो जाता है। उतका ज्ञान पूरी तरह बढ़ने नहीं पाता। वह अपनी परिधि से बाहर नहीं निकलने पाती। यदि पुरुष और स्त्री एक ही धार्मिक समूह में शामिल हों, इकट्ठे बैठें, कार्यकारिणी में मिलकर इकट्ठे ही आवश्यक विषयों पर विचार करें, तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि स्त्रियों के ज्ञान में बहुत वृद्धि हो, धार्मिकसमाजकी शक्ति दुगुनी हो जाय, और कार्य को पुष्टि मिले।

आठवाँ नियम धार्मिकसमाज के सभासदों की योग्यता का वर्णन करता है। 'इस समाज में सत्पुरुष सदाचारी और परोपकारी सभासद लिये जायेंगे' यद्यपि देखने में यह नियम छोटा और अप्रसंगिक सा दिखाई देता है परन्तु आशय है कि इस नियम में श्रुति का हृदय स्पष्टता से प्रतिबिम्बित है। समाज का सभासद सत्पुरुष हो, सदाचारी हो— अर्थात् धार्मिक आचरणयोग्य होना चाहिए। धार्मिक सभासद बनने के लिये श्रेष्ठ आचरण की मुख्य माना गया है। वर्तमान १० नियमों में सदाचारकी चर्चा इतनी स्पष्टता से नहीं है। यही कारण है कि कभी २ 'करने' की अपेक्षा 'मानने' की महिमा अधिक बढ़ा दी जाती है। प्रारम्भिक नियम 'करने' की महिमा अधिक मानते थे। दुराचारी, असत्पुरुष क्षण भर भी समाज का सभासद नहीं रहना चाहिये—बम्बई वाले नियमों का यह सार है। १०वाँ नियम सातों दिन सत्संग करने का आदेश करता है। पहले यह सत्संग शनिवार को होता था, पीछे से अधिक अनुवृत्तता देखकर रविवार के दिन होने लगा।

११ वाँ नियम धार्मिकसमाज का प्रतिपादन करता है। कार्यक्रम में गान मंत्रपाठ मन्त्रों की व्याख्या आदि के अतिरिक्त परमेश्वर सत्यधर्म सत्य नीति सत्य उपदेश आदि का प्रतिपादन है। इस नियम में सामाहिक सत्संग के क्षेत्रविस्तार का दिग्दर्शन करा दिया गया है। सत्यधर्म और सत्य नीति को पृथक रखा गया है। सत्यधर्म सिद्धान्त रूपी धर्म है, और उसका व्यावहारिक प्रयोग सत्यनीति कहलाता है। धार्मिकसमाज में केवल सिद्धान्तों पर ही विचार न होगा, उनके व्यावहारिक प्रयोग पर भी विचार किया जायगा। जो लोग यह समझते हैं कि धार्मिकसमाज में केवल मूल सिद्धान्तों पर ही विचार होता रह, उनके व्यावहारिक प्रयोग पर कोई ध्यान न दिया जाय, वह ११वें नियम पर ध्यान देने से उनका सन्देह दूर हो जायगा। १२वें नियम में धार्मिकसमाज का शताब्दिक चन्दे के रूप में देने का विधान रखा गया है और बताया गया है कि चन्दे की आभ्यन्तरी से 'धार्मिकसमाज' 'धार्मिक-विद्यालय और धार्मिक-समाचार पत्र' चलाय जाय। 'धार्मिक विद्यालय' का विचार धार्मिकसमाज की आधारशिला रखने के साथ ही उत्पन्न होगया था, यह कोई नया समा-रोह नहीं है। स्वामी जी का यह दृढ़ आशय पूर्णतः होता है कि धार्मिकसमाज की सन्तान की शिक्षित करने के लिये धार्मिक-विद्यालय खोले जाय। १३ वाँ नियम धार्मिक-विद्यालय

के उद्देश्य को और भी अधिक स्पष्ट करता है । उसमें आय-विद्यालय का यह कार्यक्रम बताया गया है 'आय-विद्यालय में वेदादि सनातन आर्यग्रन्थों का पठन पाठन हुआ करेगा और वेदोक्त रीति से ही सत्य शिक्षा सब पुरुष और स्त्रियों को दी जायेगी ।' इस नियम का अभिप्राय स्पष्ट है । आय-विद्यालय का उद्देश्य आर्यसन्तान को वैदिक शिक्षा देना समझा गया था, न कि केवल प्रचारक बनाना । १४ वें और १५ वें नियम में वैदिक स्तुति प्राप्ति उपासना के अतिरिक्त स्स्कारों का करना आर्यमात्र के लिए आवश्यक बताया गया है । १७ वां नियम बड़े महत्व का है । उसमें एक बड़ा उच्च सिद्धान्त बतलाया गया है । इस समय और शायद सदा प्रत्येक देश में दो प्रकार के विचारक रहे हैं । एक यह जो अपने देश को सब भूमण्डल के देशों में ऊँचा मान कर केवल उसी की भलाई को अपने जीवन का लक्ष्य मान लेते हैं । दूसरे वह जो विश्वहित के विचार को ऊँचा रख कर देशहित को एक सङ्कुचित भाव मानते हैं । १७ वें नियम में बड़ी सुन्दरता से दोनों को मिला दिया गया है । नियम यह है—

“इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयत्न किया जायगा एक परमार्थ, दूसरा व्यवहार, इन दोनों का शोधन तथा सब सत्कार के हित की उन्नति की जावेगी”

स्वदेश की उपासी नहीं की गई, परन्तु उसका अन्तिम लक्ष्य सत्कार का हित करना रखा गया है । स्वदेश का हित प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है । उसके लिए निश्चयस और अभ्युदय, परमार्थ और व्यवहार दोनों ही आवश्यक हैं । केवल भारतवासी नहीं, सभी देशों के निवासियों के लिये यह नियम रखा गया है । सब अपने देश के हित में यत्नवादी हों—परन्तु देशहित का भी अन्तिम लक्ष्य विश्वहित हो । विश्वहित की भावना के बिना स्वदेशहित एक निर्मूल ममता है और स्वदेशहित के बिना विश्वहित के साधन का यत्न चाद को पकड़ने के यत्न के समान है । १८ से २५ तक के नियम कार्यकर्ताओं को प्रबन्धसम्बन्धी निर्देश करते हैं । २६ वें नियम में एक बहुत छोटी परन्तु महत्त्वपूर्ण बात है । जब तक आर्य समाजमें नौकर मिलना सम्भव हो, उससे बाहिर का नौकर न रखा जाय । शेष नियमों में कोई विशेष साम्प्रदायिक बू नहीं है, परन्तु इस नियम में कुछ थोड़ा सा साम्प्रदायिक भाव पाया जाता है । इतने उदार नियमों में यह नियम कुछ अनुहार सा प्रतीत होगा, परन्तु यदि इस दृष्टि से विचार किया जाय, कि हिन्दू समाज में द्विजतों की कमी दुर्दशा थी, और यह भी देखा जाय कि उनकी दशा के सुधारने का एक यह भी उपाय है, कि चाहे जाति में कोई हो, यदि वह आर्य बनगया तो उसे सेवक बनाने से किसी आर्य पुरुष को सकोच न हो तो समाज में आजायगा कि हममें केवल आर्य-जाति ही कारण नहीं है, सेवक-समाज

का हित भी कारण है। इस्लाम ने प्रारम्भ में गुलामों की दशा को सुधारन का जो उद्योग किया था, उसे दृष्टि में रखते हुए इस नियम पर विचार किया जाय तो नियम के औचित्य पर विधान करना कठिन नहीं होगा। २८ वें नियम में, नियम के घटाने बढ़ाने के लिए सब श्रेष्ठ समासद का सलाह कराना आवश्यक बताया गया है।

यह कर्मों के अपमानजनक न समझने हैं। इस में सन्देह नहीं कि यह कई धर्मों में धार्मिक है। विशेषतया कार्य में ध्यान वाले व्यावहारिक नियमों का बहुत अभाव है। बट्ट सम्मति ने निश्चय हो, या सत्यसन्धि से, गिरा परिवर्तन के लिए कितना बहना होना आवश्यक है, चुनाव कितने समय पीछे हो, इत्यादि व्यावहारिक बाने नियमों में रो छूट गई है। यह भी नहीं कि यह केवल शुद्ध उद्देश्यों या मूल सिद्धान्तों का ही वयन हो, कई एक व्यावहारिक नियम भी विद्यमान हैं, परन्तु वह धार्मिक और अन्ध है। यह ठीक है, ता मा यह कहन में कुछ अन्युक्ति नहीं है कि इन नियमों में स्वामी जी के हृदय का आशय अधिक स्पष्टता से प्रतिबिम्बित है। उद्देश्य का सक्षेप में परन्तु बड़ी सुगता से प्रतीकण है। शेष नियम भी स्वामी जी के आशय को उड़ी सुन्दरता से अभिप्रेत करते हैं।

एक बात और है। इन नियमों पर मालो समाज के संगठन का प्रभाव स्पष्ट है। सिद्धान्तों का नहीं अपितु कायसम्बन्धी व्यावहारिक संगठन का। इस में कुछ आश्चर्य भी नहीं है। यह असन्दिग्ध बात है कि स्वामी जी के सिद्धान्तों का निष्पाद्य विन्दुल स्वतन्त्ररीति से हुआ था। यह किसी के अनुकरण में नहीं था—यह एक ज्ञानी और पयुक्त हृदय का विकास था, परन्तु प्रतीत होता है कि समाज के संगठन का विचार उतना अपेक्षारहित नहीं था। कर्मों के निरासी स्वामी जी के पाम गये, और समाज की स्थापना के सम्बन्ध में निवेदन किया। जिन लोगों ने स्वामी जी को दिव्यी में निमन्त्रण दिया था, उनमें बहुत से प्रार्थनासमाजी थे, और प्रार्थनासमाज माओ समाज की एक शाखा मल था। उन्हीं लोगों ने स्वामी जी से समाज बनाने की प्रार्थना की, और संगठन सञ्चार किया। यह बाने ध्यान में रखें ता संगठन की कई विशेषतायें समझ में आता है। साप्ताहिक सत्संग, गृहस्था प्रचारक आदि सस्थायें, जो नई प्रतीत होती हैं, नई नहीं हैं। इन पर पहले का प्रभाव स्पष्ट है। कई लोगों का विचार हुआ कि नियमों पहले समाजों की प्रचलित प्रथाओं के प्रभाव को मान लेन से समाज का या इत के सन्नायक महापुरुष का महत्व कम हो जायगा। यह भ्रमनाय है। सस्थायें और संगठन समय की मन्ताने ह, यह यत्नमान प्रभावों से विरक्त स्वतन्त्र नहीं रह सकते। उनका

गौरव इमें नहीं कि यह बिना जड़ के वृक्ष, बिना नींव के भवन या बिना ऋतु के फूल हैं, बल्कि गौरव इतम है कि यह समय की आवश्यकता को पूरा करते हैं, जाति की वास्तविक धीमारी का ठीक इलाज करते हैं, और समय का ठीक आलाप सुनाते हैं । यद्यपि आर्यसमाज के व्यापारिक संगठन पर ब्रह्मो समाज का प्रभाव था, तो भी हम भ्रमले पृथ में देखेंगे कि आर्यसमाज ब्रह्मो समाज की अपेक्षा अधिक समयानुरूप, जाति की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला और उपयोगी था, इस कारण जाति ने उसे अधिक ध्यमता से देखा परन्तु उत्तुम्कता और उत्साह से ग्रहण किया ।

काठियावाड और पुने में, इन लगभग ५ महीनों में राम प्रचार हुआ । बम्बई तो स्वामी जी के प्रचार से हिल गई । यज्ञसम्प्रदाय के गुरु, शकाओं से बचस कर बम्बई छोड़ने तक को बाधित हो गये । मूर्ति पूजा के वेतरह खयडन से ब्राह्मणमण्डली विचलित हो गई । प्रजा के तग करने से मण्डली को एक बार शास्त्रार्थ का आयोजन भी करना पडा । पहला शास्त्रार्थ बम्बई के पुस्तकालय में हुआ । दूसरा शास्त्रार्थ स्वामी जी के काठियावाड से लौटपर फिर बम्बई आने पर, होसाभाई जंजन जी के मरान पर प० रामलाल जी शास्त्रा के साथ हुआ । दोनों में विवाद का विषय यह था कि 'मूर्ति पूजा वेदों में है या नहीं' ? जहां बनारस क पात्र उखड गये, वहा बम्बई के शास्त्री क्या कर सकते थे ? मूर्ति पूजा वेदों से सिद्ध न हो सकी । स्वामी जी जय बम्बई से कुछ दिनों के लिये बढादे गये हुए थे तत्र प० कमलनयन शास्त्री ने शास्त्रार्थ का हल्ला किया । स्वामी जी बम्बई लौट आये । काउस जी फ्राम जी हाल में शास्त्रार्थ हुआ । बम्बई में ईसाइयों के साथ भी कुछ झपट हुई । बडे पादरी विलमन साहब विद्वान पुरुष थे । स्वामी जी ने उन्हें धर्म विचार के लिये आनन्तित किया । कोई उत्तर न पाकर स्वामी जी स्वय पादरी साहिब के पास पहुँचे परन्तु फिर भी उन्हें धर्म विचार के लिये तैयार न कर सके । बडे पादरियां को कोई न कोई कार्य सदा रहा ही करते हैं । स्वामी जी के साथ धर्म विचार जैसी अप्रिय परीक्षा से, पादरी साहिब को वैसे ही एक आवश्यक काम न छुटकारा दिला दिया ।

गुजरात में भ्रमण करते हुए स्वामी जी ने सूत, भरोच आदि में धर्म प्रचार किया, आर्य पुरुषों में गये जीवन का मचार निडा । भरोच में स्वामी जी दिसम्बर मास में बहमदाबाद गये । साबरमती के किनारे माणिकेश्वर महादेव के मन्दिर में स्वामी जी का निवास स्थान था । बहमदाबाद में भी पण्डित मण्डली से शास्त्रार्थ हुना । बडा उत्तम प्रभाव रहा, और शीघ्र ही यहा आर्यसमाज की स्थापना भी हो गई । देवेंद्र कालेज राजकोट के प्रिमीपल भी हरगोविन्द दास जी के आमंत्रण पर स्वामी जी राजकोट गये, राजकोट से फिर बहमदाबाद ठहरते हुए आप बलसार और बरई पधारे ।



बगैरे म स्वामी की राज्य का प्रतिनिधि थे। भारतका सामन विश्वागिनी गरी के विचार प्रदीप की क मन्त्रि में जात। गरी प्रायः आठ व्याख्यान हुए। व्याख्यान में दूसरा भागि उद गात्र विचार उल्लिखित होते थे। पण्डित-मदली भी व्याख्यान करता था। श्रेय रामो विचार के राजा थे। जब ग्यान्धी जी देश सेवा का स्वयं उद्योग करते थे, जब पण्डित राजा भागे में उभरा देना सामन का स्वयं हा जात थे। यदा है कि भारत में पण्डितों के साथ एक शास्त्रिय का प्रयोग होता था, यदा शिवा के लिए स्वामी ज न कुछ साथ एक कठिन संकल्प भी होती थी, जिस पण्डित लोग गतांग सके। सामान्यतया स्वामीजी का संकल्प होता तो उस बहुत हासिल था। यदा बड़ा संकल्प भाषा का प्रयोग किया करते थे। पण्डितों का राजा ग पृथ भी प्रवेश था, वह उनके आशय को समझ जाते थे। पण्डितों का आग्रह पर यदा रामो गा न गद समय तक कठिन संकल्प का भी भाव न किया, जिसमें पण्डितों के मुँह में गन्धर्व मिदान्तों की व्यख्या सुनकर ऊपे प्रसिद्धी दान ग मय। बगैरे म स्वामी जी का पं समताननन म शास्त्रार्थ करने के लिये फिर बन्दई जात पडा।

१८७५ ई० के जुलाई मास के प्रारम्भ म प्रीतम सुवार्क श्रायु गशद्व गोविन्द रामो के निम्नत्रय का स्वामी जा हुन गये। पूना प्रसारक का कन्द्र है, और सातान धम का गद है। पूने म प्रदीप सागर का व्यापना का लुक है, और गताओं का प्रसता का लुक है। ठाँ गिान लहस का कार था। पून म स्वामी का क १५ बडे प्रभाव सादा व्यख्या हुए। यदा व्याख्यान सत्र री री उन भा लुके है। पूना गद म इन व्याख्यान के प्रसार ग हल पता मचा दा। साठे मशहाय के उद्योग से शहर म

स्वामी जी की ससारी निकली । एक पालना में गरी टुप वेद आगे २ पै, और रजनी जी की ससिये हाथी पीछे २ था । ससारीवपी धूमधन से निकली । इसके जनाय ग विरोधियों ने, जिनमें कई महाराष्ट्र के रत्न भी शामिल थे, गार्दनानन्द आचार्य की सवारी निकाली । एक आदमी का मुह काला करक गवे पर बिठा दिया, ताली पीटते और काँच फेंकते हुए लोग साथ जाने लगे । बड़ा हुन्ता मचता रहा । त्वागी जी और उनके साथियों पर काँच फेंका गया । राठे महाशय पर भी बहुत सा काँच पड़ा । विरोधियों ने समझा कि वह इस प्रकार से सत्यवादी के मुह को सी सँगे, परन्तु उन्हें पता नहीं था कि यह मोम नहीं था, जो हाथ से गुग जाता । इस व्यवहार से स्वामी जी का तो क्या अपमान होना था, उरटा आज तक भी उन्हीं महानुभावों के शुभ कीर्तिचन्द्र पर कालिमा का एक धना लगा हुआ है, जो और सब से प्रकार से आदर के योग्य है ।



## ग्यारहवां परिच्छेद ।

### उत्तरदिशा में धर्म की गूँज ।

—

१ जनवरी १८७७ ई० को दिल्ली में महारानी विक्टोरिया के भारत की महारानी उद्घोषित होने के उपलक्ष में भारी दरबार हान को था । उसकी तय्यारिया घूम घूम से हो रही थी । दिल्ली में देशभर के राजा महारानों के आने की आशा लगी रही थी । स्वामी दयानन्द जी बम्बई से लौट कर सयुक्त प्रान्त में भ्रमण कर रहे थे, उन्हें दरबार के समाचार मिले । जा व्यक्ति सत्तर भर को सत्य की बात सुनाने का बीड़ा उठाये हुए हो, उसे इससे अच्छा अवसर कहा हाथ आ सकता था । स्वामी जी को खेचनेवाले मुख्यतया दो प्रलोभन थे । एक तो उनकी प्रबल इच्छा थी कि यह धार्मिकवर्त के राजाओं के दरबार में सच्चे धार्मिक धर्म के लिए प्रेम पैदा करने में सफल हो । उनकी भावना थी कि जब तक देश के रडैस नहीं मुरते जब तक राजा का सुधार नहीं हो सकता । यदि किसी प्रकार रडैसों की दशा सुधारी जा सके तो सर्व खयाल की दशा में बिना विशेष परिश्रम के ही परिवर्तन पैदा किया जा सकता है । इस कारण उनकी अभिलाषा थी कि किसी प्रकार देश भर के नरेशों के कानों तक सत्य का मन्देश पहुँचाया जाय । दरबार की ओर खेचनेवाला दूसरा प्रलोभन यह था कि स्वामी जी देश में काम करीवाली अनन्य शक्तियों का देग रह थे । एक ओर ब्रह्मोन्मत्त था, मिमती बागजोर उम समय वा० केशवचन्द्र सेन के हाथ में थी । दूसरी ओर सत्यद अहमद की चलाइ हुई लहर थी, जिनका उद्देश्य मुसलमानों को जगाना था । शक्तियाँ अनेक थीं, परन्तु सब का उद्देश्य एक ही दिखाई देता था । एक ही सचाई का निग २ रूप से प्रकाश हो रहा था - स्वामी जी की प्रतिभा केवल भेदों को देखनेवाली और वाट छोट करन वाली न थी, वह गडे से बडे भेद में समानता देखने की भी शक्ति रखता थी । स्वामीजी भेद प्रगति को ही उपन नहीं करना चाहते थे, युगियों के दूर हो पान पर बचा हुई भगई के आधार पर सारी मनुष्य जाति को एकता क सूत्र में पिरो देन का भी सन्नप रखते था । सत्यार्थ प्रकाश का निम्नलिखित उद्देश्य स्वामी जी के धारण को प्रकट करेगा ।

( जिगसु ) इसनी परीक्षा कैसे हो ?

( भास ) नू जाकर इन २ बातों का पूछ सब की एक सम्मति हो जायगी ।

तब वह उन सहरों की मडली के बीच में पाडा हो कर बोला कि 'सुनो सज लागो ! सत्य भाषण में धर्म है वा मिथ्या भं ? सत्र एक स्वर हो कर बोले कि सत्य भाषण में धर्म और असत्य भाषण में अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्संग, पुण्यार्थ, सप्त ध्यवहार आदि में धर्म है वा अविद्या ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, पुमग, असत्य व्यवहार छल, कपट, हिंसा पर हानि करने आदि कामों में ? सत्रने एक मत होके कहा कि विद्यादि के ग्रहण में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म । तब जिज्ञासु ने सत्र से कहा कि तुम इसी प्रकार सब जने एक मत हो सत्यधर्म की उन्नति और मिथ्याधर्म की हानि क्यों नहीं करते हो ?"

इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी केवल मामतान्तरों के भेद को दिखा कर विरोधात्मक सत्सार की रचना कानेनाले नहीं थे, उनका संकल्प था कि सर्वसम्मत व्यापक सचाइयों के आधार पर सत्सार भर का एक धर्म स्थापित किया जाय । दिल्ली के दरबार में भारत वर्ष के सत्र धार्मिक मुखारकों के इकट्ठे होने की अप्रशा थी । स्वामी जी को यह अपसर बहुत उत्तम प्रतीत हुआ । जो लोग स्वामी जी को एक सजुचित सम्प्रदाय के सस्थापक के रूप में प्रगट करना चाहते हैं वह यदि इन उदररय और ऋषिजीवन के इस भाग को ध्यान से पढ़गे तो उनका सन्देह दूर हो जायगा ।

दिसम्बर मास के अन्त में स्वामी दयानन्द जी दिल्ली पहुँच गये, और शेरगल के अनारबाग में डेरा जमाया । मुशी इन्द्रमणि आदि हितैषी लोग स्वामी जी के साथ ही टहरे थे । इन दिनों स्वामी जी ऋग्वेगादि भाष्य भूमिका पूर्ण कर चुके थे और वेद भाष्य लिखाते थे । प्राचर का कार्य प्रति दिन होता था । राजा महाराजाओं के पंडित स्वामी जी के पास आते रहते थे । स्वामी जी ने अपने विचारों की सूचना प्रायः सब राजाओं के पास भेजदी थी । उन लोगों के हृदय में महात्मा के दर्शनों की इच्छा भी उत्पन्न होती थी, परन्तु ब्राह्मण लोग पीछे से रोकते रहते थे । वह बढ़काने और स्वामी जी को नास्तिक बतलाकर दर्शनजन्य पाप के चित्र खेंवन में लगे रहते थे । इन्दौर नरेश ने यत्न किया था कि एक सभा में सत्र नरेश इकट्ठे हा और स्वामी जी के सिद्धान्तों का श्रण्य करें । दिल्ली में राजा लोग सरकारी प्रोग्राम से ही लुडी नहीं पा सकते थे, उन्हें धर्मोपदेश सुनने की पुर्मत कहा । कभी लाट साहिब की हाजरी—कभी फौज का निरीक्षण—कभी जखुस—कभी थियेटर—इनसे पुर्मत पानी ही कठिन होती थी । राजाओं का जमाय न हो सका । स्वामी जी का विचार था कि देश के रईसों का बुद्ध सुधार कर सकें—कम से कम उनके कानों तक धर्म की ध्वनि पहुँचा है, परन्तु कुछ देश का दीर्घाय और कुछ रईसों का कर्मफल विचार फलीभूत न हो सता ।

दशरथ के मंत्र पर पहुँचा मैं म्याना जी का दूसरा लक्षण यह था कि देश के भिन्न २ धार्मिक नेताओं को इका त्रके परामर्श किया जाय और यदि सम्भव हो तो कोई एक ऐसा मन्नाद दूज दिया जाय, जिसमें सब सम्प्रदायस्वभावा वाले मिन्या लिये जाय । सब सुभासक एक ही प्रकार से, एक ही रबर से, सुधार का दान कर, तर्क जो जाग प्रभा का सुधार कर रहे हैं, यह आपस में ही माभद के कारण भगडते हुए टिन्टगावर न हो । स्वामी जो के निमन्त्रण पर बा० कसनचन्द्रसेन, सर सय्यद अहमद खा, नुशा कन्ट्यालाल अलगवारी, बा० नवानचन्द्रगण, मुन्शी इन्द्रमणि और बा० हरिचन्द्र चिन्तामणि—यह महानुभाव स्वामी जी के स्थान पर एकत्र हुए । बा० केशवचन्द्र उस समय ब्रह्मो-मन्ना के चमकते सितारे थे । नरविद्यान अभी विख्यात नहीं हुआ था, भान्तु समान की बागडोर उन्हीं के हाथों में थी । ब्रह्मसमाज के दूसरे प्रतिनिधि बा० नवीचन्द्रगण थे । राय मराराय पजान के ब्रह्मसमाज के प्राण्य थे । १९ वीं सदी में इस्लाम ने सर सय्यद का अपेक्षा अधिक प्रभावशाली नना उत्पन्न नहीं दिया । सर सय्यद का बल तलवार का नहीं था—लेखनी का था, चिन्हा का था, और बुद्धि का था । भागत के मुमकनाओं को आपने नींद से उठाकर उवा कर दिया था । मुन्शी कन्ट्यालाल अलगवारा सुभासक वत कर रहे थे, और मुन्शी इन्द्रमणि मुसलमानों द्वारा हिन्दू धर्म पर किये हुए अपेक्षाओं का समाधान करके स्वामी पर रह रहे थे । बा० हरिचन्द्र चिन्तामणि उस समय बम्बई के प्रसिद्ध भाव समाजी थे । इन प्रकार यह छोटी सी सभा प्रतिनिधित्वस्वरूप समझी जा सकता थी । इसमें बगाल, बम्बई प्रात, युक्त प्रान्त और पजाब के और दूसरी तर्फ इस्लाम ब्रह्मसमाज, हिन्दू समान और भायसमान के प्रतिनिधि विद्यमान थे । सभा में स्वामी जो ने अपना विचार उपस्थित किया । विचार का सार यह था कि देश का अन्त्युदय, और मनुष्य का कल्याण तब तक नहीं हो सकता, जब तक देशभर का एक धर्म न हो जाय । वह एक धर्म वेदिक धर्म है । यदि उस पर कोई आक्षेप या गका हो ता स्वामी जी ने उसके समाधान का लिये भयमा देने की इच्छा प्रगट की । दु गव है कि इस सभा की पूरी दाररवाइ कहीं भी प्राप्त नहीं हाता । यह सभा 'मुस' ही समझी गई होगी, क्योंकि इस समय के समाचार पत्रों में भी इसका कोई निस्तृत बर्णन नहीं पाया जाता । प्रतीत होता है कि सभा का उद्घाण वेद की निद्रापता पर आकर टफराया । ब्रह्मसमाजी और मुसमान पेद की ईश्वरीयता और निरौपता को नहीं मान सके, इस कारण सभा विशेष परिश्रम उत्पन्न किये बिना ही समाप्त होगई ।

सभा के सन्मुख मुख्य कठिनाई वेद सम्बन्धी थी—वह अनुना एक और घटना से भी पुष्ट होता है । बा० केशवचन्द्रसेन ने दिल्ली में ही स्वामी जी से यह भी कहा था कि यदि आप वेद के नाम से धमप्रचार करने की जगद यह पहा करें कि—

“मैं कतना हू कि यह धर्म है” तो लोग अधिक सुगमता से विश्वास बरलें और आप को अधिक सकलता हो । स्वामीजी ने इनका जो उत्तर दिया होगा, उसकी फटपा ही की जा सकती है । एक मुसलमान और फिर बहुत मुत्तमान यह मानले कि वेद ईश्वर की ओर से आवे हैं और निर्दोष है—यह भी वैसे सम्भव था । यह समझ लेना कठिन नहीं है कि वेद के आधार पर धर्म की गता वरन न दता में वा० केशवचन्द्रोत या सर सय्यद अहमदशा से सहायता पावे क उद्देश्य से जो सभा की गई थी, वह क्यों असफल हुई ?

दुगार की समाप्ति पर स्वामीजी ने दिल्ली से प्रस्थान किया । आपमेरठ होते हुए सहारनपुर गये । वहा स्वामी जी को सूचना मिली कि चानपुर जि० ग्राहजहापुर में एक भारी धार्मिक मेला है, जिसमें ईसाई और मुसलमान विद्वान् भी भाग्यगे, और निर्णय होगा कि कौन सा धर्म सच्चा है । मेले क सस्थापकों का निमन्त्रण पहुचते ही स्वामी जी ने स्वीकार कर लिया ।

मेला १८ मार्च सा १८७७ से २० मार्च सा १८७७ तक होन को था । मेले से ५ दिन पूर्व स्वामी जा चानपुर पहुच गये । १८ और १९ गान को मुसलमानों और ईसाइयों क प्रतिनिधि बडे २ मौलवी और पादरी भा आ पहुचे । इस मेले का नाम “भानन्द स्वरूप” मेला था, और उद्देश्य धर्मात्म का निर्णय था । यहां के कई रईसों ने ईसाई पादरियों क आक्रमणों मे तग आकर इस मेले का समठन किया था, ताकि सत्य और असत्य का निर्णय एक ही वार हो जाय । धर्म चचा आरम्भ होने से पहले कई लोग भी स्वामी जी के पास आकर निवेदन करने लगे कि उत्तम हो यदि मुत्तमान और हिन्दू आपस म मित्रर ईसाइयों को नीचा दिखाये । स्वामी जी धर्म और सत्य में राजनीति और मुलहनामे की चालों को नहीं जानते थे । उनका उत्तर स्पष्ट था । उन्होंने कहा “उचित मारूा होता है कि कोई निन्ना का पदापात न करे, बल्कि मेरी समझ में तो यह अच्छा बात है कि हम और मौलवी साहिब और पादरी साहिब प्रीति से मिलकर सत्य का निर्णय करें । बिन्नी से विरोध करना उचित नहीं है ।” इस मेले मे जहा अन्य सम्प्रदाय यातों का उद्योग था कि बिन्नी प्रकार निर्गोधी को नीचा दिखाया जाय, वहा स्वामी जी के हृदय में यह इच्छा प्रखलित हो रही थी कि सच तोग सत्य धर्म को समझ जाय ।

दो दिन तक शास्त्रचचा होती रही । मुसलमानों की ओर से देवगन्द के मद्रसे के प्रसिद्ध मौलवी मुहम्मद काजिम और दहरी के मौलवा सय्यद अब्दुल मम्र, ईसाइयों की ओर से पादरी स्वाट, पादरा नरट, पादरी पार्क, छाा पुर्णा की ओर से स्वा० दया-नन्द और मुशी इन्द्रमरि थे । कशीपन्धी लोग तो इन मेले के सचकारक हा थे । यह मेला एक अश्व ही का था । विचार भी उत्तम हुआ । पहरो दिखाई देता था

दशक के आस-पास पर पड़ती में स्वामी जी का दूसरा सङ्घ यह था कि देश के विज्ञान २ धार्मिक उपायों को शक्ति प्राप्त कराने के लिए प्रयत्न किया जाय और यदि संभव हो तो कोई एक ऐसा मठान्द्रुष्ट किया जाय, जिसमें सब सम्प्रदायों के लोग मिल-जुल सकें। सब सम्प्रदाय एक ही प्रकार से, एक ही स्वर से, मुखा का बनाकर, तब ही लोग प्रसाद का सुधार कर रहे हैं, वह आपस में ही मठान्द्रुष्ट के आस-पास मठान्द्रुष्ट दृष्टिगोचर न हो। स्वामी जी के विचार पर बा० केदारचन्द्रसेन, सर स्वयंभू अक्षयदास, मुशा कन्देयालाल अलकनन्दा, बा० नवीनचन्द्रसेन, मुन्शा इन्द्राचि और बा० हरिधरचि चित्तौड़गढ़—यह महाशय राजाजी के स्थान पर एकादश १। बा० केदारचन्द्र उस समय ब्रह्म समाज के चरमने मिलते थे। नवीनचन्द्रसेन भी विख्यात नहीं हुआ था, परन्तु समाज की बागडार उन्होंने ही की थी। ब्रह्म समाज के दूसरे प्रतिनिधि बा० नवीनचन्द्रसेन थे। राय महाशय केजरी समाज के प्रायः थे। १६-१७ नदी में इस्लाम ने सब सम्प्रदाय की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली तारा उपनत नहीं किया। सब सम्प्रदाय का बल धारावाही नदी था—लखनौ का था, बिन्दा का था, और मुन्दा का था। भारत के मुसलमानों का आपस में से उठकर खड़ा कर दिया था। मुन्दा कन्देयालाल अलकनन्दा मुन्दा का बल कर रहे थे, और मुन्दा इन्द्राचि मुसलमानों द्वारा हिन्दू धर्म पर किये हुए आक्षेपों का समाधान करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। बा० हरिधरचि चित्तौड़गढ़ उस समय बम्बई के प्रसिद्ध धार्मिक समाजी थे। इस प्रकार यह छोटी सी समाज प्रतिनिधित्वपूर्ण समाजों का सञ्चालन थी। इसमें बंगाल, बम्बई प्रांत, युक्त प्रांत और पंजाब के और दूसरी तारा इस्लाम ब्रह्म समाज, हिन्दू समाज और धार्मिक समाज के प्रतिनिधि नियुक्त थे। समाज में स्वामी जी ने अपना विचार उपस्थित किया। विचार का सार यह था कि देश का धर्मयुद्ध, और मनुष्य का कल्याण तब तक नहीं हो सकता, जब तक देशभर का धर्म न हो जाय। यह एक धर्म वैदिक धर्म है। यदि उस पर कोई आक्षेप या शंका हो तो स्वामी जी ने उसके समाधान के लिये धर्मयुद्ध दान की इच्छा प्रकट की। उस लक्ष्य कि इस समाज की पूरी काग्यवाई कहीं भी प्राप्त नहीं होनी। यह समाज 'युक्त' ही समाजों में ही होगी, क्योंकि इन समाज के समाचार पत्रों में भाइयों को कोई विस्तृत व्ययन नहीं पाया जाता। प्रतीत होता है कि समाज का उद्देश्य वेद की निर्दोषता पर आकर टकराया। ब्रह्म समाज और मुसलमान वेद की ईश्वरीयता और निर्दोषता को नहीं मान सके, इस कारण समाज विशेष परिणाम उत्पन्न किये बिना ही समाप्त हो गई।

समाज के सम्मुख मुख्य कठिनाई वेद सम्बन्धी थी—यह अनुमान एक और धर्म से भी पुष्ट होता है। बा० केदारचन्द्रसेन ने दिल्ली में ही स्वामी जी से यह भी कहा था कि यदि आप वेद के नाम से धर्मप्रचार करने की जगह यह कदा करें कि—

विद्वेषभाज, निसने पीछे मे बड़ा भयानक रूप पकड़ा, और गम्भीर परिणाम उत्पन्न किये, इसी साथ से भाग्य होना है । ईसाई पादरी आर्यसमाज की बगती को न सह सके, उन्होंने समझा कि आर्यसमाज उनके मुँह में से घ्रास छीन कर लेगया । पञ्जाब में स्वामी दयानन्द जा के आने और सफलता पाने के विषय में सब से उत्तम यही वाक्य प्रयुक्त किये जा सकत है कि 'वह भाये, उन्होंने देखा, और जीत लिया' ।

स्वामी जी के हृदय में सत्य का जो स्थान था, वह दूसरी किसी वस्तु का नहीं था । जिसे वह सत्य समझते थे, उस पर सब कुछ न्योछान कर देने को तैयार थे । आप पहले टीवान रत्नचन्द्र के बगले में ठहराये गये—स्वामी जी के व्याख्यानों से दीवान साहिब असन्तुष्ट होगये । स्वामी जी न उनका सहा छोड़ दिया, परन्तु बात नहीं छोड़ी । आपको लाहौर में निमन्त्रित करने वालों में बहुत से ब्राह्मणसमाजी सज्जन थे । स्वामी जी क वेद सन्वन्धी व्याख्यानों से ब्राह्मणसमाजी असन्तुष्ट हागये । प० शिव नारायण अग्निशात्रा, जो पीछे से सत्यानन्द अग्निगोत्री बनकर, और सन्यस्त दशा० में ही नवा विवाह करके, ईश्वर के स्थानापन्न 'देव गुरु भगवार्' होने का दावा करनेवाला बना, वह उस समय ब्राह्मणसमाज का प्रचारक था । वह वेदों के विषय में निर्मूल आक्षेप करने में अगुआ था । एक दिन कई सज्जनों की उपस्थिति में वह स्वामी जी से करने लगा कि 'सामवेद ईश्वरीय नहीं हो सकता—उसमें तो उल्लू की कहानी लिखी है' स्वामी जी ने सामवेद की पुस्तक सामने रखकर कहा कि 'इसमें से उल्लू की कहानी निकाल कर दिखा ०' ब्राह्मणसमाजी वेदों को निभ्रान्त नहीं मानते थे, परन्तु उनकी पाश्चात्य विद्वानों की की हुई टीकाओं को अवश्य निभ्रान्त मानते थे । अग्निगोत्री जी ने निभ्रान्त टीका के आधार पर ही वेदों को भ्रान्त बनलाया था, मूल वेद में से वह कुछ भी न निकाल सके—केवल पन्ने पलटने लगे । स्वामी जी ने उन्हें शर्मिन्दा किया । ऐसी बातों से ब्राह्मण समाजी असन्तुष्ट होगये, और स्वामी जी के डेरे को आर्थिक सहयता बन्द करदी । तब प० मनकलजी की ओर से टहल सेवा होने लगी । प० मनकल जी के विचार तो उत्तम थे परन्तु स्वामी जी के मूर्तिपूजा खण्डन से वह भी कुछ घबरा गये । उधर काश्मीर नरेश की ओर से स्वामी जी को फिर सदेसा आया । दिल्ली में भी उन्हें सदेसा मिला था । नरेश ने स्वामी जा को काश्मीर में निमन्त्रण दिया था । स्वामी जा ने उत्तर में कहा भेजा जा कि "काश्मीर के राज्य में राजा की ओर से बन-याये हुए बहुत से मन्दिर हैं । मैं मूर्तिपूजा का खण्डन करूंगा, इससे राजा को दुख होगा ।" लाहौर में प० मनकल जी ने फिर स्वामी जी क सन्मुख वही विषय रखा । निवेदन किया कि यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन छोड़ते तो महाराज काश्मीर भी आप को मुलाजेलें । उस समय स्वामी जी ने जो उत्तर दिया, वह उनके महत्व का सूचक है । उससे ज्ञात होता है कि स्वामी दयानन्द साधारण मिस्ट्री से नहीं बने, थे, वह उसी



कि चर्चा के केन्द्रभूत ईसाई पादरी होंगे। समझा जाता था कि बेचारा हिन्दू-धर्म क्या खड़ा हा सकता है ? परन्तु स्वामी जी की एक चौमोहरी चलते ही जनता की भाँखें उधर फिर गई, सबने समझ लिया कि इस आवाडे का प्रज्ञान मूखी यह सन्यासी ही हागा। सर्वसाधारण पर स्वामी जी के प्रमाण और युक्तियों से सुभूषित भाषयों का एव ही असर हुआ। पादरियों और मौलवियों को उस मेले में चेतावनी मिल गई कि भार्यधर्म एक जीवित पदार्थ है, मुर्दा नहीं।

इस मेले पर धर्म की तुरही सुनाकर धर्म-युद्ध के महारथी ने पनाब की ओर प्रस्थान किया। पहला पड़ाव लुधियाने में हुआ, ३१ मार्च ने १८ अप्रैल तक लुधियाने में धर्मो-पदेश करके स्वामी जी १६ अप्रैल को लाहौर पहुँचे और दीवान रामचन्द्र के बाग में डेरा जमाया। सायंकाल के समय बागनी साहिव में वैदिकधर्म पर व्याख्यान हुआ। उस व्याख्यान में पौराणिक लोगों के लिये बहुत कुछ गर्म मसाला था—यह लोग बहुत असन्तुष्ट हुए, और दीवान रत्नचन्द्र पर दबाव डाला गया कि वह स्वामी जी का अपने बाग से उठा दे। स्वामी जी को एक हिन्दू कुनोरपन व्यक्ति का स्थान छोड़कर डा० रहीम ग्वा की कोठी पर आसन जमाना पडा। इसके पीछे खूब प्रचार हुआ। पनाब का हृदय नग है, उस पर प्रभाव डालना सहल है। गुरुनानक को पनाब के सर का लेने में अधिक कष्ट नहीं था। पनाबियों के हृदय प्रभाव को शीघ्र लेलेते हैं—और फिर उसके अनुसार क्रिया और प्रतिक्रिया के आरम्भ होने में भी देर नहीं लगती। पनाबी के सोचने और करने में थोडा ही अन्तर है। अन्य प्रान्तों के लाग समझ ही नहीं सकते कि एक पनाबी ने कब सोचा, कब कहा और कब किया। जितनी देर में उनका सोचना समाप्त होता है, उतने में पनाबी कर डालता है। एक मुधारक को इसमें अच्छा मैदान कहा मिल सकता है। स्वामी जी पनाब में बहुत पीछे गये, परन्तु उन्हें वहा आशातीत सफलता हुई, उस सफलता में पहला कारण पनाबियों के हृदयों की प्रवृत्तिसलता थी। दूसरा कारण यह भी था कि भारत के सीमा प्रांत पर होने के कारण अधिक कष्टरपन—या सकुचितता—उनमें पहले से नहीं थी। स्वामी जी की निष्पत्तायी ने पनाबियों के नर्म हृदयों पर निजला का सा असर किया। अन्य प्रान्तों में जो कार्य महान न कर सकें, पनाब में वह सप्ताही न कर दिया।

जिन समय स्वामी जी पनाब में आये, ईसाई पादरी पकी खेती को दोनो हाथों फाट रहे थे। पनाब का लोहित समाज ईसाइयों के पने में पड रहा था। थोडा २ काम ब्रह्मासमाज भी कर रहा था। कुछेक पठित लोग इकट्ठे होकर बसोप्रार्थना भी कर लेते थे। स्वामी जी को पनाब में विशेष युद्ध ईसाइयों से ही करना पडा। जहा नहीं भी वह गये, वही हिन्दू युवकों को ईसाई होने से बचाया। भार्यसमाज से ईसाइयों का

# वारहवां परिच्छेद

## नियमों की हढ़ नींव

आर्यसमाज के नियमों का युग सम्बन्ध करके वा क्या निर्मित था ? यह एक आवश्यक प्रश्न है। श्रुति दशानन्द ने बम्बई के नियमों में परिष्कृत की आवश्यकता समझी, यह था। बिना भित्ति का गढ़ी हो सकती। परिष्कृत का आवश्यकता का प्रथम प्रमाण यह प्रतीत होता है कि नियमों का युग अतिक्रमण कर दिया गया। बम्बई के नियमों में जान क्या क्या बिना हुआ है ? आर्यसमाज का उद्देश्य, समा-सत्ता की घोषणा, समाज का साठन, अधिपतियों की कायदाही, समाचार पत्रों का निर्माण अर्थात् गौर और मुत्त, व्यापक और समाजिक समा प्रकाश का मर्म गिलाफ़ धरदा गई थी। आवश्यक था कि युग को गौर से समा व्यापक को समाजिक से युग का किया गया। लाहौर के दस नियमों में काल उन्हीं बातों के समावेश का ध्यान किया गया है, जो युग और व्यापक है। बम्बई के नियमों का १६ वां नियम कहता है कि 'इस समाज की धार से धेड़ विद्वान् लोग मजत सद्गुण प्रदान करने के लिए भेजे जायेंगे' यह एक गौण नियम है। यह प्रश्न समाज की शक्ति पर अत्यन्तित है कि वह प्रचार के लिए उपदेशकों को बाहिर भेज सकता है या नहीं ? हरक समाज के लिए यह नियम नहीं मान सकता कि वह उपदेशक रखकर प्रचार करे। इस प्रकार के नियम लाहौर में स्वीकृत नियमों में से निकाल दिए गये हैं।

लाहौर में स्वीकृत नियम अतिक्रमण व्यापक है। उनमें विचारों की अतिक्रमण उदात्ता पाई जाती है। उनके निर्माता का दृष्टिकोण विस्तृत हो गया है। बम्बईवाले नियम बम्बई के उन समय के सामान्य विचारों के प्रतिबिम्ब थे, लाहौर वाले नियम दृष्ट्य समाज प्रतिभा के विकास को सूचित करते हैं। बम्बई वाले नियमों में ईश्वर के स्वल्प का प्रतिपादन नहीं। लाहौरवाले नियम दृष्ट्य विश्वास का ही सब विश्वासों का आधार मान कर चलें हैं। उनमें आर्यसमाज का भगवान् ईश्वर विश्वास की मजबूत नींव पर रखा गया है। लाहौर के सत्कृत नियम सिद्ध करते हैं कि श्रुतिदशानन्द अन्य समाज विश्वासों की अपेक्षा ईश्वर विश्वास को अधिक आवश्यक समझते थे। बहुत सी युगदृष्टियों की जड़ वह ईश्वर सम्बन्धी उल्टे विचारों को ही मानते थे। उन्होंने अपने जीवन का एक विशेष उद्देश्य यह बना रखा था, कि लोगों के ईश्वरसम्बन्धी

फौजदार मन्थे, जिनके सुत्र ईसा १७७७ का हुकर का निर्वाह हुआ था। आने कदा—'मन्थे को या महागात्र ताराकार को प्रजा कर या ईश्वर मन्थे का पालन पार ११' इस उतर से प० गन्धर्व जी का सचुचित हृदय और भी गिन होगया—स्वामी जी के हृदय की गरुड़ की पदचानने के स्थान में उन्होंने इस उतर में अपना अधिरोप समझा।

शीघ्र ही शहर के शिक्षित समाज में हलचल पैदा होगई। पत्रकारियों के घोमल हृद्यों पर श्रुति की दी हुई चोटों का भार हाने लगा। अर्थसमाज की स्थापना का निश्चय हुआ। यहाँ बम्बई में प्रचारित बिग डुर नियमों का सञ्चारन किया गया, और निम्न तारा उपनिषद् जुगल शिथे गये। आमतारा के समाज को का रूप देना १० निम्न का मानना ही पसन्द समझा गया। बम्बई के नियम बहुत विस्तृत थे, ताहीर के नियम बहुत सक्षित बनाये गये।

१० नियमों का निर्माण अर्थसमाज की स्थापना और हृदय का एक ग्रास पत्र है। यह ग्रास समझना चाहिये कि इस १० नियम-संस्कार में का विशेष कारण या उद्देश्य नहीं था। इतना समझने से ही महात्मा सुभाष चन्द्र बोस कि बिन्हीं एक या एक से अति व्यक्तियों की समिति का प्रभाव डालकर यह परिवर्तन करवाया। निश्चय का संस्कार समझना ही एक विशेष अर्थ है—वह एक विशेष घटना है, नियम के कारणों और फलों पर विचार करना चाहिये। अर्थात् क्या दे दीया या यह नियम-संस्कार एक विशेष परिणाम फल का सूचक करते हैं—अथवा इन नियमों के कारण ही कि इन्हीं के अन्त में अपने हुए स्वभाव के अन्त में ही सुभाष चन्द्र बोस ने 'श्री' माना जाय और समाज की के लिये इसी शब्द का प्रयोग किया जाय।

उदार नियमों का भी निमाण कर सकता है ?

( १० ) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए ?

साहौर वाले दसों नियमों में एक असीम सत्य प्रेम, एक अनन्त उदार-हृदयता और एक व्यापक उद्देश्य की सूचना मिलती है । जिस आत्मा में इन तीनों गुणों का निवास हो यदि उसे 'ऋषि की आत्मा' न कहें तो और किसे कहे ?

साहौर में आर्यसमाज की स्थापना हो गई । समाज के अधिवेशनों के लिए एक मकान किराये पर ले लिया गया । ऋषि दयानन्द उस में प्रतिस्पर्धाह धर्मोपदेश किया करते थे । समाज के प्रधान ला० मूलराज जी एम ए और मन्त्री ला० सईदास जी नियत हुए । कई भक्तों ने ऋषिसे प्रार्थना की कि आप 'आर्यसमाज के गुरु या आचार्य पद का ग्रहण करें' ऋषि ने उत्तर दिया कि 'इस प्रस्ताव से गुरुपन की बू आती है । मेरा उद्देश्य तो गुरुपनकी जड़ काटना है, जिस से मुझे घृणा है' तब दूसरे भक्त ने प्रस्ताव किया कि यदि स्वामी जी आचार्य या गुरु नहीं बनना चाहते तो कम से कम 'आर्यसमाज के परम सहायक' की पदवी को तो अवश्य ही स्वीकार करें । ऋषि का उत्तर प्रश्न के रूप में था । आपने पूछा कि 'यदि मुझे आर्यसमाज का परम सहायक कहोगे तो परमात्मा को क्या कहोगे ?' फिर यह विचार कर कि आर्यपुरण सर्वथा इन्कार से उदास न हों, समाजके सहायकों में नाम लिखाना अगीकार कर लिया । यही ऋषि दयानन्द का ऋषिपन था । जिन लोगों को मौका मिला, वह पैगम्बर और रसूल बनने से नहीं कतराये, जिन्हें इतनी बड़ी हिम्मत न हुई, वह आचार्य, यानबी बन गये । ऋषिका ही हृदय था कि आचार्य गुरु या परम सहायक तक के पदों को न स्वीकार किया । कारण यही था कि ऋषि दयानन्द अपने को परमात्मा के ज्ञान का प्राचारक, सत्य का साधन मात्र समझते थे, इस से अधिक कुछ नहीं । वहाँ न बड़प्पन की चाह थी, और न गुरुपन की बू । वहा तो एक ईश्वर पर विश्वास था और सत्य पर अटल श्रद्धा थी । यही कारण था कि इस वीर की एक ही गज से सदियों के खडे किए हुए गुरुद्वार के गद हिल जाते थे, झुक जाते थे, और गिर कर चकनाचूर हो जाते थे । यदि ऋषि में अपनी बड़ाई या लौकिक बत्ती की कुछ भी कामना होती तो उन्हें ऐसी असुल सफलता कभी प्राप्त न होती ।

साहौर में नियम और उपनियम शुद्ध कर दिए गये थे । उपनियम अन्तरंगसभा ने बनाए थे । जिन समय अन्तरंग सभा में उपनियमों पर विचार हो रहा था, स्वामी जी अकस्मात् वहा पहुच गये । सभासदों ने प्रस्तुत विषय पर स्वामी जी की सम्मति मागी । ऋषि ने कहा कि 'मैं आप का अन्तरंगसभा का सहायक नहीं बनूँ, इस लिए

निचारे का गुणर किना जाय । कन्धों म यने निचारे में यर बना बन्धु। तद नही सूचित होनी थी । ताहोर में यर बुद्धि दूरी कर ती गई । उदरप पर ध्यान दे ले भी व्यापकता की शक्ति पाई जाता है । एटा निम्न यह है ' एता का उदरप करना इम समान एा मुन्य उदरप है, आर्षा शारीरिक आर्षातक और सामाजिक उन्नतिकरणा' । उदरयो म से स्थानीयवा निम्न गई है—शुद्धि का दृष्टिपत्र मिलता हो गया है । यह आर्ष जातिका मुखा इत निर नही काना चाहता, कि यर केवल आयजाती की भलाई चाहता है, यह आमजाती को सुधार कर संसार के उपकार का साया बनाना चाहता है ।

संसार भेद, जिनकी और ध्यान देता आरभ्यक है, यह है कि ईश्वरीय ज्ञान की ध्वन्या अधिक निम्न और उन्नत हो गई है । पदना निम्न माना है कि 'सब सत्य निचा और जा पदार्थ सत्य निचा स जा जात है, उन सबका आदि मूल परमेष्वर है' किन्ती उदार और सकोपहीन व्याख्या है । ईश्वर क ज्ञान की सीमायें नहीं म.ती गई । सर्वज्ञ और अक्षम भगवान् के ज्ञान क चाणे भार रेखा रेंधी भी नहीं जा सकती । 'सब सत्य निचा का आदि मूल परमेष्वर है' विद्यापपी वृक्ष का तना है, शाखायें हैं, है, पत्ते फूल और फल सब हैं, परमात्मा उनका आदि मूल है । आदि मूल सभा हो सकता है, जब वृक्ष की सम्मानना मात्र ली जाय । इय प्रकार अपरिमित ज्ञान मन्दा कल्पवृक्ष का मूल परमात्मा के माना गया है । परमात्मा का ज्ञान भी अपरिमित है । अपरिमित का मूल अपरिमित ही हो सकता है । जो मत्वादी ईश्वर के असीम ज्ञान भयदार को एक दो या अधिक कन्धों में बन्द सम्भवा चाहते हैं, उन्हें स्वामी दयानन्द के उदार निचार पर ध्यान देना चाहिये । पहला निम्न अनुदारता की जड़ पर बुढागावत करता है । यह पन्थाई पन का कर शत्रु है । यह उन लोगों के दावे को उन्नतित कर देता है, जो ईश्वरीय ज्ञान क ठेकेदार बनना चाहते हैं ।

कई महात्माओं का यह दावा है कि स्वामी जी को उन्होंने नियमपरिवर्तन में प्रेरित किया, और जो भेद दिखाई देता है वह उन्हीं की उदारता का फल है । प्रेरणा किसी की और स हो, इस में सन्देह नहीं कि जो भा परिवर्तन किया गया वह स्वामी जी की अनुमति से किया गया । यदि उन नियमों में अधिक उदारता है तो श्रुति दयानन्द के निचारों का उदारता ही उन म कारण है । यदि किसी को ऊपर दिखे नियमों से उदारता या भलीभाति पना न लगे तो वह निम्न लिखित नियमों पर भी दृष्टिपात करें । निश्चय है कि उसका भय दूर हो जायगा—

( ४० ) सत्य के ग्रहण करन और असत्य के छाडा में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये । क्या एक धर्म या सम्प्रदाय अपने अनुयायियों के लिए उस से अधिक

तब स्वामी जी ने कहा कि 'यदि आप निश्चय ही करगना चाहते हैं तो केशवचन्द्र जी को बुलाकर बातचीत कर लीजिये' ।

गुम्दानपुर में ऋषि दयानन्द के व्याख्यान सुनने इन्निनियर मि० कारु भी आया करते थे । एक दिन व्यख्यान करते हुए आपने कहा कि—

“अंग्रेज लोगों को इस देश में आपसे बहुत चिन्त होगया है परन्तु इन लोगों ने आपको उच्चारण को अत्र तक नहीं सुनाया । तब के स्थान में टकार ही गोलते हैं” कारु महाशय रज भोगये और यह करते हुए चले गये कि 'यदि तुम पश्चिम में पशावर की ओर चल जाओ तो तुम्हें मना आ जाय' कारु महाशय का अभिप्राय शायद यह था कि स्वतन्त्रता से बालना केवल अंग्रेजी राज्य में ही सम्भव है । ऐसा तब प्राय किया जाता है, परन्तु तब करने वाले लोग भूत जाते हैं कि अंग्रेजी राज्य से पूर्व भी भारतवर्ष में स्वाधीनता के लिये बहुत अधिक रास्ते खुले थे । पहले तो अंग्रेजी राज्य में वाणी की स्वाधीनता बहुत परिमित है, और फिर कौन कह सकता है कि वाणी की थोड़ी सा स्वाधीनता शिक्षा, हिनियर और राजकीय स्वाधीनता से बहुत श्रेष्ठ है ।

जालन्धर में ऋषि दयानन्द सरदार प्रिन्समासिंह के यहां ठहरे हुए थे । सरदार जी ने स्वामी जी से ब्रह्मचर्य के बल की वापस पूछा । स्वामी जी ने बतलाया कि ब्रह्मचर्य से अतुल बल की प्राप्ति हो सकता है । सरदार साहिब को निश्वास न हुआ, और सबूत मांगने लगे । स्वामी जी उस समय चुप रहे । सामक कसम सरदार साहिब अपनी गाड़ी में बैठकर बाहर चले । गाड़ी में बड़ी उदिया जोड़ी जुती हुई थी । कोचमन ने लगाम सगना और चाबुत्तु हिलाया जो जोड़ी इशारा पाते ही हवा से बातें करने लगती, वह केवल अगले पाव उठाने रह जाती थी । कोचमन कुम्फला गया, सरदार साहिब आश्रय से इधर उधर देखने लगे । पीछे दृष्टि पड़ी तो देखा कि स्वामी जी गाड़ी को पकड़ कर मुक्करा रहे हैं । सरदार साहिब को ब्रह्मचर्य के बल का एक नमूना मिल गया और स्वामी जी ने हस्तर गाड़ी को छोड़ दिया । \*

पजाव में भ्रमण के समय ऋषि दयानन्द वेदभाष्य लिखाया करते थे, इस कारण उनके साथ दो तीन परिणित रहते थे । पत्र व्यवहार के लिए एक लेखक रहता था । आप प्राय आर्योदेश्य रत्नमाला में राम से दिए हुए लक्षणों में से एक २ को लेकर उसका व्याख्या किया करते थे । सब व्याख्यान शास्त्रीय होते थे । शास्त्रीय विषय के प्रमग से समय के दोषों का भी खण्डन करते जाते थे । धार्मिक, सामाजिक या राजनी-

\* यह घटना जालन्धर की है । कई लेखकों ने इसे रायलपिंडी की घटना बतलाया है । यह भूल है ।

मुझे सम्मति देने का अधिकार नहीं है।' सत्रसम्मति ने स्वामी जी का रती स्र  
 अन्तरंग नमा का प्रतिष्ठित सभामुक्ता किया। उपनिषद् व्याख्यान पर स्थान  
 समाज का संगठन पूरा होगा। समाज मन्दिर में निम्नपूर्वक अधिवेशन होने लगे  
 इस प्रकार लाहौर के कार्य में निश्चिन्त हाकर ऋषि ने प्रान्त का भाग्य आम्ह  
 आप ने अमृतसर, गुरगसपुर, जालन्धर, फीरोजपुर छावनी, रायतपिण्डी, गुजरा  
 वजोगवाल, गुजराला, तथा मुल्तान छावनी आदि में पत्र पर सद्गुपदेश रिपे  
 प्राप्त आप के पट्टवते हा आदरमान की स्थापना होजाती था। आदरमान की स्थाप  
 से पौराणिक ऋद्ध में और पायी दता म भी हलचल पैदा होजाया करता थी। स  
 स्थानों पर इन पौराणिकों से और उच्च पादरियों से सम्मान करा जाता था। पर  
 या पौराणिक दल पंडिता से विन्दु न शून्य था। प्रामाण्य कोई ना अच्छा प  
 नहीं था। वेद का ज्ञान तो था, अर्थात् सम्पूर्ण ण भी कोई अच्छा ज्ञान मिल  
 कठिन था। यही कारण था कि पञ्जाब में पौराणिक दल की भोग से अधिक असम्भ  
 का व्यवहार होता था। यह तांग पादित्य का स्थान भी गाला गलीच और इट पत्थर  
 पूरा करना चाहते थे। अमृतसर वाराणास आदि शहरों में व्याख्या। या शास्त्र  
 के स्थान में गावी भोग पुस्तकों के प्रचारों के स्थान में धर क प्रयं  
 को काफी समझा गया। पादरियों के साथ शास्त्रार्थ वच हुए परन्तु उन के सुगल  
 फस हुए बहुत से अज्ञान बट्टर ऋषि दयानन्द ने बचाये।

पञ्जाब के दौरे का कुछेक घटनार्थे ऋषि दयानन्द के चरित्र का अच्छा चित्रण कर  
 हैं। जब वह अमृतसर में उपदेश कर रहे थे, उन दिनों पादरी इतने उन के पाम आं  
 पादरा साहिब ने स्वामी जी को एक ही मेज पर इकट्ठे भोजन करने के लिये निमि  
 किया। स्वामी जी ने पूछा कि इकट्ठे भोजन करने में क्या लाभ होगा? पादरी महाशय बो  
 कि इकट्ठे खाने से परस्पर प्रीति बढ जायगा' इस पर स्वामी जी ने कहा कि—

‘शास्त्र और सुनी एक ही धर्तन में आते हैं। रती और अग्नेज इसी तरह अ  
 और रोमन कैथोलक ईसाई एक ही मेज पर जीम लेते हैं परन्तु यह सब जानने हैं।  
 इन में परस्पर कितना बर विरोध है। एक दूसरे के साथ किन्ती शत्रुता है।’

रादार दयालसिंह मजीठिया अमृतसर के प्रसिद्ध रईस थे। वह ब्राह्मण थे। वह प्रा  
 धेदों पर शक्यों किना करते थे। बातचात धर्म में बर प्राप्त आपे स बाहिर  
 जाते, और निमी नियम का पालन नहीं करते थे। एक बार बानचीन में वह बहुत ते-  
 होगये। स्वामी जी ने उन्हें बार २ समझाया कि प्राप विधि व समय तक बोला कीर्ति  
 और प्रतिमादी को ना धोलने का मौका दाजिये, तब भी सद्गुर साहिब शान्त न हुए।

## तेरहवां परिच्छेद

### आर्यसमाज का विस्तार

बन्धु, युष्मान्त और पन्नाच म आर्यसमाजों का स्थापना हो चुकी थी । आर्य-समाज के समान ही हजारा की नव्या तक पहुँच चुके थे । जितने समासद् थे, यद्यपि दयानन्द के भक्त और अनुयायी उनसे बहुत अधिक थे । बहुत से लोग समझते थे कि "यह सुधारक कहता तो ठोक है, परन्तु यह सन्यासी है, निर्भय है, निश्चक है, हम इतना त्याग नहीं कर सकते, इन कारण सच्ची बात भी मुद् पर नहीं ला सकते ।" ऐसे लोग आर्यसमाजी न हों, परन्तु वह ऋषि के भक्त थे—और उसे आर्यजाति का रक्षक समझते थे ।

इस समय उत्तरीय भारत में रामा जी की अपूर्व स्थिति थी । वह आर्य जाति ( हिन्दू जाति ) के नया सुधारक और रक्षक माने जाते थे । आर्यजाति का प्रायः गो जाति है । इन समय गांधी के लिए ऋषिदयानन्द से बट कर ऊँचा आवाज उठाने वाला कोई नहीं था । ऋषि ने गोरक्षानिधि लिखकर आर्यजाति की आर्य मोलन का यत्न किया था । वह जिस क्रिमी भी सकारी अपसर से मिले उसके सन्मुख भारत में माहत्या बन्द कराने पर जोर दिया । इतना ही नहीं । ऋषि के मिहनाद से पहले ईसाई पादरी और मुसलमान मौलाना हिन्दू धर्म पर गहरी चोटें पड़ चुकी रहीं थे । बेचारे हिन्दू पंडित मूर्तियों और पुग्या के बोक से दवे हुए होने के कारण अपनी पीठ भी सीसा न कर सकते थे, शत्रुओं के प्रहारों का क्या उत्तर देते ? पादरी और मौलानी हिन्दू क्षेत्र में से खून फल काट रहे थे । ऋषि दयानन्द ने जरा एक और आर्य जाति की पीठ पर से पत्थर और पादरी का बोक उठा कर उसकी कण्ठ सीधी कर दी, वह दूसरा और पादरी और मौलानियों के तीरों के गड़ने के लिये तर्क की शाल खड़ी कर दी । न केवल इतना ही । ऋषि दयानन्द प्रतिभाशाली यादव था । यह जानता था कि जो आर्य कवल गड की छाट से दुश्मन के दार गजता है, वह कभी टुटता को हरा नहीं करता । दुश्मन की हिम्मत तोड़ने के लिये उल्टा आर्यसभ में चाहिये । पादरी और मौलानी पुराणों की कथाओं को हराते दे र कर आर्य जाति को निरुत्तर कर रहे थे । पुराणों का त्याग करके मूर्तिपूजा को वेद विन्द बताना कर ऋषि ने यह छिट्ट बन्द कर दिये, जग से होकर दुश्मन से गोले आर्यसभ में भग रहे थे । इन प्रकार घर की रक्षा का पूरा प्रबन्ध करके उम चतुर सनानी ने अपना समानोपकारी सेना का



तिरु सभी प्रकार के दोषों की मारमासा हो जाती थी। ममी प्रकार की बुराइयों पर मुदः चक्र घूम जाता था। क्रिमी भा जीवित शक्ति का लिहाज नहीं किया जाता था। क्र की दृष्टि में दो ही वस्तुयें थी—एक सत्य, दूसरी असत्य। मत्य का गवडन और सत्य का गवडन—यह उनका धर्म था। वहाँ १ प्रजा का लिहाज था—न राजा का भय : ससार की हर प्रकार की भलाई करना उनका लक्ष्य था।

अपने निराम रंग पर स्वामी जी साधारण रूप में रहते थे, परन्तु व्याख्यान समय मिर पर रेशमी पीताम्बर, नाचे पीली रेशमा धोती, और ऊपर ऊनी चोगा प नते थे। शरीर सुडौल और लम्बा था। चेहरा पूर्ण चन्द्र के समान भरत हुआ च तेजस्वी था। आग से तेज बरसता था। यह प्रमायुक्त मूर्ति थी, जिमने थोडे दिनों में पञ्जाब भर में धार्मिक हलचल पैदा कररी, और भ्रमात्मक विचारों का म हिला दिया।



शुभग्नि वहा प्रसना की स्थापना होगई । मेरठ के उसाही धार्मिपुर्णों के धारण से गह समान ग्रीर हां युजात के सगजों गं मुग्य होगना । मेरठ मे रवागो जी दिह्नी पडुचे । यहा भी प्रवार के भान्तर धार्मिगगज की स्थापना हुई ।

दिह्नी से चन कर स्वामी जी ने छ साग महानों तरु बडी भाग तौड का दौरा लगाया । अजमेर, नसीरगद, जापुर, रिवाटी, दिह्नी, मेरठ, हगिद्वार, देहगदून आदि में प्रवार और मुधार का काय करते हुए आप धार्मिपुर्णों का तया जीवा प्रदान करते रहे । गई (१८७८) गस में आप मुरादागद पहुचे । मुगगगग में मुशी इन्द्रमन आदि भक्तों के आग्रह से स्वामी जी ने देर तरु निरास किया । आपके व्याख्यानों का विषय धार्मिक होता था, परन्तु आपकी दृष्टि में धम इतना विस्तृत था कि मनुष्य जात से सम्बन्ध रखने वाला शाषद ही कोई ऐसा विषय हो, जिस पर आप प्रकाश ग डालते हों । परमात्मा और आत्मा पर गहरे विचार, नायन की समस्याय, विवाह आदि सामाजिक प्रश्न, देश की दशा, राजा क कर्तव्य आदि सभी विषयों पर ऋषि दयानन्द अपनी सम्बन्धि प्रकाशित किया करते थे । आपका 'धम' उदा विस्तृत था । वह कबरा 'ईश्वरगुजा' तरु परिमित गही था, और न ही डर या नीति की दृष्टि से आप उसके बीच म लकीरें डालने को तय्यार हो जाते थे । 'धर्म' एक था, व्यापा था, सर्वतोगामी था, मनुष्य के प्रत्येक व्यग्रहार में 'धम' को कुल्ल वक्तव्य है, यह ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त था । आपके व्याख्यान, और आपका प्रदान प्रन्थ सत्याय प्रकाश,—यह प्रमाणित करते है कि 'धर्म' को आप एक गजहब, ईमान या Religion नहीं समझते थे, बल्कि एक व्यापी नियम मन्ते थे । यही कारण था कि ऋषि ने आयात के प्राचीन गौरव पर वीभियों व्याख्या दिये, अनेक प्राचनाओं में आप जाति के चक्रवर्ती गज्य की प्रार्थना की, और राजा तरु प्रजा का धर्म बताते हुए भारत के विदेशी शासन का बमिया दिवाई । मुरादागद में आपके व्याख्यानों के समय अन्य लोगों के साथ स्थानय कलेक्टर मि० स्पेटिंग भी आया करते थे । उनके कहन पर एक दिन स्वामी जी ने राजधम पर ही व्याख्या दिया । ऋषि ने वेदों तथा स्मृतियों क प्रमाणों से राजनाति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए निभयता से राज्य के दोष दिखलाये । व्याख्यान घणों तरु होतर रहा । व्याख्यान के अन्त म कलेक्टर महाशय ने स्वामी जी का धन्यगग किया, और कहा कि यदि राजा और प्रजा के सम्बन्धो की ऐसी ही स्थिति रहती तो जो राजविप्लव हो चुका है, वह कमी न होता ।

मुगदागद से चन कर बरायू ठहते हुए स्वामी जी बरेली पहुचे । बरेली के गईस ल० लक्ष्मीनारायण की काठ पर आप का आसन जमाया गया । व्याख्यान आरम्भ होगये । स्वामी जी व्याख्यान के स्थान पर ठीक समय से पुर्व ही पहुच जाते थे, और

मुद्द आहिम का मोड़ा, और तुझे तपन में प्रत्यक्रमण कर गिये। ऋषि ने दर्जत और तुजान हाथ म लिये, और ईसाइयो और मुसलमानों को बताया कि तुम दुमों की आगों में गिनका दूना जागह हे, एगो अपरा धाय का इहरीर तो सभात ला। ईसाइयो और मुसलमानों को कालि प्रकृति हिन्दू म वगी प्रयाक्रमण की भाशा न थी। यह हम्बि से यह आशका न करने थे कि रत सींग मोग्या। पार्गी और मौलना इत ध कास्मिक प्रत्याक्रमण से भुम्कला उठे। उधर आयजाति का ह्य कून उठा। शार्ध ध। और आयसभ्यता की रक्षा भी हो सवता हे, पार्थिवीयों क इतिहास का भी काई सवता हे, आयजाति भी अपो ना को नता सवता हे—इत विचारों से, पार्थिवीयों का साम प्रमत्ताभरी भाशा रा भरपूर हारर जा रा चलन लगा। जा आयजन ऋषि के कार्य क महत्तर को समझ सकते थे, प्रमत्त थे कि पामात्मा ने पार्थिवीयों आयसभ्यता का रक्षक भेज गिया हे। जा लोग ऋषि दयानन्द क सवदों को देख कर घबराते हैं, वह कभी उन स्थिति पर विचार नहीं करते, जिन म ऋषि का का करना पना। स्थिति यह थी। आयसभ्यता पर ईसाइयाँ और मुसलमानों क भानर आक्रमण हारर थे। उन्हें सफलता भी प्राप्त हो गयी थी। सफलता क दा कारण थे। एक तो पार्थिवीयों म काई हुई सुराइया के कारण धर की निचलता—और दूसरा विगिनियों का निन्दुरता से आक्रमण। ऋषि न स्थिति को पहिचान कर ठीक उपाय का प्रयोग किया। धर म सुधार—और आक्रमण करने वालों पर प्रयाक्रमण—यह दो ही उपाय थे। वह स्थिति खतरे से भी हुई थी, इस कारण धम के सनापति का मुद्द क विषयों के अनुसार कठोर साबनों का प्रयोग करना पडा। इस म अनुचित क्या था ?

ऋषि दयानन्द उत्तरीय भारत में आयजाति के मान्य नेता थे। वह आयसमाजों के सन्स्थापक गुरु और आचार्य थे। राजा और प्रजा की दृष्टि में वह भारत के मनुजा-धों में से एक थे। यह स्थिति थी, जब वह पञ्जाब का दौरा तमा कर १८७७ ई० के जुलाई मास म युक्त प्रात म वापिन गये। लगभग दो वर्ष तक आप बरन्तर युक्त प्रात म ही भ्रमण करते रह। इस रीरे म प्रचार हुआ, नये पार्थिवीयों की स्थापना हुई, और मौलवियाँ तत्र पादगिया से शास्त्रार्थ हुए। २६ जुलाई १८७८ ई० को ऋषि दयानन्द रडकी पहुचे। वहा आप के व्याख्यानो म इजिनियरिंग कालेज के विद्यार्थी और प्रोफेसर लोग आया करते थे। उन लोगों के प्रश्न प्राय विज्ञान के विषय पर होते थे। रजाजी जी ने एक दिन इसी विषय पर बानीत की कि प्राचीन भारत म विज्ञान था या नहीं ? आपन वेदों तत्र अन्य पार्थिवीयों के प्रमाण देकर बताया कि प्राय सभा मुख्य २ वैज्ञानिक सिद्धान्त, जिनपर नये विज्ञान का गर्भ हे, हमारे साहित्य म विद्यमान हे। रडकी से गलीगढ़ हाते हुए स्वामी जी मगस्त मास के अंत में मेरठ पहुचे। मेरठ म उस समय विशेष अग्रुति थी। १६ सितम्बर १८७८ ई० के

पर लगाते और ऐना धार पाप करते हुए तबिक भी लग्गना नहीं होते ।” इतना वक्ता ही था कि साहिब फलैवटर और साहिब कमिश्नर क चेहरे मारे गुस्सा के लल होगये, लेकिन स्वामी जी का व्याख्यान उमी जोर से जारी रहा । उस गेन ईसाई मन का व्याख्यान भी समाप्ति तक खण्डन करते रहे । दूसरे गज मुखर को ही खजाची लक्ष्मीनारायण की साहिब कमिश्नर बहादुर की खोटा पर लग्गी हुई । साहिब बहादुर न फरमाया कि अपन पण्डित साहिब को कह दो कि बहुत सख्ती से काम न लिया करें । हम ईसाई लोग तो सभ्य हैं । हम तो महस मुनाहिदा र्म रागती से नहीं घबराते, लेकिन अगर जाहिल हिन्दू और मुसलमान बिगड गये तो तुम्हारे स्वामी पण्डित के व्याख्यान बन्द हो जायेंगे । खजाची साहिब यह पैगाम स्वामी जी के पास पहुचाने का वाता फरके साहिब चले आये । लेकिन स्वामी जी तक यह मजमून पहुचाने वाला बहादुर कहा से मिगता ? कई एक डपोदी बरदाग से प्रार्थना की, लेकिन कोई भी आगे बचन का हिम्मत न कर सका । आबिगफार चिथी एक नास्तिक पर पडी, और उस का जिम्मा ठहराया गया, कि वह मामला पेश कर देवे । खजाची साहिब मय उस नास्तिक और चन् एक दीगर आदमियो क कनरे म पहुचे । जिम पर नास्तिक ने सिर्फ यह कहकर कि ‘खजाची साहिब कुन्त्र अन कग्ना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें कमिश्नर साहिब ने बुलाया था’ किनारा किया, और कुछ मुसीबत खजाची साहिब पर टूट पडी । अन खजाची साहिब कहीं सिर खुल्लाते हैं, कहीं गला साफ करते हैं । आबिग पाच मिनट तक दिस्मय से देख कर स्वामी जी ने फर्माया ‘ भाई तुम्हारा तो कोई काम करने का समय ही नहीं है, इस लिए तुम समय की कीमत नहीं समझ सकते मेरा समय भ्रमोत है, जो कुछ कहना हो, कह दो ।’ इस पर खजाची साहिब बोले, “महाराज अगर सच्ची नकी जाय तो क्या दर्ज ह ? इस से अस्तर भी अच्छा पहता है और मजेजों को नाराज करना भी अच्छा नहीं है इत्यादि’ यहवात अटक कर और बडी मुश्किल से खजाची साहिब के मुन् से निकली । इस पर महाराज इसे और फरमाया “अरे बाल क्या थी, जिस क लिए मिडगिडाता है, और हमारा इतना समय गराव किया, साहिब ने कहा होगा, तुम्हारा पण्डित सज्ज बोलना है, व्याख्यान बन्द हो जायेंगे, यह होगा, वह होगा । अरे भाई मैं हज्या ता नहीं कि तुम्हें सावृगा । उसने तुम से कहा, तू मुझ से सीया नद देना । व्यर्न इतना समय क्या गनाया” एक विश्वासी पौगणिक हिन्दू नेठा था, बोला ‘दया, यह तो कोई अनताग है, दिल की बात जान लेते हैं’

मेर, यहाँ तो जो कुछ हुआ सो हुआ । अन व्याख्यान का हाल कागिल जिक्त है । भेने केशवचन्द्रसेन लाता मोहन घोष सुरेन्द्रनाथ मनजी एना वेसेन्ट और अन्य बहुत से

निरत भाव पर व्याख्या शुरू कर दते थे। व्याख्या का रस उभे में ही था, इस कारण ज्योतिषशास्त्र की भाँति भाव पर ही चर्चा थी, और व्यवहार में रस ही का प्रयोग ज़ाती थी। परन्तु स्वामी जी का व्याख्यान मात्र ही निरत भाव में हीन प्रथम पंक्ति पर ही। साथ ही अतिरिक्त स्वामी जी के स्वभाव ने नहीं था। उन्हें मिलान्त से प्रकृतियों का मद्भाग हुआ। व्याख्यान के प्रारम्भ में ही आगे पढ़ा—

“मैं तो स्वामी पर समुपन था, परन्तु आज मैं पढ़ने चला। अन्त में पैदल चल कर आया था कि माग न गयी गिनी। सारा कथितप्रम म मेरा दो। नहीं है, किन्तु बच्चों के बच्चा न है। बाल विनाइ र् तन्त्रात्मा म एसा निर्वाण का होना आधर्य नहीं है”

व्याख्या में सभी ऊँचे गज्याभितारी आया करते थे। स्वामी जी विना भाव का लिखा क सज्जे धर्म का प्रचार करने थे। जेलों में एक दिन घटा हुआ है, जिस से स्वामी जी के चरित्र का भव प्रभाव विना होता है। घटा का चरित्र स्वामी जी के भ्रुमात्र भिन्न २ भागों में वर्णन विना है। मैं पढ़ा पर महाराज मुन्शिराज जी का विना बड़ा उद्भूत करता हूँ। यह भी स्वामी जी के लिये जीवित चरित्र की भूमिका में दिया गया है। महाराज जी व्याख्यान में वह स्वर उपस्थित थे, अतः उपा विना वर्णन अधिक दयार्थ है।

“एक दिन व्याख्या दते हुए श्री स्वामी जी महाराज पुणों का अतन्त्र भावों का एगडन करते करते उकी सन्धार शिवा का एगडन करने लगे। उस समय पादरी स्काट मिन्टर रेड कलेक्टर जिला और मि० एडवड ताहिन मिन्टर डिप्टी जेन एडवड वीस और भ्रमणों के साथ नियमान थे। स्वामी जी १ पुणों की पञ्च कुमारीयों का चर्चा करते हुए एक २ के गुण बगान एग अतन्त्र द्विये, और पीठाधिकों की बुद्धि पर शोक प्रकाशित विना, कि द्वीपों के ५ पति कगक उभे कुमारी कगार दिया, और इसी तरह कुन्ना साग मन्दोदरी आदि का कुमारी कहा पौगविष्णु की आचार सम्बन्धियों शिक्षा न निकम्मा सिद्ध करता है। स्वामी जी की कथाशैली ऐसी परिहास पूर्य थी कि श्रोता यकने का राम नहीं लेते थे। इस पर साहित्य कलेक्टर और साहित्य कनिष्ठा आदि हसते और प्रसन्नता प्रकृशित करते थे। किन्तु इन विषय को समाप्त करने के स्वामी जी महाराज वाले—

‘पुणों की तो यह लाला है, अतः विगानियों ही लीला मुने। यह ऐमे भय है कि कुमारी के पैर पड़ होना बताते, फिर दाप मधुर शुभ स्वरूप परमात्मा

प्राप्त करना, और तृप्ति प्राप्त उत्तर दाना—यह शास्त्रों के स्वर्णिय नियम ऋषि दया  
नन्द की मान्य थे । केवल ग्रन्थों से ही गाय नहीं थे—यज्ञदान भी मान्य थे ।

वेदों का र्थ छे कई नास्त तक सयुक्त प्रात का भण्ण जारी रहा । शाहजहापुर  
तागाऊ, तागाद, कापुर, इलाहाबाद और मेरठ आदि नगरों में ऋषि धर्म का  
प्रचार करत रहे । जहाँ णायसमाज नहीं बन थे, वहाँ उनही स्थापना कर दते, और  
जहाँ समाज का स्थापना हो चुकी थी, वहाँ उनके पुत्र करने का उद्योग करते थे । धर्म-  
धर्चा का सनारोह भी सभी जगह होता रहा । मेरठ से देहगढ़न और वहाँ से फिर  
मेरठ होत हुए स्वामी जी आगे पहुँचे । आगे सयुक्तप्रात का अन्तिम नगर था, जिस  
में ऋषि दयानन्द ने धर्मप्रचार करके आयसमान कीस्थापना की । आगे से सयुक्तप्रात  
से विदाई लेकर ऋषि गान्धाने की ओर प्रस्थित हुए ।



प्रसिद्ध व्यंग्याताओं के भाषण सुन ए, और तब भी उनकी उन्मत्ता के समय में।  
 रोकित मैं सच्चे दिल से करता हूँ कि जा भाग मुझ पर उम राज के व्यंग्यान ने  
 निया, और जो फनाहत कि मुझे उत्र रा के सो शब्दों में मगलूम हुई, वह अब तक  
 ता दिखाई नहीं दी। भागे की ई का गन। उनगेन आत्मा के स्वरूप पर व्यंग्यान  
 था। इसी प्रकार म महाराज न सत्य के बल पर बालना प्रारम्भ किया। पादरी स्कॉट  
 को छोड़कर पहले तिन के सब अप्रेज सज्जन विद्यमान थे। कोई आत्मी नहीं हिलता  
 था। सब चुनचाप एकाग्र होकर व्यंग्यान सुन रहे थे। मुझे पूरा आश्चर्य तो याद  
 नहीं, यद्यपि उसके असर का अब तक अनुभव करता हूँ, किन्तु बुद्धेक शब्द मुझे  
 माते दम तक याद रहेंगे। ऋषि ने कहा 'साग कहते हैं कि सत्य का प्रगट न करो।  
 कलेक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर घटमन होगा, गवर्नर पीडा दगा। घरे चक्रवर्ती  
 राजा क्यों न अप्रसन्न हो, हम ता सत्य ही रहेंगे।' इसके बाद उम उपनिषद्वाच्य को  
 पढ़कर त्रिमम लिखा है कि 'आत्मा का न कोई इतिहास छेदा कर सनता है, और  
 न उसे भाग जला सकता है, गजती हुई आवाज में बोले "यह शरीर तो अनित्य है।  
 इसकी रक्षा में प्रयत्न होकर अप्रम कर्मा व्यर्थ है। श्मे जिस मनुष्य का जी चाह नष्ट  
 फाते' फिर चागे और अपनी सीदृष्ट आत्मा ती ज्याति डालकर सिंहनाद करते हुए  
 फरमाया 'लेकिन वह सूमा वीर पुरुष मुझे दिखलाओ, जो यह दाग करता है कि वह  
 मेरा आत्मा का नाग कर सकता है। जब तक ऐसा वर इस ससार में दिखाई नहीं  
 देता, मैं यह सोचने के लिए भी तय्यार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊ या नहीं ?'

लम्ब उद्गम के लिये पाठक क्षमा करें। यह ऋषि दयानन्द की व्यंग्यानशक्ति  
 और निर्मयता का एक अच्छा दृष्टान्त है। जिन लोगों को ऋषि के व्याख्यान सुनने का  
 सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन पर व्याख्यानों का बड़ा महम प्रभाव होता था। ऋषि की  
 भाषण शक्ति स्वामाविक थी, उसमें बनापट या यत्नपूर्क भाषण निर्माण का नाम नहीं  
 था। जो कुछ था, हृदय का शब्द था, एक निर्मय आत्मा का उद्गार था। यही कारण  
 था कि ऋषि का भाषण सदा नया, सदा मनोरञ्जक और सदा शिक्षाप्रद रहता था।

ऋषि पूरा तरह निभय थे। उनके जीवन की घटनाय निर्दिष्ट रीति से सिद्ध करती  
 है कि किंसा शास्त्रिक वा मानसिक खतर से धवराना उनके लिये असम्भव था। 'भय'  
 यह शब्द उनके शब्द शास्त्र से निरासित हो गया था।

बाली में ऋषि दयानन्द का पाया स्कॉट से शास्त्रार्थ हुआ था। शास्त्रार्थ बड़ी  
 शांति से हुआ। जनता पर उत्तम प्रभाव पडा। शास्त्रार्थ में आप बन्धु-स्वपदादिता से  
 काम रोते थे, परन्तु कभी प्रस्तुत विषय, सभ्यता की सीमा, और सत्य विद्यता का  
 साथ में द्योतक थे। प्रतिपक्षा के पक्ष का समझना, समझकर उसे ठीक रूप में

साहसिक व्यवहार ने कुदरतन उनकी ओर सर्व साधारण का ध्यान रखा है और उन समाचार पत्रों तथा व्यक्तियों की ओर से, जिनके दुनियावी, हित या निम्न सम्कार पहले से विद्यमान स्थिति के साथ बने हुए हैं, उनका विशेष किया गया है ।

हम नास्तिक अविश्वासी और धर्महीन कहा गया । हम केवल युवक और जोशीले लोगों की ही सहायता नहीं चाहते, बुद्धिमान् और सम्मानित लोगों की सहायता भी चाहते हैं । इस कारण हम आपके चरणों में इस प्रकार आते हैं, जैसा पिता के चरणों में पुत्र आता है, और कहते हैं कि हमारे गुरु महागुरु ! हमारी ओर देखिये, और बताइयें कि हमें क्या करना चाहिये ।

देखिये, कि हम आपकी सेवा में अभिमान से नहीं अपितु नम्रता से आते हैं, और हम आपकी सलाह लेने और दिनाये हुए-मार्ग पर चलकर कर्तव्य पालने के लिये उत्थत ह ।

( हस्ताक्षर ) हैनी अल्काट

प्रेसिडेंट, थ्योमाफिकल सोसाइटी

यह पत्र थ्योमाफिकल सोसाइटी के प्रबन्ध की ओर से था । यह सोसाइटी १८७५ई० के नवम्बर मास का १७ तारीख को अमरीका में स्थापित हुई थी । सोसाइटी की स्थापना मैडेन ब्लेवेट्सकी और काल अल्काट के उद्योग से हुई थी । मैडेन ब्लेवेट्सकी रुम में वैसे एक जर्मन परिवार में उत्पन्न हुई थी । १७ वर्ष की आयु में उसका एक ही ब्लेवेट्सकी के साथ विवाह हुआ । विवाह के तीन महिने पीछे मैडेन ब्लेवेट्सकी पति को छोड़ कर भाग निकली । भाग कर बरसों तक मैडेन ने सन्दिग्धजीवन व्यतीत किया, और अपने पति के जाग्रित रहते ही मैट्रिच नाम के एक पुरुष से सम्बन्ध स्थापित किया । बहुत समय तक अपना नाम बदल कर, और उत्तरी विवाहिता स्त्री की भांति बन कर मैडेन ब्लेवेट्सकी मैट्रिच के साथ रही । दूरी सम्बन्ध में एक लड़का भी उत्पन्न हुआ, जिस के बार में पीछे से मैडेन ने बहुत ही आध्यात्मिक कल्पनाएँ कर के लोगों को समझाने का यत्न किया । मैट्रिच का सापेक्षोद्योग पर मैडेन बहुत समय तक गिर की रातभ्रान्ना कैरा में रही । यहाँ पर मैडेन को घटन में जादूगरों और जोगियों में निचोरे का मौका मिला, जिन से उसे चमत्कारों का रहस्य पता चला, और स्वयं भी बहुत से हस्तपात्र करने लगी । १८७३ में मैडेन गिर से अमरीका में आई, और आध्यात्मिक विद्या के विषय में लिखकर अपना निरादर कर ले लगी । गिर में सीखा हुआ जादू यंत्रिमंडन का बहुत काम आया । *spiritualism* पर लेख लिख कर वह अपना पेट पालना कर लेती थी ।



# बौद्धवां परिच्छेद

ध्यासोफी से सम्बन्ध ।

1892 ई० के जनवरी मास में इति दयानन्द का अमीरा मे प्राप्त हुआ जन्म  
निमित्त पर पत्र —

To the Most Honorable Pandit Dya and Saraswati, Ind.

Venerated Teacher — a Number of Disciple and other stu-  
dents who earnestly seek after spiritual Knowledge, place them-  
selves at your feet and pray you to enlighten them. The boldness  
of their conduct naturally draw upon them public attention and  
reprobation of all influential organs and persons whose worldly  
interests or private prejudices were linked with the established  
order.

We have been called Atheists, infidels and pagans

We need the assistance not only of the young and enthu-  
siastic, but also of the wise and venerated. For this reason we  
come to your feet as Children to a parent and say look at us, our  
teacher teach us what we ought to do. Give us your counsel,  
your aid

See that we approach you not in pride but humility, that  
we are prepared to receive your counsel and do our duty as it  
may be shown to us

(Sd) Henry Olcott,

President of the Theosophical Society,

सेवा म परम सम्मानित पण्डित दयानन्द सरस्वती, भारतवर्ष ।

सम्मानित गुरु ।

आध्यात्मिक विद्या में प्रेम रखनेवाले कुछ अमेरिकी तथा अन्य विद्वान्,  
अपने ना आत्मक चर्चा में उद्यते हैं और प्रकाश की याचना करते हैं । उन लोगों के

१८७७ म मैडम-नेटम्की की प्रसिद्ध पुस्तक Isis unveiled प्रकाशित हुई । पुस्तक अपने टा का अनुवाद में । उसमें प्राचीन धर्मों का समर्थन था, ईसाई पर बहुत आक्षेप थे, और जादू तथा चमत्कार का सम्मर्थन किया गया । उस पुस्तक पर वैज्ञानिक और दार्शनिक लोगों ने आक्षेप भी दृष्टि टाली, और ईसाई विभक्त गये, परन्तु सर्वसाधारण को अनूठेपन न बहुत खेंचा । लोगों को उस पुस्तक-लेखिका की लेखनी शैली अद्भुत मान्य हुई । आशा हुई कि समय और धर्म की नीमत निकल आयेगी, परन्तु देवकी कुछ और ही आभाष था । Isis क छपनेके कुछ समय पीछे मि० वीनमन ने Isis का आलोचना की, जिस म यह मित्र किया कि मैडम की पुस्तक म कुछ भी नवीनता न है, मत्र कुछ लगभग नौ पुस्तकोंमें उद्धृत किया हुआ है । उन्हीं दिनों में मि० होम की Light and Shadows of Spiritualism नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई, जिस म व्यासोफीके लीडरोंकी पोल ग्यालनका यन्त्र किया गया । मि० कोलमैनकी अलोचना और मि० होम क आक्रमणों ने व्यासोफी के नेताओं की स्थिति अमंभय बना दी । ईसाई पहले ही विभक्त हुए थे । Isis की पोल खुल जान से व्यासोफी के सस्थापक बड़ी विपदा में पड़े । मत्र तक कर्नल अल्फाट और मैडम ब्लैवेट्स्की यदि कुछ थे तो Spiritualist थे-और कुछ नहीं थे । न वह हिन्दू थे, न बौद्ध थे । यदि आत्मा उन से बात करती थी तो किंग जान की । अमेरिका म उन की स्थिति बहुत बिगड गई । उन क लिये उस देश में रहना असंभव होगया । यह दशा १८७७ में हुई । मैडम-ब्लैवेट्स्की ने उस समय एक पत्र लिखा, जिस का निम्न लिखित उद्धरण लेखिका का मानसिक दशा को चित्रित करके बघाता है कि युगल को भारत की ओर प्रेरित करने का क्या कारण हुआ, और १८७८ म ऋषि दयानन्द कर्नल अल्फाट की जो चिट्ठी मिली, उस की तह म क्या बात थी ? पत्र म मैडम लिखा है—

“It is for this that I am going for ever to India, and for very shame and vexation I want to go where no one will know my name Home's malignity has ruined me for ever in Europe”

“मैं इसी लिये भारत को जा रही हू । लज्जा और खिन्नतासे तो मग आकर मैं ऐसी जगह जाना चाहती हू जहां मेरा नाम कोई न जानता हो । होम के द्वेष ने योरप में सदा के लिये मेरा नाश कर दिया ।”

इस प्रकार अमेरिका और योरप में बेइज्जत और बदनाम होकर व्यासोफी के सस्थापकों ने भारत के मोले निवासियों का उद्धार करने का निश्चय किया । इतनी प्रस्तुतवना

१ मैडम के पत्रों के उद्धरण जे ए फार्बुस्टर को Modern Religious Movements In India नाम की पुस्तक से किये गये हैं ।

१८७४ के अग्रिम मास में मैगम १ पादरेन थेटन नाम के आर्मीयन विवाह कर लिया था। इस विवाह के समय मैडम ने दो कूठ बोल। उनमें पविर् जीता था, तो भी उनसे अरने को विपत्ति प्रतिद करके दूमेरे पुण्य से निर्याता। यह उस समय ४३ वर्ष का थी परन्तु उमर अपने को ३६ वर्ष का था। यह विवाह भी देर तक स्थिर न रह सका। शीघ्र ही दोनों में मतभेद, और तलाक न अनत्यमूलक सम्बन्ध था निश्चयेत कर दिया।

रूम में बदनाम होकर मैडम ने अमरीका में आश्रम लिया और आश्रमपर लेख लिखकर अपना विवाह जमा रखा। १८७४ में मैडमका धर्मज्ञान से परिचय हुआ। कर्तन अल्फ्रेड परने निराही था, परन्तु उस समय एक पत्र के सहायता के रूप में एक आध्यात्मिक घटना की छाया लगा हुआ था। दोनों प्राथमिक ज्ञान की चर्चा से विवाह के विच्छेदन नाम के नगर में गिने, ओमिग कर टोना ने अनुभव किया एक दूमेरे के लिए आवश्यक है। दोनों ने अतिरिक्त आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा का यत्न करने का शिष्ट किया। दोनों पुस्तकें लिखते और उनकी आय से निर्यात परन्तु फिर भी अमरीका लोग उनके लिए हुए ज्ञान का डाना मुख्यवान् नहीं थे कि उन प्रत्या से दातों का गुनारा मली प्रकार हो सके। १८ जुलाई १८७४ मैडम का एक पत्र है जिस में वह लिखती है—

“Here, you see, is my trouble Tomorrow there will be nothing to eat. Something quite out of the way must be done. It is doubtful if Olcotts ‘Miracle Club’ will help I will try the last.”

“मेरी कठिनाई यह है। कल के खान के लिए कुछ नहीं है। यदि त्रिखुल बनाना चाहिए। यह सन्दिग्ध है कि अल्फ्रेड का चमत्कारसमा जुट सहायता दें में आर्षीर तक लड़गी।”

भोजन की भाँख दिखन था। उस विद्वत को दूर करने के लिए कनल आर्मीयन ‘मिस्टर’ नाम से एक सहायक नियमितता समाजनाई थी, परन्तु फाती अचानक हुई। कुछ पुस्तकें लिखी गई—उनसे अचानक दूर न हुआ। तब ता आर्य इस युगता ने श्वोसाफिकल सासाइटा बनाने का निश्चय किया। १९७४ के सोसाइटीकी स्थापना हुई। कनल प्रयाण करने और मैडम न मन्त्री सम्माला। खनाची का कार्य एक सहायक का सौंपा गया, जिस से सोसाइटीको ल बढ़ा मी निन्तग दूर होगे।

थे। अन्त को, बहुत से पा ज्योद्धा के पीछे, ध्यासोफिस्टल युगल १८७६ क जनपरा माम में बन्दई पहुच गया, और जिमे गुरु माना था, उसक चरणों में भेट रखने की उत्सुकता प्रगट करने लगा।

पहले पहल यह युगल स्वामी जी से सहानुभूत म मिला। उसके पछे कई स्थानों पर स्वामी जी क साथ यह युगल घूमता रहा। स्वामी जी के शिष्य इन अपन को आर्य-समाजी कहने वाले ध्यासोफिस्टों के व्याख्यान करवाने लगे, और उनका आदर सत्कार करने लगे। लगभग एक साल तक यही प्रेमसम्बन्ध स्थापित रहा, और ध्यासोफिस्टों की भक्ति उमड़ती रही। इतना समय भारत में पाव जमान और बहुत से शिष्य इकट्ठे करने के लिये पर्याप्त था। अंग्रेजी पढे लिखे भारतवासी युगल की बातों को सुनने और पसन्द करने लगे। लगभग साल तक प्रेम सम्बन्ध जारी रहा, और इस के पीछे गये रग दिखाई देने लगे।

अंगरे के मुख्य कारण तीन हुए। भारतवर्ष में आकर ध्यासोफिस्ट युगल को ज्ञात हुआ कि निस व्यक्ति को यह गुरु बनाकर आये है, वह गुरु बन कर ही रहेगा, शिष्य नहीं बन सकता। युगल समझता था कि वह प० दयनन्द को अपना वृद्धि का साधन बना सकेगा, परन्तु उसे शीघ्र ही ज्ञात हुआ कि यह भारतीय पण्डित ऐसा भीला नह। कि हथियार बन सके।

दूसरी ओर युगल ने देखा कि भारत वर्ष में अज्ञान और श्रद्धा की मात्रा बहुत अधिक है। कोई भी आदमी आकर गुरु बनना चाह तो बिल्कुल निराश नहीं होगा, कुछ न कुछ शिष्य उसे मिल ही जायगे। ऐसा दशा म ध्यासोफी के सस्थापकों ने यही उत्तम समझा कि अपनी दूकान खुदा ही खड़ी की जाय। आने में पूर्व वह आर्य समाजी थे, आकर शीघ्र ही उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके सिद्धान्त आर्य-समाज की अपेक्षा बौद्धों के साथ अधिक मिलते हैं।

तीसरी शिष्यायत इन्हीं दो शिष्यायता की परिणामरूप थी। ध्यासोफी आर्यसमाज की शाखा थी। जो लोग ध्यासोफी के सभ्य थे, वह वस्तुतः आर्यसमाज के ही सभ्य समझे जा सकते थे। ऐसी दशा म यह सोचना भी अनगत था कि आर्यसमाज के सभासद् ध्यासोफी के सभासद् बाये जाय। जो मूल संस्था का सभ्य है, उस शाखा का सभ्य बनने की क्या आवश्यकता है? परन्तु कर्नल बल्काट तथा मैडम ब्लैवेन्की ने आर्यसमाज के सभासदों को अपने सभासद् बनाना प्रारम्भ किया। इत प्यनदार को स्वामीजी ने अनुचित समझा।

वैयं र पठक भाषक नौरे हि जाकेता के वाचो न जाय 'व्यंग्य' । ऐत  
मत्ता र पा वये त्रिने १ य क... को दे, न म निरूप्य दगाय गोपु १ म  
उन्ना ग्ग पताम्ब ५, १ भात ५, ५ र ५ । ५ ५ । उपाय ५ कि  
निसा शक्तिशाली व्यक्ति का आना लिया जा । । अर्थात् हरिभन्द्र विन्तानधि म दान  
मलकट का श्रुति का परिषय लिखा गे । उव परिषय स लाभ उत्तरर ध्यामोती के  
प्रेमिडेट न श्रुति श्यान्द को कृतीना भा पर गि न जायग कि ।

इस परिच्छेद के प्रारम्भ में आ पत्र दिया गया है, उक्त पत्रे ध्यामोती को  
से हरिभन्द्र विन्तानधि द्वारा स्वामी जी क पास सम्म पत्र आत २६ । २१ म  
१८७८ का पत्र म मल ५ स्वाय लिखते है —

“जय मे यह श्राग देता है कि मना सागाड्टी ५० श्यान्द सरस्वती की श्री  
मेरी पधशंका म आगममाज की शास्य शिपात की जाय, तब म उस बुद्धिन्  
और पवित्र गुरुय को शिष्य और मार्गशक गानककाय गंका अनुमय करता है।’  
२२ मई सा १८७८ के पत्र म ध्यामोकिरता सोसाइटी के गिर्वाह सेक्रेटरी अगम्य  
गुन्डम लिखते हैं —

“आयसमाज के मुगिया, के नाम

आपको आदरपूर्वक सूचना दी जाती है कि २२ मई १८७८ को न्यू  
यार्क में थ्योसाफिकल सोसाइटी की कौंसिल का जो अधिवेशन प्रजीडण्ट की अध्यक्षता  
में हुआ था, उमम याइस प्रेजीडण्ट ए विल्डर के प्रस्ताव और फारस्पाडिंग सेक्रेटरी  
एच पी नौवेस्की के अनुमोदन पर गवसम्मति से यह निश्चय किया गया कि  
सोसाइटी मिल जाने के प्रस्ताव को स्वकार व ती है और यह भा स्वीकार करता है कि  
इस सामाइटी का नाम ‘द्वि ध्यामाकिरल सामाइटी आय दि आयसमाज धान इयिडया  
रय दिया जाय ।

निश्चय हुआ कि थ्योसाफिकल सामाइटी अपन और योरप तथा धामरीहा म दि  
रमान अपना शाराओ क लिय आयसमाज के सस्थापक स्वामा दानन्द सरस्वती को  
नियमातुसर पधशक या मुखिया धमाज करे ।’

इस प्रकार थ्यासाफिकल सोसाइटी ने आयसमाज से उम समय स्पष्ट स्वयि  
क्रिया, त्रिप साय धमरीहा के शिवासी सोसाइटी के सथापकों को यह पता नहीं था कि  
‘कल का भोवा कहा ने गिनेगा’ । न्हा वद वृष उदगाय, और ता थे । ऊपर दि  
हुए पत्रों से स्पष्ट होता है कि उस समय सामाइटी के नेता स्वामी जी को गुरु मानने में  
अपना सीमाय समझते थे, और तब तब से आयसमाज की सस्था म आत की तैया

दूसरी घटना लाहौर में हुई । १८८३ के अग्रिम मान भयस्का के महात्मना का एक चेला लाहौर में पहुँचा । मैटम खैरदन्दी के शिष्य न बडे जात से उनका दोल बनाया और यह घोषणा कर दी कि यह चला चमत्कार दिव्यायोग । वह अपनी उगनी आगे करेगा, पहले तो उगती को पाई काट ही गी उरगा, यदि उट भी सके तो वह फटपट जुड जायगी । भगी सभा में चमत्कार का घोषणा दाई । पहलें तो किमी हिन्दू का हृदय ऐस दटोय कार्य क लिये छप्यार न हुआ, परन्तु जब उहुन देर होगई, और लोगों के दयाभाव का अभिप्राय गह निकाला जात लगा कि चेले की शक्ति से किमी का हाथ नहीं उठता, तब एक सिरप हिम्मत कर क उगला काट दी । वेचारा चेला चक्ष्म में आगया । उगली का जुटना ता क्या था, वेचारा कइ दिनों तक दु ख भोगता, और महात्मना का नाम का जाप करता रहा ।

ऐसी घटनाओं को मुन कर आयसमाज का सम्पापक ऋषि वैसे चुन रह सकता था । वह दम्भ और धोखे का शय था, यह धर्म म सुलनामा करने पर विश्वास नहीं रखता था । इधर स्वामी जी को ध्यासोफी के सस्थापकों के असत्य व्यवहार पर घृणा होने लगी, उधर मूर्ख जनता की जाल में फमाने का सुला अचर देखकर युगल भा स्वामी जी की शिष्यता से इन्कार करने का उपाय सोचने लगा ।

कुछ दिनों तक पत्र व्यवहार जारी रह । मंडम ब्लैनेट्स्की और कनल अन्काट का यत्न यह रहा कि किमी प्रकार आयसमाज के सभामनों का व्यासोफी के चुगल में फसाया जाय । एक ओर ध्यासोफी का ओर से वता ईश्वर से इन्कार, दूसरी ओर चमत्कारों का दम्भ ऋषि ने आवश्यक समझा कि आयपुरणों का सचेन कर दिया जाय ।

असोज वदी चतुर्शी सम्बत् १९३७ को मेरठ के आयसमाज का दूसरा वार्षिकोत्सव था । इस उत्सव के अवसर पर श्री स्वामी जी के दो व्याख्यान हुए । इन व्याख्यानों में आप ने उन कारखों पर प्रकाश डाला, जिनसे आयसमाज व्यासोफी में जुदा होने पर जागिन हुआ, और यह भा घोषणा दी कि किसी आयसमाजी को ध्यासोफी का सम्भव न बनना चाहिए । दोनोंमें कई मौलिक भेद उत्पन्न होगये थे । ( १ ) ध्यासोफिन्ट सृष्टिवता ईश्वर को नहीं मानते थे । ( २ ) वह अपन को बौद्ध कहते थे ( ३ ) वह हिमालयवर्ती किन्हीं कल्पित महात्माओं के होन, और उनके गुप्त सन्देशों पर विश्वास रखते थे ( ४ ) यह सिद्धियों के नाम पर चमत्कारों को मानते और उनका दावा भी करते थे [ ५ ] ध्यासोफी में ईसाई मुसलमान बौद्ध हिन्दू सब अपने एक दूसरे के विरुद्ध सिद्धान्तों को मानते हुए भी प्रसिष्ट हो सक्ने थे । इस प्रकार ध्यासोफी आर्य समाज से कोसों दूर चली गई थी । अविद्यानन्द की आग से यह घोषणा आवश्यक हागई थी, अन्यथा आर्यसमाज क नारा का भारा भय था । ध्यासोफी म कइ ईसाई भा शा-

यत्र तेन जले तद् म धीं । वह ध्यासोक्ती के लाडल, जिन्हें अपने मिद्वान्म आयमगज के ऐन अनुकम गिय ई देने थे, गाप्र ही सत्तर के काा ईश्वर से इन्कार कर बीदों में नान लिपान लग । आत्मा मं मेटम लविट्स्की के अन्दर बतल किंग जाज का आत्मा प्रवेश काला जो, पान्नु भारत म आते ही डिमालग निरामी गहामा, और उन क प्रतिनिधि मद्राल्ना वूडुना स मडन का पविचर हागया, और हिमालय से साधे स दश पदुचा लगे ।

सत्र से बडा कारण, निम मे मतमेद पैग होगया, यह था कि ध्यासोक्ती के सम्यपक चमत्कार का अपने घम का आयश्यक सिद्धान्त मानन और उद्गोपिा करने लगे । चमत्कारों का यह यागसिद्धि के नाम से पुकारते थे, परन्तु योग क दिना ही योगसिद्धि का दावा करते थे । सिद्धिया भी विचित्र थीं । रिस्ती की गुम हुई वस्तु का पाा दे दिया, रिस्ती के गिल की ज्ञात वृष्णने की अटकल लगा दी । ऐसे चमत्कार थे, जिन्हें दिना कर व्यमाक्ती लागों के हृदयों म योग क प्रति श्रद्धा का सचार करना चाहती थी । ध्यासोक्ती के उम समय क चमत्कारों क दो दृष्टान्त नीच दिये जाते है, उन पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हाजायगा कि आयममान क सस्थापक क विचार ध्यासोक्ती के विचारों से क्यों नहीं मिल सकते थे ?

मेडम ब्लैवेट्स्की शिमले में थीं । प्रसिद्ध मि० ए० ओ० ह्यम के घर पर कुछ लोगों का निमरण था । निमरण में मेडम ब्लैवेट्स्की भी शामिल थीं । भोजन के पाछे यह बात उठा कि मेडम अपना कोई आत्मात्मिक चमत्कार दिखावे । मेडम तय्यार हो-गई । घर वालों से उन्हा न पूछा कि 'क्या आप ल गो का कोई वस्तु गुम हुई है' उत्तर से पता चला कि कुछ रोज हुए, मि० ह्यम क घर से एक आभूषण गुम हुआ था । मेडम ने कुछ देर तक ध्यान कर के बाग का व स्थान बता दिया, जहा गुम हुई वस्तु गडी गी । वस्तु मिल गई, और चमत्कार की घूम गिगिगन्तर में फेलगई ।

कुछ दिन पीछे इगलिशमैन, बम्बेगनट, टार्मस आन इगिटया, और सिविल मिलटरी गजट मे चिक्षिया प्रनाशित हुई, जिन से रहस्य का उद्मेद होगया । एक अग्रज नौजवान शिमले से बम्बई गया, और वहा वह मेडम म मिता, शिमले म वह मि० ह्यम के यहा बहुत भाया जाया करता ग । बम्बई के मि० हाम्स्की सीग्वार्ड ने गवाही दी कि जैमा गहना चमत्कार से मिचा है, ठीक वैसे ही गहन की मेडम ब्लैवेट्स्की ने उम से मरम्मत करवाई था । रहस्य का खोल कर ऐतिहासिक घटना बना देना कुछ फठिन नही है । यह गहना मि० ह्यम क घर से उग्याया गया । बम्बई में उस की मरम्मत करवा कर मेडम अपने माप शिमले लेगई और चमत्कार दिया कर ध्यासोक्ती का सत्पना सिद्ध कर दी ।

हमारे नियमों में आर्यसमाज से इतनी प्रतिकूलता है कि हम प्रत्येक सम्य के धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं । प्रत्येक मनाप्रलम्बी को चाहे वह आर्यसमाज ही हो, ईसाई हो अथवा मूर्तिपूजक ही, हम सभा में मिला लेते हैं ।

इसी हेतु से मैंने आपका और दा एक अन्य सज्जनों को सभा में भरती होने की सम्मति दी थी ।

रही यह बात कि आर्य सामाजिक हम में मिलें या न मिलें, इसकी हम परवाह नहीं है । इसमें उन्हीं की और कदाचित् समाजों की हानि है ।

पुलिस के सबसे बड़े अधिकारी हजरसन महाशय सभा में सम्मिलित हुए हैं । इससे हमारा अभीष्ट सन्धा सिद्ध होगया । हमारी सभा में सम्मिलित होते उन्होंने कहा कि मे इसमें इसलिये मिलता हू कि इससे बडे २ लाख पड़ुचे है । आप और अल्काट ने १८ मास में वह बात प्राप्त करली है जो हम अंग्रेज बहुत वर्षों में भी नहीं कर पाये । उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दुस्तानियों और अंग्रेजों के बीच जो खाई है, उसे आप भर रह है । आपके कारण हम उनकी अधिक प्रतिष्ठा करने लगे है और वे हमसे घृणा छोड रहे है । वे हमारे काम की प्रतिष्ठा करते और उसे श्रेष्ठ समझते हैं । मुझे आशा है कि जैसे उनके विचार हैं, वे वैसा ही कर दिखायगे । परन्तु जब स्वामी जी का प्रसंग चला तो उन्होंने भी यह कहा कि ध्यासोफी के समान स्वामी जी की सम्मति नहीं है । उनके विचार अनियोजक और उदार नहीं दीखते । आर्यसमाज ईश्वर को हता कर्ता मानने वालों का एक जत्था है । ऐसी दशा में हम उनको भाइयों के सदृश क्यों मानें इत्यादि”

स्वामीजी ने इस पत्र का विस्तृत उत्तर भेजा । उस उत्तर के भी कुछ भाग बढ़ा उद्धृत किये जाते हैं—

“

प्रथम आप लोगों ने जैसा लिखा था, जैसा समागम में प्रथम विहित किया था, उसके अनुसार अब आपका वताव कहा है ?

वे पत्र छाप कर दिए गये है जिनमें आपने लिखा था कि हम सस्कृत अध्ययन करेंगे, और अपनी सभा का समाज की शाखा बना देंगे, जो पत्र मैंने आप के पास भेजे थे उसी फल भी मेरे पास है । देखिये, पाडे दिन हुए जब आप ने मेरठ में आर्य समाज और धियामोक्षी सभा के नियम में आघात हुआ थी, उन समय मैंने सभके



मिला था, यह था। उरों में जोक मन्त्रा, भारी भी थे। आयसमाज के सम्बन्ध में यह है कि राजा-राजिनों का सहायकत्व का प्रवर्धन देकर ही आयसमाज को पुनर्जाय शाय। परन्तु यह कथित भा विज्ञाना माविता हुआ।

मैठ में श्रुति-दण्ड का का दृष्ट घोरण से बनें अन्नाट और मैडम जैतदुम्भी के दण्डित कार्यका वा मा। राय पदुया। यह दित में सोचे दैठ ये कि प्रव माय हा मर आयसमाज हमार पादू में आजयो, और ध्य-सोनी, जो प्रारम्भ में आयसमाज का शत्या यत भी, उमें र्हा जायरी। श्रुति क व्या-पान ३ इम मैठ मन्त्रु का तोड़ दिया। उम समय मदन-पैम्बुर्नी शिवले पर था। वहाँ उन्हें स्वामी का की धारणा का समाचार मिला। यह बहुत छटपटई और रोठ न मरू छगलाल जी के नाम उन्ही पर पन्नि। भेज। श्रुति बहुत स्थी है, इस कारण उमक बुद्ध अजयक उदय्य ही यग दिये जाते है। चिन्ता अयेजी में थी, यहा उमका अनुवाद दिया गया है।

“ मैठ आयसमाज का वार्तिकोत्तर अभी मन्त्रा गया है। उसमें अ-न्याय आयसमाज के समासद् सम्मिलित थे। उस समय में स्वामी जी ने अपने व्या-पान में सबक सामने ये प्रिजित उचन कहे कि 'जब किसी अन्य सभा समाज के साथ आय सभाजिनों को मन्त्रा सभा में भरती होवे क तिर प्रेरणा करें तो उन्हें यह उत्तर देना चाहिये कि यदि आपनों सभा क नियम और उदय्य आयसमाज से भिन्ने है तो उममें सम्मिलित होने से कोई लाभ नहीं है। यदि वे कहें कि हमारे नियम आय सभा के नियमों से भिन्ने हैं तो आयसमाजिनों को उत्तर देना चाहिए कि आयसमाज के नियम अविद्यत है। जिस सभा के नियम व्यवहित हैं, उसमें मिल जाने का हमें आवश्यका नहीं है।

यहाँ में रोम का अभाविशीन पोप इमते अग्रि और क्या कह सफता है। स्वामी जी मर्तिन ब्रायणों के दावों क विरोध हैं। उनक कहन का यह तात्पर्य कदापि न होगा।

उन्होंने यह भी कहा ग कि "अन्यदेशियों के समाज में वैसा भिन्न भाव और स्नेह नहीं हो सकता, जैसा कि एक ही मत और देश के साथ समाजों में है"।

हमने आपके विना किसी भी आयसमाज को अपनी सभा में मितान का यत्न नहीं किया। हा मुम्बई, लाहौर और दूसरे जगहों के आयसमाजी हमारी सभा के समासद् हैं। परन्तु उनकी सम्मिलित होने के लिये हमन कभी नहीं कहा।

सकता । यदि यह कहो की हमारा धर्म किसी से विरुद्ध नहीं है तो उस में कोई काट्टे को मिलेगा ?

आप ईश्वर को हर्ता-कर्ता नहीं मानती यह इसी १६३७ के भाद्रपद मास की बात है । इस विषय में आपने पहले कुछ भी नहीं कहा । हां, प्रमोददास मित्र और डा० लांगरस ने मुझ से काशी में इसकी चर्चा की थी । प्रमोददास को मैंने कहा कि आप मैट्टव का आशय नहीं समझे होंगे । मैंने दामोदरद्वारा आप से पुछाया तो उसने कहा कि ये ईश्वर को मानती है । क्या उक्तवार्ता अमत्य है ?

मैं और सभी आर्य-सज्जन सदा से यही मानते आये हैं कि सामान्य-तया आर्यात् इस्लाम, और अमीका आदि सकल भूमण्डल के मनुष्य भाई हैं, परस्पर मित्र है और समान है । पर मानते हैं धार्मिक व्यवहारों के साथ, न कि अमत्य और अभर्म के साथ ।

यह अमेज आर्यों को चाहे जैसा माने । कोई राजाजिदारी हो अथवा व्याजहारिक हो । मुझ को भी चाहे अपनी समझ के अनुसार कथे मानें । परन्तु मैं तो सब मनुष्यों के साथ सुदृढान से वर्तना हूँ और और बनना चाहा हूँ । इन लोगों का यह कहना कि हम इसका कोई छद्म हतु नहीं देखते कि स्वामी जी के अनन्त अन्व आर्यसमाजियों से भी वैसा ही वर्तें, तब तक है जब तक वे आर्यवर्तिय अर्यों का पुर इतिहास आचार नाति विद्या पुरपार्थ आदि उत्तम गुणों को नहा जानते, वेदादि शास्त्रों के सचे अर्थ को नहीं समझते । जब उन को ऊपर की बातों का ज्ञान हो जायगा, तो उनका अन् अवरय दूर होपायगा ।

आप को स्मरण होमा कि काशी की चिट्ठी के उत्तर में आपन मुझे लिखा था कि यदि आप मा वेदों को छोड दे तो भी हम नहीं छोडेंगे । आपकी यह बात धन्यवाद और प्रशंसा के योग्य है । यदि सभी योरोपियन इस उत्तम बात में सहमत होजाय तो कैसा आनन्द हो । और यदि व लोग इस सिद्धान्त को न भी माने तो हम आर्यों और आयममाजों का कोई हानि नहीं हो सयती । हम तो सृष्टि के आदि से वेदों को मानते चले आये है । क्या हुआ जो थोडे समय से, अज्ञानवश, कुछ धार्मिक वेद-विरुद्ध चलने लग गए है ।

इस अवस्था में जिसका जी चाहे आर्य समाज में मिले । उनके न मिलने से हमारी कुछ हानि भी नहीं हो सयती । हां, उनकी हानि अवरय है । हम तो सब की उन्नति में अपनी उन्नति, फरेना इष्ट मानते है । हमारी कायना भी यहा है”

सामने क्या आपसे नहीं कहा था, कि समाज के विषयों से सभा के नियमों में कुछ भी विशेषता नहीं है। यह बात मैंने बम्बई में भी पत्र द्वारा सूचित की थी। वैसे ही मैं अब भी मानता हूँ और कहता हूँ कि आयसमाजियों की धर्मादिक विषयों के लिये सभा में मित्रता उचित नहीं है।

अब विचारणीय विषय यह है कि ऐसी दशा में धियाराफी यात्रों को आयसमाज में मिलना चाहिये अथवा आयसमाजियों को उस सभा में। देखिये, मैंने अथवा किसी और सभासद ने आज्ञाकारिणी भी धियाराफी को आयसमाज का सभासद बनाने का यत्न नहीं किया। आप अपने आत्मा में विचारिये कि आपन क्या किया, और क्या कर रहा है? आपन दितने ही आयसमाजियों को अपनी सभा में भर्ती होने के लिये प्रेरणा की। कई सज्जनों से सभासद बनने का दण्ड रुपये चन्दा भी लिया।

अन्यदेशियों के समाज में मित्रता और स्नेह वैसे कभी नहीं हो सकता, जैसा कि स्वदेशियों के समाज में होता है यह बात मैंने उस समय कही थी, अब कहता हूँ, और अब भी कहूँगा। परन्तु ऊपर का बात मैं जिन प्रसंग पर कही थी वह यह है कि 'असिद्ध बहिष्कान्तगणे' अर्थात् जिनका देश एक है, भाषा एक है, जन्म और संस्था एक है, जिनके विवाहादि सम्बन्ध परस्पर होते हैं, उनको परस्पर जितना लाभ होता है, उतनी जितनी परस्पर प्रति होती है, उतना लाभ और उन्नति भिन्न देशवासियों की भिन्न देशवासियों से नहीं हो सकती। देखिये केवल भाषा का ही भेद होने पर मुसलमानी और यूरोपीय महाशयों को परस्पर उपकार करने में कितनी कठिनाई होती है।

आप जो लिखती हो कि 'आपके बिना बम्बई लाहौर और दूरे नगरों के आयसमाजिक हमारा सभा में सम्मिलित हैं। परन्तु हमने उम्को भरती होने के लिए कभी नहीं कहा' यह सत्य नहीं है। आपने बम्बई में श्री समरदान जी आदि को, और प्रयाग में पण्डित सुन्दरलाल जी आदि मन्त्रियों को सभा में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। इसका साक्ष्य मैं ही हूँ। मैं जब तक न सुनता, तो इसका पता मुझे कैसे हो सकता था। जैसे मरा नाम सभा के सभासदों में लिखनी हो, वैसा अन्यत्र भी आपने किया होगा। यह बात निःसन्देह है।

इससे मैं आप से पूछता हूँ कि आप का धर्म क्या है? यदि आप कहें कि हमारा धर्म अमुक धर्म है तो निन्द्यधर्मात्ता मनुष्य आपकी सभा में नहीं मिल

सकता । यदि यह कदो की हमारा घम किसी से विरुद्ध नहीं है तो उस में कोई काटे को मिलेगा ?

आप ईश्वर को हता कर्ता नहीं मानतीं यह इसी १६३७ के भाद्रपद मास की बात है । इस विषय में आपने पहले कुछ भी नहीं कहा । हा, प्रमोददास मित्र और डा० लाजरस ने मुझ से काशी में इसकी चर्चा की थी । प्रमोददास को मैंने कहा कि आप मैट्रम का आशय नहीं समझे होंगे । मैंने दामोदरद्वारा आप से पुर्छाया तो उसने कहा कि वे ईश्वर को मानती है । क्या उक्तवार्ता असत्य है ?

मैं और सभी आर्य-सज्जन सदा से यही मानते आये हैं कि सामान्य-तया आर्यावर्त एस्लेण्ड, और अमीका आदि सबल भूमयदल के मनुष्य भाई हैं, परस्पर मित्र हैं और समान हैं । पर मानते हैं धार्मिक व्यवहारों के साध, न कि अमत्य और अभर्न के साध ।

यहां अंग्रेज आर्यों को चाहे जैसा माने । कोई राज्याधिकारी ही अथवा अर्थ-दा-रिक्त हों । मुझ को भी चाहे अपनी समझ के अनुसार यथेष्ट मानें । परंतु मैं तो सब मनुष्यों के साथ सुदृढ़ता से वतना हूँ और और दनता आया हूँ । इन लोगों का यह कहना कि हम इसका कोई एतद हेतु नहीं देखते कि स्वामी जी के अनन्तर अन्य आर्यसमाजियों से भी वैसा ही वर्त, तब तक है जब तक वे आपारर्थाप आर्यों व, पूर्व इतिहास आचार नीति विद्या पुराण आदि उन्नत गुणों को नहीं जानते, वेदादि शास्त्रों के सचे अर्थ को नहीं समझते । जब उन को ऊपर की बातों का ज्ञान हो जायगा, तो उनका मन अवश्य दूर होजायगा ।

आप को स्मरण होमा कि काशी की चिट्ठी के उत्तर में आपने मुझे लिखा था कि यदि आप भी वेदों को छोड़ दें तो भा हम नहीं छोड़ेंगे । आपकी यह धान धन्यवाद और प्रशंसा के योग्य है । यदि सभी योरापिया इस उत्तम बात में सहमत होजाय तो कैसा आनन्द हो । और यदि वे लोग इस सिद्धान्त को न भी माने तो हम आर्यों और आर्यसमाजों की कोई हानि नहीं हो सकती । हम तो सृष्टि के आदि में वेदों को मानते चले आये हैं । क्या हुआ जो थोड़े समय से, अज्ञानता, कुछ धार्मिक गण्ड-विरुद्ध चलने लग गए हैं ।

हम अवरस में जिमरा जी चाहें आप समाज में गिने । उनके न गिने स हानी कुछ हानि भी नहीं हो सकती । हा, उन्नी हानि अवरस है । हम या सब की उन्नति में अपना उन्नति करता इष्ट मानते हैं । हमारी वात्सल्य भी प.। है ।

इस पत्र व्यवहार से दो बातें बर्त साबित हो जाती हैं। ध्यासोकी व. ध्यासक भारत के शोले हिन्दू और मुसलमानों का रक्षण पत्र लिखना ही एक ही उद्देश्य है। यह तो, जो दिव्य स्वर रचना जो कचारे में बैठ कर धाम का अध्ययन करने भाये थ, स्वयं गुरु और योगी वा बैठे थे, जो सोसाइटी आर्यसमाज की शान्ति बना में अपना सौभाग्य साधता थी। यह आर्यसमाजियों को करने में मन्मथित होने का निग्रह दे रही थी। यह विचार और शिष्यभार, गुरु और गुरुभार में परिणत हो गये थे। धर्म के बेदानुव्या विद्यार्थी, आज सर्वमात्रा आचार्य बन रहे थे।

मेरठ के व्याख्या और ऊपर उद्धृत शिष्य पत्र ने आर्यसमाज और ध्यासोकी का सम्बन्ध तोड़ दिया। १८८२ ई० के गर्द मास में आर्य समाज के सार्वभौमिक पत्रों में हम यह घोषणा पाते हैं कि 'आर्यसमाज और ध्यासोकी का सम्बन्ध टूट गया है'

आर्यसमाज से टूट कर ध्यासोकी क्या बनी, और विधर बनी, इसे पता दिगता अभीष्ट नहीं है। फल यह दर्शन के लिए कि ध्यासोकी के सम्पत्तियों की तद में कौन सा कारण था, हम उस पत्रको कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं, जो १८९२ में ध्यासोकी से व्यापक देते हुए, सोसायटी के पुगने सबक मि० थी० पी०वाडिया ने लिखी थी। आपने लिखा था—

*It (the Theosophical society) is no more a society of seekers of the wisdom but an organisation where many believe in the few and blind following has come to prevail, where schemes pass for realities and the credulity of superstition gains encouragement and where the noble ideals of Theosophical Ethics are exploited and dragged in the mire of Psychism and immorality*

*Time, energy and money spent in the T S have brought the further knowledge that the existing conditions in the T S are so deep rooted and so wide spread that the disease is incurable etc*

ध्यासोकीकल सोसाइटी सचार्ई के पहिचानने का यत्न करने वालों का एक सम्था नहीं रही, यह एक ऐसी सम्था बन गई है जहा थोड़े व्यक्तियों पर अधिक व्यक्तियों का प्रभाव है, जहा अन्धपरम्परा का राज्य है, और जहा ध्यासोकीकल आचार शास्त्र के उत्तम आदर्श भूतवाद और अनाचार के कीचड़ में घसीट जाते हैं।

ध्यासोकीकल सोसाइटी पर नितना समय शक्ति और धन व्यय किया जाता है, उरोंने

यह सावित कर लिया है कि सोसाइटी की कुराइया इतनी गहराई तक पहुँची है, और इतनी विस्तृत है कि उनका इलाज करना कठिन है' इत्यादि

मि० वाडिया सोसाइटी के स्तम्भों में से एक थे । उन्होंने सोसाइटी के बारे में अन्तिम सम्मति दी है, यह सिद्ध करती है कि आर्यसमाज से सोसाइटी का सम्बन्ध तोड़ने में ऋषि दयानन्द ने कोई भूल नहीं की । प्रारम्भिक दशा की ही कमजोरियाँ जो पीछे से ऐसा भयंकर रूप धारण करके मि० वाडिया जैसे भक्त के डरने का कारण बनी ।



# पन्द्रहवां परिच्छेद

## राजपूताने में कार्य

राजपूताने से स्वामी जी की बराबर निमन्त्रण आरह थे। निकाल से उनका विचार था कि राजपूताने के राजाओं का सुधार किया जाय। कई भयसंग पर ऋषि ने यह विचार प्रगट किया था कि भारत का भला सभी होगा, जब रजवाड़े का उद्धार होगा। यदि राजा लोग सुधर जाय, तो प्रजा के सुधरने में क्या विलम्ब हो सकता है? यह विश्वास ऋषि के हृदय में घर कर गया था। यही कारण था कि थोड़ी दूर के लिये अपने दिस्तूत का आक्षेप मयुक्त प्राप्त और पञ्जाब की ओर पीठ करके ऋषि राजपूताने की ओर रवाना हुए।

४ मई १८८१ के दिन ऋषि दयानन्द राजपूताने के इत्यस्थानीय अजमेर शहर में पहुँचे, और धर्म का प्रचार आरम्भ किया। लगभग डेढ़ मास तक ऋषि का सिंहा-नाद अजमेर मिवासियों के हृदयों को धर्म के मन्दिर में निमन्त्रण देता रहा। जून के अन्त में ऋषि ने अजमेर से मसूदा रयासत की ओर प्रस्थान किया। मसूदा गोरश ने स्वामी जी का बड़ी भक्ति से स्वागत किया। धर्मप्रचार का अटूट काम जारी रहा। इस रयासत में बहुत से हिन्दू ऐसे थे, जो मुसलमानों के राज्य समय में मुसलमान हुए राजपूतों को लटकिया देने में कुछ भी सकोच नहीं करते थे। स्वामी जी ने उन लोगों को समझाया कि जिनका धर्म मिला है, उन्हें कन्या देकर अपनी कन्याओंको अर्पित करना कभी न्याय नहीं है।

मसूदा से ऋषि दयानन्द रायपुर रयानने में पहुँचे। रायपुर के ठाकुर ने बड़ा सत्कार किया और धर्मप्रचार का प्रबन्ध कर दिया। यहाँ के मन्त्री शैव श्लाही बख्श नाम के एक मुसलमान थे, इस कारण रयासत में मुसलमानों का काफी जोर था। यहाँ पर काजी जी से खूब बहस रही, जिसका परिणाम अच्छा हुआ। रायपुर से आसन उठाकर स्वामी जी व्याण और बड़ोदा होते हुए २६ अक्टूबर १८८१ को आर्य-घानि के केन्द्र, राजपूताने के शिवागि, चित्तौडगढ़ में विराजमान हुए।

चित्तौडगढ़ में उस समय बड़ी घूमवाम थी। लार्ड रिपन ने चित्तौड में एक बड़ा बखार बुलवाया था। राजा मद्दागजा इच्छे हुए थे, और सत्संग का बड़ा मुन्डर अजमेर

था। स्वामी जी का अतिथ्य उत्तमपुर रयासत की ओर से था, रियासत के राजा विद्यामलदाम जी स्वामी जी के भक्त थे, उन्होंने ठहरने का जग विव्रम का पूरा प्रबन्ध कर रखा था। इस राजपूतों के सघ में स्वामी जी को प्रनाप और दुर्गादाम की मन्ता की रजा देवने का अवसर मिला। कहा वह स्वाधान शोग-कहा यह राज्य और इन्द्रियों का वैधुए। ऋषि ने राजपूताने की दशा को रोते हुए हृदय से देखा। जा लाग वीरता के आदश, मानके पुजारी, और स्वाधीनता के पुल्ले थे, वह ऋषि दयानन्द को विनास के दास, अफीम के पुजारी और अंग्रेजी सरकार के वैधुए दिखाई गिये। ऋषि के शिष्य स्वामी आत्मानन्द जी ने एक पत्रना बतार्ई है। अपने शिष्यों के साथ ऋषि एक दिन चित्तौडगढ का किला देखने गये। जिन ऋषि दयानन्द की छाखों में पिता माता और पहिनों का प्रियोग तारी न ला सका, चित्तौडगढ की दशा देख कर उम की छाखों से मर मर आधु बहन लागे। ऋषि ने एक ठडी सास लेकर निम्न लिखित भाशयके वाक्य कहे। “ब्रह्मचर्य का नाश होने से भारतवर्ष का नाश हुआ है, और ब्रह्मचर्य का उद्धार करन से ही फिर दश का उद्धार हो सकेगा। आत्मानन्द ! हम चित्तौडगढ में गुरुकुल बनाना चाहते हैं।”

स्वामी जी के व्याख्यानों में कई राजा नियमपूर्वक आया करते थे। शाहपुरा रयासत के नाहरासिंह जी स्वामी जी के भक्तों में से थे। वह सत्सग म प्राय रोज आते थे। महाराजा सज्जनसिंह अब तक स्वामी जीके दर्शनों को नहीं आये थे। एक दिन उपदेश में एक भक्तमूर्ति राजपूत पधारे। सब राजपूतों ने उन्हें बड़ा आदर दिया। व्याख्यान के अन्त में ऋषि ने शाहपुराधीश से कहा कि ‘आपका (अभ्यागत महोदय का) पहले तो कभी साक्षात्कार नहीं हुआ दीखता। आप की शोभा बखन कीजिए’ शाहपुराधीश ने उत्तर दिया कि “आप महाराजा श्री सज्जनसिंह जी हैं” इस प्रकार इन दो महान् व्यक्तियों का परिचय हुआ। महाराजा सज्जनसिंह यों तो अन्य राजपूत राजाओं की भानी ही पराधीन थे, परन्तु पराधीनता में भी उनके अन्दर एक विशेष महानुभावता पथी जाती थी। उनका हृदय विशाल था, विचार उदार थे, चरित में स्वाधीनता की बू था। उस समय से ऋषि की मृत्यु पर्यन्त दोनों महानुभावों का गुरुशिष्यभाव अटूट और सन्निहित रहा।

चित्तौडगढ की एक और घटना भी स्मरणीय है। ऋषि दयानन्द अपने कुछ भक्तों के साथ घूमने जा रह थे, रास्ते में एक बृहस्पति के नीचे दो तीर्थमूर्तियां थीं। जब पास से गुजरे तो ऋषि ने अपना सिर झुका दिया। इस पर एक शिष्य ने कहा कि ‘महाराज ! चाहे देवमूर्ति का कितना खण्डन कीजिए, पर उसका ऐसा प्रभाव है कि पाम जाकर सिर झुक ही जाता है’ इस पर ऋषि खडे हो गये। पाम



ही छोटे २ बालक खेल रहे थे। उन में एक चार वर्ष की नया बालिका भी थी। श्रुति न उधर इशारा करते हुए कहा कि 'देखते नहीं हो, यह मातृशक्ति है, जिम्मे इन सब को जन्म प्रदान किया है' सब शिष्यों पर इस वाक्य का अपूर्व प्रभाव हुआ। ऋषि के मन में स्त्रीजाति के प्रति वैसा घृणा का भाव नहीं था, जैसा प्रायः सन्यसी या त्रिरत्न पिखाया करते हैं। जो मनुष्य एक चार वर्ष की बालिका में माता की भावना कर सकता है, वह स्त्रीजाति के प्रति वैसी प्रतिष्ठा का भाव रखता होगा, और उसका हृदय किन्ना पवित्र होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

१८८२ के प्रारम्भ में स्वामी जी की बम्बई आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर जाना था। जब विदा होने का समय आया तो महाराणा सज्जनसिंह ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि 'भगवन्' उदयपुर में यथा सम्भव शीघ्र ही दर्शन दीजिएगा' ऋषि ने वादा भी कर लिया।

बम्बई का वार्षिकोत्सव बड़ी घूमगाम से हुआ। यहाँ की दो घटनायें दर्शान योग्य हैं। प्रथम यह कि यहाँ स्वामी जी ने ध्योसाफिकन सोसाइटी के आर्यसमाज से पृथक् होने की अन्तिम सूचना दी। दूसरी यह कि बम्बई आर्यसमाज ने अपने पहले से निश्चित किये विस्तृत नियमों को छोड़ कर लाहौर आर्यसमाज के स्वीकृत नियमों को स्वीकार कर लिया।

यहाँ इन्हीं दिनों पादरी यूमुफ्र ने एक व्याख्यान दिया, जिस में यह सिद्ध करने का यत्न किया कि ईसाई धर्म ही ईश्वरीय है, शेष सब धर्म अनीश्वरीय हैं। स्वामी जी ने इस व्याख्यान के उत्तर में पादरी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। पादरी महाशय शास्त्रार्थ के लिए तय्यार न हुए। स्वामी जी ने सावजनिक व्याख्यान देकर पादरी महाशय के दावे का भली प्रस्तार खण्डन कर दिया। बम्बई से चल कर खण्डवा इन्टोर और रतलात में प्रचार करते हुए श्रुति दयानन्द ११ अगस्त १८८२ को फिर उदयपुर पहुँच गये। उठरने का प्रमन्थ महाराणा जी की ओर से था। सज्जन निवास बाग में श्रुति का आमन जमाया गया।

श्रुति दयानन्द प्रायः कहा करते थे कि प्रजा का सुधार राजा के सुधार पर अवलम्बित है। जहाँ कहीं भी ऋषि को अवसर मिलता, वह शासकों के सुधार में यत्नवान् रहते थे। उदयपुर में पहुँचकर आपने महाराणा के जायन में परिवर्तन लाने का उद्योग किया। ऋषि को राजपूतों पर बड़ा विश्वास था, और उनमें से भी प्रताप के वंशों पर तो विशेष आशा की थी। थोड़े ही समय में आपने महाराणा सज्जनसिंह

के जीवन में आश्रय तक परिवर्तन पैदा कर दिया। आनन्द के भारतीय ग्रंथों में जितने दाप होते हैं, महाराणा म स्वामी जी के ध्यान से पूर्व वह सभी थे। त्रिलासिता, शगन, वैश्यागमन, आदि कुतृत्तियों, भोग मूर्तिपूजा बलिदान के आदि भ्रमान्मक विश्वासों ने महाराणा का घेरा हुआ था। स्वामी जी के उपदेश से बहुत शीघ्र ही मुक्त होने लगा। महाराणा न हर राज स्वामी जी से पदना आरम्भ किया। उन्हें सम्पूर्ण का बुद्ध अभ्यास पढ़ने से था। शास्त्रों के पढ़ने में उन्हें कोई विशेष दिक्कत न हुई। स्वामी जी ने उन्हें विशेष आप्त से मनुस्मृति का राजप्रकरण पढ़ाया। महाराजा के धर्मों का अनुशीलन करके महाराणा की आत्मा सुल गई। उन्होंने जीवन का सुधार आरम्भ कर दिया। महाराणाने अपना समयविभाग निश्चित कर लिया। प्रातः काल उठने लगे, सन्ध्योपासन नियमपूर्वक हान लगा, शगन भोग वैश्यागमन का त्याग कर दिया। राज्यकार्य से शेष समय में महाराणा सत्संग, भोग ऋषि से शास्त्रों का अध्ययन करने। धारे २ महाराणा ने वैशेषिक पानञ्जल भोग योग दर्शन पढ़ लिये, और प्राणायाम की विधि भी ऋषि से सीख ली।

यहां उन दिनों पण्डित त्रिगुलाम्ब मोहन लाल जी पण्ड्या राज्य के कार्यन्वाहकों में थे। पण्डित जी ऋषि के भक्त थे। वह प्रायः स्वामी जी से ज्ञानचर्चा किया करते थे। एक दिन निम्न लिखित आशय का बातचीत हुई—

पण्ड्या जी ने पुत्रा 'भगवन् ! भारत का पूर्ण हित कब होगा ? क्या जातीय उन्नति कब होगी ?'

स्वामी जी ने उत्तर दिया—“एक धर्म एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुर्लभ कार्य है। सा उन्नतियों का केन्द्रस्थान ऐस्य है। जहां भाषा भाषा और भाषना में एकाता, आजाय, वहां सागर में नदियों की भाँति सार सुख एक एक करके प्रविष्ट करने लग जाते हैं। मैं चाहता हूँ कि देश के राजे महाराजे अपने शासन में सुधार और सराजन करें। अपने राज्यों में धर्म भाषा और भाषों में एकाता उत्पन्न कर दें, फिर भारत भू में आप ही आप मुक्त हो जायगा।” (श्रीमद्धानन्द प्रकाश) ऋषि ने एक दिन कतिराज दयामलदास जी से कहा कि ‘भर मान के पश्चात् मेरी अस्थियों या किसी खेत में डाल देना, कोई समाधि या कोई चिह्न कभी न बनाना।’

कतिराज ने कहा “महाराज ! मैं सोच रहा था कि अपनी एक पत्थर की मूर्ति बनाना और उसे किसी जगह रख दूँ ताकि मेरे पाँचों वह मेरा स्मारक समझा जावे।”

स्वामी जी न तुरन्त कहा कि

“देखो कविराज जी ! ऐसा मूलकर भी मत करना । इस यदी तो मूर्तिपूजा की जड़ हुआ करती है”

श्रुति के यह वाक्य स्मरणीय हैं । श्रुति मूर्तिपूजा को हानिकारक समझते थे । वह जानते थे कि लाग भगवती आशय को भुलाकर स्थूलरूप में ललक जाते हैं । श्रुति जीवित जागृत स्मारकों को मानते थे, जड़ या मुदा स्मारकों को नहीं, श्रुति अपना स्मारक आर्य समाज को, वेदभाष्य को और पगोपकारिणी को मानते थे, किता गिला या मकान का नहीं । जड़ स्मारक स्वामी जी के आशय का प्रतिकूल था ।

एक दिन महाराजा सज्जनार्सेट भकेने में श्रुति दयानन्द ने बोल कि ‘महाराज ! यदि आप देशकालोचित समझ कर मूर्तिपूजा का खण्डना करना छोड़ दें तो भक्ति उत्तम हो क्योंकि आप जानते हैं कि यह रियासत एकलिंगेश्वर महोदय का भाषन चली आती है । यदि आप स्वीकार करें तो इस मन्दिर के महन्त बन सकते हैं । जैसे तो यह राज्य भी उसी मन्दिर के समर्पित है, परन्तु मन्दि के नाम जो राज्य का भाग लगा हुआ है, उसकी भी लाखा की भाव है । उसपर आप का अधिकार हो जायगा ।”

श्रुति को शोध नहीं आता था, परन्तु अपने शिष्य की इस बात से वह भी झुम्कला उठे । श्रुति ने उत्तर दिया “महाराजा जी ! आप मुझे लालच देकर उस सर्व शक्तिमान् जगदीश्वर की भवज्ञा करने पर उद्यत कराना चाहत हैं । ये आप के मन्दिर और ये आपको छोटी सी रियासत (जिससे मैं एक दौड़ में बाहर जा सकता हू) मुझे किसी दशा में उस परमेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध नहीं कर सकते, जिसके राज्य से कोई कमी किसी प्रकार भी बाहिर नहीं जा सकता । आप निश्चय रखें, कि मैं परमात्मा और वेदों की आज्ञा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकता ।”

यह उत्तर सुनकर महाराजा लज्जित हुए और क्षमा मागने लगे ।



## सोलहवां परिच्छेद

### परोपकारिणी सभा का निर्माण

श्रुति दयानन्द की दूरदर्शिनी दृष्टि अब समीप आते हुए अन्त को देख रही थी । मेरठ से चलते हुए श्रुति ने आर्यपुरुषों को जो आदेश दिया था, उसके वाक्य बतलाते हैं कि श्रुति भविष्य को देख रहे थे । आपने व्याख्यान में कहा था कि "महाशयो ! मैं कोई सदा बना कहीं रहूंगा । विधाता के न्यायनियम में मेरा शरीर भी क्षणभंगुर है । काल अपने कराल पेट में सब को पचा डालता है । अन्त में इस देह के कच्चे घड़े को भी उसके हाथों टूटना है । सोचो, यदि अपने पाप खड़ा होना नहीं सीखोगे तो मेरे आत्म मीचने के पीछे क्या करोगे ? अभी से अपने को सुसज्जित कर लो । स्वावलम्ब के सिद्धान्त का अवलम्बन करो । अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के योग्य बन जाओ । किमो दूमरे के सारे की आशा छोड़ अपने ही पर निर्भर करो" श्रुति के हृदय में यह चिन्ता थी कि 'मेरे-मरने के पीछे समाजों का समालने वाला कौन होगा ?'

सभालने का बहुत बुद्ध था । सबसे प्रथम, श्रुति समझते थे कि आर्य समाजें देश भर में त्रिलोकी हुई हैं । उनका एक केन्द्रभूत मगध नही हैं । आपस के लड़ाई-झगड़ों को निपटान का कोई उपाय नहीं है । दूर-दूर के प्रांतों में स्थापित हुई समाजें एक-दूसरे से कोई सहायता नहीं ले सकतीं ।

दूमरी चिन्ता श्रुति का विदेशप्रचार की थी । उस समय तक प्रांतिक प्रतिनिधि समार्यों भी नहीं बनी थीं, सामदेशिक सभा का तो अभी विचार ही दूर था । प्रचार का और विशेषाया विदेश प्रचार का कार्य छोटी-छोटी सभाओं का शक्ति से बाहर था । श्रुति क चित्त में यह विचार घर किये हुए था कि यदि वैदिक धर्म के योग्य प्रचारक भारत से बाहर भेजे जाय, तो उन्हें अवश्य सफलता होगी ।

इसके सिवा श्रुति ने वेदमन्त्र तथा अपने अन्य ग्रन्थ छपवाने के लिये १८८० में, बनारस में वैदिक प्रेम की रक्षा का भी । वह प्रेम अभी तक गिरावार था । श्रुति को गिनता भ्रातृ यत्ना पन्ता था, इन कारणों हिसाब में सदा गदगद रहता था । जब सामने ही यह हाल था, तो पीछे के लिये क्या उपाय हो सकता था ? श्रुति के ग्रन्थ जहाँ तहाँ छपे पड़े थे । उनका एक स्थान में समूह और सभालने का पल भी आवश्यक था ।

इस सन बातों पर विचार करके श्रुति ने एक ऐसी सभा का वातावरण निर्मित किया जो इच्छित नैतिकता का प्रचार कर सके। उदयपुर में 'परोपकारिणी सभा' का विचार उत्पन्न हुआ और प्रकाशित गया। इसी वदकायम परिष्कार हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा सत्यजित् सिन्हा के सुझाव ने श्रुति के हृदय को बड़ा सन्तोष दिया। हिन्दुधर्म के वैश्विक बन जाने पर श्रुति को यह भान होना चाहता कि अब धर्मसमाज विराधा नहीं है। महात्मा की सत्यता और हत्या को दमन कर श्रुति को विश्वास हो गया कि नैतिक धर्म पर धर्मसमाज को लौकिक सभों का प्रभु नहीं रहेगा। इसमें सन्देह भी नहीं कि यदि श्रुति के पठे इतना ज्ञान उनके संस्मरण शिष्ट न चल सके तो परोपकारिणी सभा इतना ज्ञान ऐसी निर्जीव सभ्या हो जाय। परोपकारिणी सभा का निर्माण एक वसीयतनामे के रूप में हुआ। वसीयतनामे का प्रारम्भ इस प्रकार था

'मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित नियमों के अनुसार तेरे (२३) सत्य धर्मपुरुषों की सभा को वस्त्रपुस्तक धन और यन्त्रालय आदि अपने सवस्व का अधिकार देता हूँ और उसको परोपकार मुकार्य में लगाने के लिए अधिकार बनाकर यह स्वीकार करने लिये देता हूँ कि समय पर काम आवे'।

इस प्रकार परोपकारिणी सभा श्रुति की उत्तराधिकारिणी बनाई गई थी। २३ सभासदों में से सभापति का स्वामी मेनाडपति मन्तराणा सचनभद्र को प्रदान किया गया था। सभासदों में कई राजपूत नौज और रहस्य थे। उनके अतिरिक्त देश भर के प्रसिद्ध २ धर्मपुरुष और श्रुति के शिष्यों का नाम सभासदों की सूची में प्राप्त है। राम बहादुर रानडे, राम बहादुर प० सुन्दर लाल, राजा जयकृष्ण दास, ला० साइगम, प० श्यामजीकृष्ण यमा आदि महानुभावों का सभा में सम्मिलित किया गया था। परोपकारिणी के सभ्यों की सूची का ध्यानपूर्वक आलाचन हम बतला सकता हैं कि जीवन काल में इस श्रुति का प्रमाण कितना विस्तृत हो चुका था।

सभा के अन्य उद्देश्यों पर ध्यान देने में श्रुति के महान् उद्देश्य का परिचय मिलता है। पहला उद्देश्य है, स्वामी जी की सम्पत्ति को वद और वेदांग आदि के धर्म धर्म में और वैदिक धर्मों के लक्षणों में धर्म का। शिक्षा का प्रबन्ध और पुस्तक प्रकाशन, यह दो ही विभाग इतने हैं कि एक सभा के लिये पर्याप्त हैं। दूसरा उद्देश्य रखा गया है, देश और देशान्तर में भोजनके लिये उपदेशरूपके शिष्यों के प्रबन्ध में सम्पत्ति का धर्म करना। तीसरा उद्देश्य है भारत के धर्म और धर्मधर्मों का महत्त्व देना। अन्तिम विस्तृत उद्देश्य है। लोक और धर्मों द्वारा देश और विदेश में प्रचार परोपकारिणी का पहला कर्तव्य है। दूसरा कर्तव्य है, वैदिक शिक्षाका प्रबन्ध। उसका अन्तिम

कानून जनों और आथा को गठाना और उनकी सहायता करना है । श्रृषि ने परोपकारिणी के ग्लेपे बड़ा भारी प्रोग्राम बनाया था । वह परोपकारिणी को अपना उत्तराधिकारी और आयसमाज का रक्षक बनाना चाहते थे ।

वसीयतनामे के अन्तिम भाग में सभा के साधारण नियम हैं । सभा में वही रह सकेगा, जो मदाधारपूर्वक जीवा विताये । दुराचारी को निकाल दिया जायगा । अधिक समय तक कोई स्थान रिक्त नहीं रह सकेगा । यदि सभा में कोई झगडा उठे तो सभा में फैसला होने की अन्य कोई भी सूत होने तक उसे फचहरी में नहीं ले जाना चाहिए । यदि कोई सूत बाकी न रहे तो न्यायालय से निर्णय होना चाहिए । यह नियम दिखलाते हैं कि भावजनिक संगठनों के निर्माण में श्रृषि दयानन्द सिद्धहस्त थे—और सभ्यों की शक्ति को परिमित करने के लाभों को खूब समझते थे ।

इन उद्देश्यों से और इन नियमों से श्रृषि ने परोपकारिणी का निर्माण किया, और अपनी सांजनिक सम्पत्ति सभा को सौंप दी । अपने जीवनकाल में ही प्रेस पुस्तक आदि सभा को दे दिए । श्रृषि को सभा में बड़ी आशाय थी । वह सभा द्वारा केवल अपनी सार्वजनिक सम्पत्ति को ही सुरक्षित नहीं करना चाहते थे, वह राजाओं और अन्य शिक्षित मदानुभावों को इकट्ठे बिठा कर एक दूसरे के समीप लाना चाहते थे, व राजपुत्राने के अशिक्षित नरेशों को भारतहित के सांजनिक कार्यों में लगाना चाहते थे । परोपकारिणी का निर्माण उस सपने का फल था जो चितौड़ की चोटियों पर खड़े होकर श्रृषि न देखा था । श्रृषि इस सभा द्वारा सोये हुए राजपुत्राना—शेर को जगाना चाहते थे । वह आय जाति द्वारा मनुय जाति के धार्मिक और सामाजिक उद्धार का नेतृत्व आर्य नरेशों के हाथ में देना चाहते थे ।

यह दूसरा प्रश्न है, कि परोपकारिणी को कहा तक सफलता हुई ? पूरी सफलता न होने के कारण हुए । पहला कारण तो श्रृषि का शीघ्र ही स्वर्गवास था । दूसरा कारण श्रृषि के थोडा ही समय पीछे उदयपुरनरेश का देहान्त था । तीसरा कारण यह था कि आर्य-समाज का प्रतिनिधियों द्वारा संगठन बहुत शीघ्र ही बन गया, और आर्य प्रजा की सम्पूर्ण शक्तिया उभर ही लग गई । अनेक प्रातों में, सैकड़ों मीलों की दूरी पर बैठे हुए रईस और समृद्ध मदानुभावों के कार्य पर कडा निरीक्षण रखने की जितनी आवश्यकता थी, आर्यपुरुष उसे पूरा न कर सके । वह अपनी प्रतिनिधि समाजों और धारे २ सार्वजनिक सभा में इतने लीन हो गये कि परोपकारिणी को सुन न ली । परोपकारिणी भी अनुकूल अवसर जानकर स्वभावस्था में पडी २ जीवन के दिन काउने लगी ।

## सत्रहवाँ परिच्छेद

### जीवन का अन्तिम दृश्य

उदयपुर में स्वामी जी १८८३ ईस्वी के फरवरी मास के अन्त तक रहे । माघ के प्रथम में आप शाहपुरा रयासन की राजधानी में पहुच गए । शाहपुराधीश राजा नाहरसिंह जो स्वामी जी के भक्तों में से थे । उन्होंने बड़े भक्तिभाव से स्वागत किया । आपन विशेष बाग नाहिर निवास में स्वामी जी का आसन जमाया । प्रतिदिन वैदिक धर्म का प्रचार होने लगा । महाराज स्वयं प्रतिदिन सायंकाल ३ घण्टेके लिए शिष्य भाव से आते थे, और अध्ययन करते थे । मनुस्मृति योगशास्त्र वैशेषिक दशन आदि के आवश्यक भागों का महाराज ने पाठ समाप्त कर लिया ।

स्वामी जी के उपदेशों से प्रेरित होकर महाराज ने महलों में एक यज्ञशाला बनवाई, जिस में प्रतिदिन हवन कराने का संकल्प किया । मई मास के मध्य तक शाहपुरे में धर्मवृष्टि करके अर्पि १७ मई १८८३ को जोधपुर की ओर रवाना हुए । शाहपुरे से जोधपुर का ओर रवाना होने के समय महाराज नाहरसिंह ने स्वामी जी से कहा कि 'महाराज ! आप जोधपुर तो जात हैं, परन्तु वहाँ बेरिया आदि का खपडन न करना' अर्पि ने उत्तर दिया कि 'राजन् ! मैं बड़े वृद्ध को नहेरने से नहीं कपटता, उनके लिए तो बड़े शत्रु की आवश्यकता होगी ।'

जोधपुर में कानल सप्रतापसिंह और ग० रा० तेजसिंह आदि रईस अर्पि के शिष्य हो चुके थे । वह लोग देर से निमन्त्रण भेज रहे थे । अब समय पाकर अर्पि 'जोधपुर राज्य में भी सुवाग का शब्द उठाने का संकल्प किया । शाहपुरे से आप अजमेर आये और वहाँ से जोधपुर के लिए रवाना हुए । अजमेर के अर्पिपुत्रों ने अर्पि की संज्ञा में उपस्थित होकर फिर निवेदन किया कि 'अब आप मागवड प्रान्त में पधारे हैं, वहाँ के मनुष्य प्रायः गगार और उजड़ हैं, और उनका स्वभाव और बतार भी अच्छा न । इ, इस लिए अभी आप वहाँ न जाइये ।' अर्पि ने उत्तर दिया कि 'उस लोग नहीं उल्लिखी की बत्तिना बना कर जलावें, तब भी मुझे कुछ शक नहीं हो सकती । मैं वहाँ जाऊगा और अवश्य वैदिक धर्म का प्रचार करूँगा।'

इस उत्तर को सुन कर सब चुप हो गये परन्तु एक सज्जन ने निवेदन किया कि 'तथापि आप वहां सोच समझ कर और मधुरता से काम लेना, कारण यह कि वहाँ के रहने वाले कठोर हृदय और कपटी होते हैं ।' इसका उत्तर ऋषि ने दिया कि 'मैं पाप के बड़े २ वृद्धों की जड़े काटने के लिए तीक्ष्ण कुठारों से काम लूंगा, न कि उन्हें बढाने के लिये कैदियोंमें उनकी कलम करूंगा ।''

जोधपुर में स्वामी जी का भव्ती प्रकार स्वागत हुआ । राजा जवानसिंह जी ने भानभगत की, पीछे से महाराजा प्रतापसिंह और रा० रा० तेजसिंह आदि रईसों ने दशन किये और अति-य का उचिन प्राबन्ध किया । कुछ दिनों पाछे स्वयं जाधपुराधेश महागज दशयन्तासिंह भी दर्शनों को आये । ऋषि ने उन्हें बहुत उपदेश दिया । प्रति दिन रायकाल के समय स्वामी जी सर्व साधारण को धर्मोपदेश करते और फिर दो घटे तक राजभवन में जाकर महाराज तथा उनके अन्य समीपवर्तियों की शकाओं का निवारण करते । महाराज प्रतिदिन ऋषि से कुछ न कुछ सीखते थे । ऋषि ने अपने व्याख्यानों में मूर्ति पूजा, वेश्यागमन, चक्रवित्तसम्प्रदाय और इस्लाम का बड़े जोर से खडन किया । जोधपुर में यही शक्तिया थीं । जोधपुर क पुजारी बड़े प्रचढ़ थे, महाराज और रईसों पर वेश्याओं का पूरा अधिकार था, रियासत में चक्रवित्तों का जार था, और राज्य क मुसाहिब आला भय्या फैजुल्लाखा इस्लाम के खयडन से बहुत शुब्ब हो गये थे । एक रोज उन्होंने स्वामी जी को यहा तक कह दिया कि यदि इस समय मुसलमानों का राज्य होता तो आप ऐसे व्याख्यान नहीं दे सकते और दत्त तो जीवित नहीं रह सकते थे । स्वामी जी न उसका उत्तर दिया कि 'भस्तु कोई बात नहीं है । मैं भी उस समय दो द्वात्रिप राजत्यों की पीठ ठोक देता तो वह उन लोगों को अच्छी तरह समझ लेते ।''

इस प्रकार जोधपुर में स्वामी जी के शत्रुओं की संख्या बढ़ रही थी । इसी भवसर पर एक और घटना हो गई, जिमने त्रिरोवियों के बल को बहुत बढ़ा दिया । महाराज यशवन्तासिंह का नन्हीजान नाम की एक वेश्या से गहरा सम्बन्ध था । एक रोज अपने निश्चित नियम के अनुसार स्वामी जी दरवार में पहुँचे । उस समय महाराज के पाम नन्हीजान आई हुई थी । स्वामी जी के आने का समय जानकर महागज उसे डोली में खाना कर रहे थे । डोली उठने से पूर्व ही स्वामी जी को समीप आना देन कर महाराज घबरा गये और डोली को स्वयं कन्धा लगाकर उठवा दिया । ऋषि न यह देख लिया । इससे उनका चित्त बहुत ही अधिक छुब्ब हुआ । उन दिन अपने उपदेश में ऋषि ने राजवर्म का वर्णन करते हुए बताया कि राजा सिंह के समान हैं



और बरथाय कुत्तियों के सना। गान्धर्वों का सन्ध्या विरहित गङ्गा उचित है, कुत्तियों से नहीं। महाराज का गिर लज्जा से भुक्त भया और उन्होंने अपने पुत्रों का निरूपण किया। मन्हीजात को जब महाराजापार निना को बड़े जन लगे। उनका आन गाना का पार का गया।

२० मित पर को गंग का गाय माते स पू। दशात जी न रज के पिपन से गर्म दूध मास का पिया। स्वामी जी का रोग, जगन्नाथ गान का एक ब्राह्मण था। दूध पीकर स्वामी जो भो गया। थोड़ा दर पीछे पेट में दर्द उठी और जाम चलाने लगा। गत का बड़े बाग बना हुआ। गाना जो १ दिनों का मूत्रता १ गो पण्डु निरन्तर के पाण्डु प्रात काल देर में उठे और पूरा न जा सके। पर की शक्ति के लिये आपने हाथ की आशा दी। दूध पिया गया। स्वामी जी की दशा और अधिक खराब होने लगा। उर शूरा पेनि और दूध का जोर बढ़ने लगा। डाक्टर सुर्मिल जो स्वामी जी के भक्त थे, पहले उनका इलाज प्रारम्भ हुआ, परन्तु १० दिनों की दवा का भार से डा० अनामनाता को भेजा गया। इलाज बहुत हुआ परन्तु दशा सुभरा की जगह निगडती ही गई। प्रतिदिन दम्बों की सन्ध्या करने लगी, मुद सिंग और माथा छूला मे भर गया, दिचरी का गई और शरीर बहुत ही कम होने लगा। डा० अलीम निवा का इलाज विद्वान् उल्टा पड गया था। इस घनक परिवर्तन की तह से डाक्टर की मूर्खता थी, या कोई और गहग भन था—यह निश्चयपूर्वक बढने का इतिहासमन्थक को तब तक कोई अविद्या नहीं, नभ तक कि किसी एक कल्पना की पुष्टि में कोई पुष्ट सुक्ति न दी जा सक। हा यह भाग आश्रय सन्देश जाक है कि दशा ता किगड रही था और डाक्टर साहिब यहां बताते थे कि दशा अच्छी हो रही है। श्रुति के शरीर में जहर घर कर गई थी। डाक्टरों ने यह सम्मति ली थी कि रोगा को जहर दी गई है। प्रतीत होता है कि कपण्डियों की प्रेरणा से जगन्नाथ ब्राह्मण ने रात को सोते समय दूध में जड़ मिलाकर पिया दी भी। कता जाता है कि पता लगाने पर इस आशंका से कि न भक्त रक्षाय को मत ब नहीं, दयापु श्रुति न किराया देकर उसे नेपाल का अर भाग जान को कहा था।

इतने व्रत में भी श्रुति का धैर्य आश्चर्यनाक था। उसे देवदार मित्र और शत्रु दातों तले उंगली टबाते थे। इतना व्रत और 'बाह' तक नहीं। धैर्य से रोग का सह रहे थे और प्रकृति पर कबल यथार्थ दशा बतला दत थे। जरीर छालों से भरा हुआ था, बोलने में असह्य व्रत होना था, हिलना डालना भी कठिन हो रहा था, ऐसा दशा में भी श्रुति के मुह पर न घबराहट थी और न रिजलाहट थी। यही गम्भार चेहरा था और वही आन मुद्रा थी। जिन लोगों ने उस दशा में स्वामी दयानन्द को देखा,

उन्होंने अनुभव किया कि इस मनुष्य में अमरत्व है। तोई दिव्यशक्ति प्राप्त कर रही है। उनका हृत्पथ में यह बात प्रकट हो गई कि इस मनुष्य के हृत्पथ में निश्चय से परमात्मा की शक्ति काम कर रही है।

स्वामीजी का बीमारी का वृत्तान्त बहुत दिनों तक छिपा न रहा। अन्तमें म समाचार पहुंचते ही आर्यपुरी जायपुर के लिए रवाना हुए और स्वामी जी की दशा देखकर आश्चर्य हो गये। गंग की दशा, ज्ञान की शिथिलता और सेवा की अनुमति देव-का आर्यपुरी में श्रद्धा में आगढ़ किया कि आप आठू पहाड़ पर चल। श्रद्धा में स्वामी कर लिया। महागज का सूत्रां निताने पर पहले तो वह बहुत दुःख भये परन्तु फिर स्वामीजी का आग्रह देखकर मित्त मा से आर्यपुरी के निदाई का प्रवर्तन कर लिया। निदाई के समय समय उपनिषा होकर मन्त्र का आराम का भला प्रभाव पदव्य कर लिया। जोशुभ न टाला म स्वामी जी आठू पर्यंत पर गये, परन्तु वहां भी वाई विशेष आगम निगाई न किया। तत्र रवाना जा के शिष्य उन्हें अन्तमें वापिस ले गये। इस यात्रा में उन्हें बहुत प्राणिक कष्ट हुआ परन्तु अचक्षा इलाज करण का और रजय मया करण का शिष्या ने प्रबल इच्छा में यात्रा जलना उन्हां उचित न समझा। अन्तमें म स्वामी जी का एक तोठी में छद्राया गया, और डा० लक्ष्मण दास जो तत्र इतान प्रारम्भ हुआ।

श्रद्धा का मृत्युनाय निरुद्ध था रहा न। इलाज और सेवा कुछ परिश्रम पैदा न कर सके। अन्तिम समय का दृश्य एक दर्शक की रोवनी ने तिन सगल शब्दों में चित्रित किया है—हम उसमें उद्यम वर्णन नहीं कर सकत, इस कारण उसी को उद्धृत करते हैं।

‘रेल से उतार कर रजामां जा को पालका म लिटा दिया गया, और मानवांगी से उन्हें एक काठी म ले आये जो पहाड़ से इस काम के लिये नियत कर रखा थी। उस समय गज का तान बजे थे। अन्तमें का अन्त था, रामों को मना मारूम देती थी परन्तु स्वामी जी के पुर में कमल ‘गर्गी’ ‘गर्भी’ का शब्द निकाला था। पाठा के सब दशाजें खुलना दिये गये तत्र भी स्वामी जी को शान्ति न हुई। दूसरे दिन डा० लक्ष्मण दास जी ने इलाज शुरू हुआ, पर उनका दशा म कुछ अन्तर न हुआ। एक रात स्वामी जी ने अपने मनुष्यों से कहा कि ‘हमका मनुष्य रो बला’। इसपर रामन का कि आराम होने पर हम आपका क्या पढ़ना देंगे, इस दशा म वाग्जार यात्रा करना ठक रहे हैं। इसपर स्वामी जी ने कहा कि ‘रो दिन म हमका पूरा नाम पढ़ना’। पर उतरे मरणा रखा वाच है। पर स्वामी जी

के सार शरीर में छाले हा छाल दीगन लगे । २६ अक्टूबर का स्वामी जी का शरीर अत्यन्त ही निर्मल हो गया । अपन सेवकों से कहा कि हम निडा बा । जो निडाया गया तो कहा कि छाड ना, हम सदा की आश्रयता नहीं है । सो निवनी देर तक निना सदा बैठे रह । उस समय सप्त जन्दा २ चल रहा था पर स्वामी जी उस रोक कर बल में फँस गये थे, और ईश्वर का ध्यान में मग्न हो रहे थे । रात को कुछ घण्टिक रहा । दूसरे दिन ३० अक्टूबर का डाक्टर न्युमन साहब बुलाये गये । जिन समय उक्त डाक्टर साहब ने स्वामी जी को देखा तो बड़ आश्चर्य से कहने लगे कि 'वन्य है हम सत्युप का, हमने आज्ञाक ऐसा दिन का मजबूत कोई दुमग मनुष्य नहीं देखा, जिसे जो इमप्रकार रूप से शिथिल कर अपार पीडा हो और वह तबिन् भी आह वा ऊहन करे ।' उन समय स्वामी जी के कंठ में कण का बड़ी प्रयत्नता था, जिसे निवृत्ति के लिये डाक्टर न्युमन ने कई उपाय किए, परन्तु उनमें कुछ लाभ न हुआ । ११ बने दिन के स्वामी जी का स्वास विशेष बढे लगा, और कहा कि हम शौच जायेंगे । उन समय स्वामी जी का चार आत्मियों ने उठाया, और शौच कराने का चौका परे बिठा दिया । शौच गये, और आप पाणी लिया । हाथ धोये, सन ली और कहा कि आ हमने पलग पर तो खला । आज्ञानुसार पलग पर ला बिठाया । कुछ देर बठकर फिर लेट गये । श्वास बड़ वेग से चलता ग, और एसा प्रतीत हाता था कि स्वामी जी श्वास को रोककर ईश्वर का ध्यान करते हैं । उन समय स्वामी जी से पूछा गया कि 'महागज ! कहिये, अब आप की तबियत कैसी है ?' कहने लगे कि अच्छी ट, पर मस कर्षे जा ता नि आगम का है ।

इस समय लखला जीवनदास जी ने, जो लाहौर में स्वामी जी का दरजे अजमेर गये थे, स्वामी जी से अभिमुख होकर पूछा कि 'महागज ! इस साथ क्या है ?' स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'इश्वरच्छदा म ।'

“उस समय श्रीयुत के मुनपर निमो प्रसार का शोक या घमण्ड प्रतीति नहीं हाता जी । ऐसी वीरता के सार दुःख का सहन करते थे कि मुझ से कभी हाथ या शक्ति नहीं निरन्ता । उगी प्रकार स्वामी जी को वातनीत करते २ एव जन गये, और उठा सावधानता सरह । इस समय हम लोगों ने श्रुत में पूछा कि 'बहिषे, अब आप की तबियत का क्या हात है ?' तो कर्षण लगे कि 'अच्छा है, तेन और अनन्तर मा भार है' इस बात को हम कुछ न समझ सके क्योंकि स्वामी जी इस समय सगल आनन्दत कर रहे थे । नाटे पांच राज का समय आया तो हम लोगों से स्वामी जी ने कहा कि 'अब मज आय जों का जो हमारे साथ और

दूर २ दशा से चाये हैं, बुला लो और हमारे पीछे गडा कर दो । कोई मन्मुव गडा न हो' बस यात्रा पानी थी, यहा किया गया ।

जन सब लोग स्वामीजी के पास आ गये तब श्रायुत ने कहा कि चागें और के द्वाग खोत दो और ऊपर का उन क दा छोड द्वाग भा खुलना दिये । इम समय पयञ्जा विष्णुलाल महनलाल भी श्रीमान् उदयपुरावीश का आशानुमार आगये । फिर स्वामी जी ने पूछा कौनना पद कया तिपि और क्या नर है ? किन्ती ने उत्तर दिया कि गृण्य पद और शुक्लपद की सन्नि नमापस मगलगा है । यह सुनकर कोठा की उत और दीवारों की आ दृष्टि की, फिर पहले वेदमन्त्र पडे तत्पश्चात् सम्कृत में ईश्वर की कुछ उपासना का, फिर भाषा में ईश्वर क गुणों का थोडा सा कजन का बडा प्रमलना और हर्षसहित गायत्रामन्त्र का पाठ करने लगे, तत्पश्चात् हर्ष और प्रखुल्लित चित्त सहित कुछ दर तक समाप्रियुक्त नयन गाल यों कहने लगे कि "हृ दयामय ! हे सर्गशक्तिमान् ईश्वर । तेरी यही इच्छा है । तेरी यहा इच्छा है । तेरी इच्छा पूर्ण हो । अहा तेने अच्छा लाला का," बस इतना कह स्वामी जा महारान ने जो सीधे लेट रह थे, स्वय करबट ली और एक प्रकार से श्वास को रोक कर एक बार ही निकाल दिया ।"

( आर्यमन्त्र जीवन )

लेखक के शब्द सरल और अकृत्रिम है । यह शब्द बताते हैं कि दर्शकों के हृदयों पर उस तपस्वी की मृत्यु का गहरा असर हुआ था । कहते हैं कि लाहौर से पं० गुरुदत्त विद्यार्थी भी लाला जीवनदासजी के साथ ऋषि के दर्शनो को गये हुए थे । पं० गुरुदत्तनी इस से पूरा अर्पनास्तिक थे । विज्ञान क वक्रे ने हृदय के ईश्वर-निश्वास को हिला दिया था । अर्पि की मृत्यु के दिव्य दृश्य को देखकर पण्डितजी न कोमल हृदय पर आश्चर्यजनक प्रभाव पडा । एक आम्तिक जिस शान्ति से मर सनता है, यह देग कर गुरुदत्त का हृदय पिघल गया और जहा नास्तिकता के काग्य शून्य हो गहा था वहा निश्वास और श्रद्धा का सुगन्धित पवन बहने लगा । जो अनिश्वासी हृदय क साथ मरता है, उसे भविष्य मे निराशा दिखाई देता है । जिसे ईश्वर पर भरोसा नहीं, उसके लिये मौन एक अथाह अन्धेरी खाई है । जिसने जीवन न केवल आस्तिकता का दम्भ भग हो, मृत्यु के समय उसके मुह पर से पद उठ जाता है और जो प्रत्यक्ष मे सन्तुष्ट दिखाई देता था, वह असलियत में अशान्ताय दिखाई होता है । मृत्युवाल स पदों को उवाड देता है । उस समय कोई भाव हुपा नहीं रहता । ऋषि की मृत्यु घनाता है कि उसका हृदय ईश्वर निश्वास और भागिक श्रद्धा से परिपूर्य था ।

उन्का ध्यान उल्लस था, परन्तु उसी उताहान के कारण ही वह शिथिल था। इस भूतार पर उसे दृश्य कम दिखाई देने लगे थे। दृश्यानु ध, जो नारिणिक दर्या के तट पर न से भा आतिवृत्ता की सरम्बती का यहा सात॥ थी।

प्रायस के समय श्रुति के तिर भी थे, और शत्रु भी थे, परन्तु शत्रु ने उन सब में का दूर कर दिया। दान न शत्रु का समाचार केवल ही एक एका मात्रागिक सहायुक्ति का मन्त्र उठा दि टाटे २ विमान दूर होगय। ईसाइ, मुगलान, ब्राह्मे, ध्यानापिन्द, सभी न एकावर से आत्मानि के तापी शत्रु पर दृश पक्षागिण किया। जातेगी जा मुह सकावश मौन ग्ही थे, वह गुण उठ और भारत के नेनामों और समाचार पत्रों का ध्यानन्द की भराल शत्रु का दश के दुग न का गिन्ह मनका। सभी प्रकार के भारत हितो की सननी १ प्रदिरी शत्रु पर शक प्रगट किया। धार्म-समान का वितना पट हुआ होगा, राकी तो कल्पना हा की जा सरता है। धार्म-समान का सर्वस्व लुट गया। उनका गुलाधार नष्ट हा गया। समाज अनाज हो गई। उन मनय सनाजों की जो भाग्य दगा थी, उननी कल्पना इन समय यतना बठिन है। धन तो धार्म प्रतिनिधि सभयें है, दर्नों पिडाई हैं, पुगने २ विज्ञातवात्र नेता है, और एज क भाना स्था पर बैठनाला दूगग म्दशुभार विद्यमान है। उस समय धार्मसमाज और धार्मसमाजियों को एक दयानन्द का भरोसा था। कोई मग्ग हो तो वही निपटायें, शादराय हो तो वही पड्यें, उत्सव की शाना उन्हीं से हो-सायश यह कि समाज का सर्वस्व काल वही थे, धायसनाज न जो व्यापा गाता की घटा ला गई, वह यधार्म ही थी।

धार्मसमाज के बाहिर समकदार शिदुधा ने स्वामी आ के विभाग को विन प्रानर अनुभव किया, उसका दिग्दर्शन ५० गासट्टण भट द्वारा सम्पादित, प्रयाग के 'हिन्दी प्रदीप' क सम्ने नैव की निम्न लिखित पत्रिया म हा स्पन्ता है। स्वामी की की शत्रु का समाचार सुनाकर प्रदीप न लिखा था "हा! धार्म भाग्योत्कटिकामिलिनी पा सृय अस्त होगया। हा! वेद का सेद मिगनवाला सदेव लुप्त हो गया। हा दयानन्द सरस्वती! धार्मों के सरम्बतीजहाज की पतवार बिना दूसर को सौपे तुम क्यों अन्तधात हो गये। हा राञ्ची दया के समुद्र। हा! सवे ध्यानन्द के वारिद। अपनी विद्याभ्या लहरा और हितोपदेशरूपी नारा से परित्यक्त भारत भूमिकी आर्ट पर नहा चले गये? हा! धार दिव के चतुरान! इन अस्तभ्यताप्रिय मग्दली मे आपन अपना विलक्षण चतुराई को क्यों इत प्रकार सरल भाव के फैलाना?" इसी प्रकार लम्बा खेदपूर्ण लेख लिख कर भद्री १ यह प्रकाशित कर दिया कि जो ज

धर्मसमाज के समासद नहीं परन्तु आचार्य से प्रेम करत थे, वह दयानन्द को धर्म जातिका नेता समझते थे, सङ्घचित मूल का प्रचारक नहीं।

मुसलमान दुनिया के विचारों का प्रभिविम्ब उस समय के भारतीय मुसलमानों के नेता सर सय्यद अहमदशाह की राय में दिखाई दे सकता है। लाहौर के 'काह्नूर' में आपने लिखा था—'निहायत अफसोग की बात है कि स्वामी दयानन्द साहिब न जो संस्कृत के बहुत बड़े आलम और धर्म के बहुत बड़े मुहकिक थे, ३० वीं अक्टूबर १८६३ को ७ बजे शाम के अजमेर में इन्तकाज किया। इतावा इताम ओ फजल के निहायत नेत्र और दसश सिफत आदमी थे। इनके मुतअब्द इनको दवता मानते थे, और वेशज वह इमी लायक थे। वह सिर्फ ज्योताम्वरूप निरवार के सिया दूसरे की प्रता जायन नहीं रखते थे। हमने और स्वामी दयानन्द महम से बहुत मुलाकात थी, हम हमेशा इनका निहायत अदम करते थे। क्योंकि ऐसे आलम और उम्दा शरसये कि हरेक मजहबवाले को इनका अदम लाजिम था। बहर हाल ऐसे शरस थे, जिनका मसत इस वकन हिन्दुस्तान में नहीं है, और हरेक शरस को उनको वफा का गम करना लाजिम है, कि ऐसा वेनगीर शरस इनके दर्मियान से जाता रहा।' इस सम्मति को समझदार मुसलमानों को सम्मति का एक नमूना समझा जा सकता है।

अन्तिम दिनों में स्वामीजी का ध्याघोषिस्तों से बहुत मदभेद हो गया था, परन्तु मृत्युपर ध्योसाफिकल सोसायटी के नेताओं ने बड़ी सद्दवता से दुःख का प्रकाश करते हुए आन्तर्गिक भक्ति का प्रमाण दिया। स्वामीजी की मृत्यु के समाचार पर ध्यासोफी के मुखपत्र 'ध्यासोफिस्त' ने हृदय के उदगार निम्नलिखित शब्दों में प्रगट किये थे—'एक महार भारता भारत वर्ष से चल बसी। प० दयानन्द सरस्वतीजी जिन्होंने ध्यासोफी में ध्यासमाज की बुनियाद रखी थी, और इसके सबसे बड़े रक्न या मुखिया थे, आज दुनिया से वृथ कर गये। वह निडर और सरगमी से काम करने वाला रिफार्मर जिमकी जर्द्वस्त आवाज और पुरजोश वक्तृत्वशक्ति से भारतके हजारों आदमी गत कई वर्षों के समय में प्रमाद और आलस्य के गढे से निकटा कर देशभक्ति के गहरे तले धा गये थे, आज भारत को विपोग से दुःखी करके स्वर्ग को चले गये।'।

ध्यासोफिकल सोसायटी के सस्थापक वर्नेज अल्काट ने लिखा था, 'स्वामी जी महागज नि सन्देह एक महान् पुरुष और सस्कृत के बड़े विद्वान् थे। उनमें लक्षे दर्जे की योग्यता, दृढ विश्वास और आत्मिक विश्वास का निरसत था। वह मनुष्यजाति के

गामगाय ध । १० अथ च गुणैल शीघ्रात्तार च ननु गुरुर स्वभाः भौम इमर  
सा । अत्रत मं त्वया त ध । हार दितां पर उद्धार च न गह्य अस्तर जाय है ।'

हैनाई लागों से स्वामी जग का बहुत विचार रहता था क्योंकि ईसाइयत की विनयनामा का उत्तरीय भारत में मान्यता दवानन्द ही था । श्रुत्यु पर ईसाइयों की धारणा में हार्तिक दृष्टि ही प्रकाशित किया गया । विद्यापीठ में समाचार पत्रों का प्रकाशित विद्यापीठ प्रा० मैथिलीयार ने 'पालमल गात्र' में एक लेख किया । उन लेख में प्राकृत मन्त्रोत्पत्ति की स्वीकार किया कि स्वामी जी वैदिक साहित्य के घडे मरी पडिा ध और प्रसिद्ध सुधारक थे । प्रोफसर गाहिर ने लिखा है कि उद्धार कर्मी नी शास्त्रागे हुमा, स्वामी दयानन्द का हा विजय हुआ । देन के सभी समाचारपत्रों ने श्रुति की श्रुत्यु का दश का परम दूर्भाग्य बालाया । इन प्रकार देशभद्राया फलशास्त्रा पूरक स्मरण किये हुए श्रुति दयानन्द ने दाशाली की रात को अमावस्य मास में शुभि की टोप पर पालोक की पाया की ।



# अद्वारहवां परिच्छेद

## आर्यसमाज का संगठन

— ११ —

इस खण्ड को समाप्त करने से पूर्व आवश्यक प्रमाण होता है कि ऋषि दयानन्द आर्यसमाज को जो संगठन द गये थे, उसपर थोड़ा सा प्रिचार करें । ऋषि दयानन्द अपने पीछे आर्यमनाजा को, अपने ग्रन्थों को, अपने चरित्र का, और कई शिष्या को छोड़ गये थे, इनमें से हर एक उनका स्मारक है, परन्तु जिस स्मारक का स्मरणता सब से अधिक है, वह आर्यसमाज है । आर्यसमाज ऋषि दयानन्द का स्मारक ही नही, वह ऋषि का प्रतिनिधि भी है । ग्रन्थों का, सिद्धान्तों का, सम्प्रदायों का और वस्तुतः वर्णों का रक्षा का बोध अ यथागत पर है । ऋषि दयानन्द ने अपने पछे अपना प्रति निधि आर्यसमाज को बनाया है, इस परिच्छेद में दिखना है कि वह प्रतिनिधि बनने के योग्य भी था या नहीं ?

आर्यसमाज के संगठन के सम्बन्ध में स्वयं आर्यसमाजियों में मतभेद है । अनेक विद्वान् ज्ञापयुक्त्या । भी वाभा संगठन ( Constitution ) से अमनोप प्रकृत किया है । ऋषि दयानन्द के निम्न कार्य से अस्तित्वा प्रकृत करना उचित समझ कर उन मन्त्रानुभावा ने आर्य समाज के वर्तमान नियमों तथा उपनियमों के लिये निम्नो ऐसे सन्तान को दाया ठहरा दिया है, जिसे वह बुरा समझते थे । यहाँ तक कि आर्य-समाज के एक इतिहासलेखक ने तो आर्यसमाज के वर्तमान संगठन को ही बहुत से वनवान दु र्णों का मूल मान लिया है ।

यह मानना पड़ेगा कि आर्यसमाज का वर्तमान संगठन धार्मिक सत्ता में नया है । इसमें पूर्व निम्नी धार्मिक समाज में प्रजासत्तात्मक शासनप्रणाली का ऐसा पूर्णता से प्रायण नहीं किया गया । प्रायः सब मत किसी एक प्रलौकिक अस्त क गच्छ गन्ते है । रोमा कैथालिक सत्ता रोम क पाप को अपने धर्म का गुरु मानते है, इस्लाम की तरफ पड़ते मलाका की ओर लगा रहती थी, अतः मक्के की ओर लगा हुआ है । बौद्ध भिक्षुओं के चुनाव में किसी पक्षधर का हार नहीं है । प्रोटेस्टैण्ट-ईसाइयान यथा प्रायः राजकीय शक्ति पर भरोसा करता है तोभा यह मानना पड़ेगा कि पाठमंडित





विषय पर उन्होंने किसी दूसरे को तान पर ही गा दिया है, स्वतन्त्र बुद्धि का प्रयोग नहीं किया । जिस पुरुष ने सत्ता की पर्वा न करके एक नया रास्ता निकाल दिया है, उसके मन्मन्ध में यह कहना कि उसने किसी दूसरे के कहने से भार्य समाज का स्थायी सगठन बना दिया है, लान्छन लगाने से कम नहीं है । सम्मति तो सभी लोग लेते हैं, परन्तु चुनाव अपने अधीन होना चाहिये । जो आदमी श्रुति के चरित्र को ध्यान से पढ़ेगा वह निश्चयपूर्वक कह उठेगा कि हरेक विषय में इतिकर्तव्यता का चुनाव श्रुति दयानन्द अपनी मर्जी से किया करते थे ।

परन्तु श्रुति दयानन्द ने भार्य समाज का जो सगठन बनाया है, क्या वह सचमुच इस योग्य है कि किसी दूसरे को उसके बनाने का अपराधी ठहराया जाय ! क्या वह भार्य समाज की उन्नति में बाधक हुआ है !

लेखक की राय है कि भार्य समाज का जो सगठन श्रुति दयानन्द ने बनाया है, वह बहुत उत्तम है । उससे भारतवर्ष की ही नहीं, अन्य देशों की धार्मिक तथा राज्य-संस्थाएँ भी शिक्षा ले सकती हैं । समय के अनुसार जो छोटे मोटे परिवर्तन आवश्यक होते जाय उन्हें करवाला जाय, परन्तु प्रधान धर्मों में वर्तमान सगठन श्रेष्ठ है ।

भार्य समाज के सगठन की श्रेष्ठता पर लिखने से पूर्व आवश्यक प्रतीत होता है कि कुछ शब्द इस विषय पर लिखे जाय कि भार्यसमाज क्या वस्तु है ? क्या वैदिक धर्म मात्र के समूह का नाम आर्य समाज है ? या वैदिक धर्म के प्रचार के लिये जो सोसायटी बनाई गई है वह आर्यसमाज है ? दोनों प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट हैं । यह आवश्यक नहीं कि वैदिकधर्म मात्र आर्यसमाज के सम्य हों, क्योंकि आर्यसमाज के सम्य होने के लिये चन्दे की शक्ति लाजमी है । सन्यासी चन्दा नहीं दे सकते, और न गरीब लोग दे सकते हैं, ऐसी दशा में वह लोग सामान्यतया आर्यसमाज के सभासद् नहीं बन सकते । तब क्या वह वैदिकधर्म नहीं है ? वह वैदिकधर्म अवश्य है । आर्यसमाज से बाहर भी वैदिक धर्मों हैं, और हमेशा रहेंगे । आर्यजगत् आर्यसमाज तक परिमित नहीं है । आर्यसमाज तो उन लोगों की सत्था है जो वैदिकधर्म के प्रचार की अभिलाषा रखते हुए सगठन में शामिल होते हैं ।

दृष्टान्त से यह विषय और अधिक स्पष्ट हो जाता है । एक शहर में ३ लाख निवासी निवास करते हैं । उनमें से वोट देने का अधिकारी केवल २५ हजार हैं और उनमें से भी म्युनिसिपल कमिटी के चुनाव में केवल १० हजार निवासी भाग लेते हैं ऐसा दशा में क्या वह १० हजार निवासी ही शहर के निवासी समझे जायेंगे ?

उत्तर 'श' के लिये ही मन्त्र है। उसी प्रकार आर्यजित् आर्य समाज से मूढ़ा यह है। भाष्य समाज शब्द भा दो शक्तिशाली से प्रयुक्त हुआ है। मन्त्रान्वयवा हस्तक धैर्यधर्मी-मूर्खि इत्यादि की शिक्षाओं को स्वीकार करनेवाला हरेक व्यक्ति आर्यसमाज से माना जाता है। आर्यसमाज के लिये आर्यसमाज शब्द का प्रयोग होता है। यह विन्तुत आर्यसमाज है।

आर्य समाज एक निश्चित संगठन ना है। यह आर्यसमाज ही कि हरेक वैदिक-धर्मी आर्यसमाज में सम्मिलित भा है। आर्यसमाज से बाहिर भी वैदिकधर्मों में रह सका है। इस प्रकार हम दखन है कि आर्य समाज उन वैदिकधर्मों का सा है, जो वैदिक शिक्षाओं के प्रचार और रक्षार्थ इच्छु होते हैं। वैदिकधर्मों का साथ आर्यसमाज में बहुत बड़ा है। यदि आर्यसमाज और आर्य समाज के मेल को ही प्रकाश से समझ लें तो यह आर्यसमाज का अर्थ बन रहा कि संगठन से आर्य समाज का सम्बन्ध बना दिया है। मनुष्यो समाज का होना आर्यसमाज के धर्मों के बननेवाले के लिये नहीं बना जा सकता, यह श्रेय तो हम लोगों का है जो वैदिक धर्म का आर्य समाज तक प्रतिनिधि मानके हैं। यदि हम इस बात को भंग कर दें कि वैदिक धर्मों का मूल आर्यसमाज को मन्त्रों से अधिक मिला है, और आर्य-समाज उन लोगों का संगठन है जो वैदिक धर्म के लिये तथा रक्षार्थ के लिये समाज में सम्मिलित होने की इच्छा रखते हैं तो मन्त्रों के अभाव में ही रह जायेंगे। उस दशा में आर्यसमाजका संगठन अत्यन्त उत्कृष्ट प्रतीत होगा।

आर्यसमाज के वर्तमान संगठन की पूर्णता और सुदृढता को वह लोग भली प्रकार समझ सकते हैं, जिन्होंने मिला २ देशों का आर्यसमाज और धार्मिक सम्प्रदायों का अनुशासन किया है। योद्धा बहुत बलों में समयानुसार परिवर्तन होते ही रहते हैं, पन्तु समाज्य सिद्धान्त में प्रतिनिधित्व की दृष्टि से आर्यसमाज का संगठन एक प्रकार से आर्य है। समाज बनने की शक्त यह है कि ग्राह्य समाज तक चला देने-वाला समर्थ रहा है। चन्द्रा आर्यसमाज का शक्ति है। समाज से समाज आर्यसमाज का समर्थ रह सकता है क्योंकि वाट के अतिकार होने के लिये कोई राशि निश्चित नहीं है, छोटी से छोटी आर्यसमाज का शक्ति है। यही कारण है कि आर्यसमाज कभी धर्मियों का सब नहीं बन सकता। अधिसारियों का चुनाव प्रतिष्ठित होता है। प्रति निधियों का चुनाव तीसरे वर्ष आयोज्य है। सर्वसाधारण की सम्मति को मितनी अच्छी तरह आर्यसमाज के नियमानुसार बनी हुई समाज्य प्रतिनिधित्व करती है शायद ही दूसरी कोई समाज करती हो। अमेरिका और अफ्रीका को तो छोड़ दायिने,

साधारणतया अन्यदेशों के राजनीतिक संगठन भी लोकमत के ऐसे अच्छी प्रतिनिधि नहीं हैं । संगठन के मजबूत होने का ही यह फल है कि बीसिया धार्मिक और राजनीतिक चोटों को खाकर भी आर्य समाज की शक्ति वैसी ही बनी हुई है ।

आर्यसमाज के संगठन पर एक आरोप हो सकता है । एक धार्मिकग्रन्थ के धर्म-सम्बन्धी प्रश्नों को हटा करने के लिये जिस प्रकार के प्रबन्ध की आवश्यकता है, वह आर्यसमाज में नहीं है । आर्यसभासदों, आर्य प्रतिनिधि सभाओं या साउथेरीन सभा के सभ्यों तथा अधिकाग्रियों में किसी के लिये धार्मिक योग्यता आवश्यक नहीं है । परिणाम यह है कि सम्पूर्ण आर्य समाज में एक भी प्रामाणिक सभा ऐसी नहीं है, जो आर्य जनता का धार्मिकगुरुत्व कर सके । इसका उपाय करने के कई यत्न हुए हैं । कहीं विद्रुतपरिषद् बनी है, तो कहीं आर्यधर्मसभा की स्थापना हुई है । इसे कई सजा संगठन की अपूर्णता कह सकते हैं, परन्तु लेखक की राय है कि संगठन का इतना दोष नहीं, जितना आर्यसभासदों का है । आर्यप्रतिनिधिसभाओं में ऐसे विद्वानों की अधिक संख्या को भेजना, जो धर्म के विषय में राय देने का अधिकार रखते हों, आर्य सभासदों का कर्तव्य है । नियम का इतना ही दोष है कि उन्होंने सम्मति देने वालों को यह स्पष्टता से नहीं बताया कि वह कैसे व्यक्तियों को अपने प्रतिनिधि चुने, किन्तु समझदार पुरुषों को इतने विस्तृत विदेश की आवश्यकता भी नहीं रहती । आज यदि आर्यसमाज के प्रबन्ध में व्यावहारिक पुरुषोंकी प्रजाता दिखाई देती है तो उसका कारण केवल आर्यसभासदों की उपेक्षाएँ हैं । आर्यप्रतिनिधिसभाओं के साथ किसी दूसरी समानान्तर सभा को स्थापित करने का विचार उस आशय के विरुद्ध है, जो ऋषि दयानन्द के चित्त में था ।

ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज का जो संगठन बनाया है उसकी मूल्य विशेषायेँ दो हैं । यह अखण्ड स्वाधीन और अपने आपमें सम्पूर्ण है, और साथ ही लोकमत का सच्चा प्रतिनिधि है । आर्यसमाज अपने सभासदों की भलाई के लिये किसी अन्य संगठन की अपेक्षा नहीं करता । यदि भ्रमण आ पड़े तो वह अपने सभासदों की सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है । वह लोकमत को प्रतिनिधित्व करण का उत्तम मात्रन है । यही दो कारण हैं कि वह स्थिर है । यदि आर्यसमाज का ऐसा अच्छा संगठन न होता तो जो जयदस्त भक्तोंरे इमे गिराने के लिये आते रहे हैं वह कमा के कामयाब हो गये होते ।



# तृतीय-खण्ड



१८८३—१८९० ई०





## पहिला परिच्छेद

### भविष्य के अंकुर

[ ३० अक्टूबर १८८३ ई० से ३१ दिसम्बर १८८३ ई० तक ]

#### १ मृत्यु का भाव

ऋषि दयानन्द की मृत्यु आकस्मिक वज्र की भाँति आर्यसमाज के सिर पर गिरी । ब्रह्मचारी और योगी के सम्बन्ध में भाय पुरुषों की भावना थी कि वह कम से एक सौ गानतः जिंसे । वे उम बालक की भाँते निश्चिन्त थे, जो समझता है कि अभी पिता की छहछाया सिर पर विद्यमान रहेगी । उन्हें यह ध्यान भा नहीं था कि एक दम उन के सिर पर सः श्रृषि का रक्षक हाथ उठ जायगा । मृत्यु का घण्टा पहले क्षण न भनरा प्रतीत हुआ । आयनमाज के सभासदों के हाथ में जो समाचार पत्र थे, उन के उस समय के लेखों स विदिता होता है कि ऋषि की मृत्यु क समाचार ने एक बार तो उन के हाथपाव पुना दिये । मरठ के आर्यसमाचार ने दु ग्वसमाचार सुनाते हुए एक खोख प्रकाशित किया था । उस क निम्नलिखित वाक्य उस निराशा के भाव को सुचित करते हैं जिसका भायपुष्प अनुभव कर रहे थे ।

‘रो, रो, ऐ बदभल्लत आयावत ! रूष दिल खोल कर रो ले । आन तेरा फगलियत का सुगज गख्म हो गया । जिस जुल्मातेजहालत ने तुम्हको इस नौषत पर पडुचाया था उससे ज्यादा जमाता स्याह इस वकत तेरा नजर के रोयकू मौजूद है । जिस फन्दे गुक पर तुम्ह को गाज था, यही आज तुम्ह में से उठ चला । लराया तमत्रार्थों का रत हो गया’—इत्यादि ।

लहौर के देशोपकारक ने निम्नलिखित पत्तियों में अपनी असक्त वेदना को प्रगट किया था —

‘ऐ आयावत ! तेरा बदभिल्लती पर मुझे रोना आता है । ऐ आयावत ! तेरी यताती पर मेरा दिल रत हुआ है । ऐ आयावत ! तग बेक्ती पर मुझे गेगन आती



है। ये आयातन। तेरी बेपरोवाली पर मेरा तिल मुन्दलाया जाना है। कैसी नन्दी तेरे प्यार के सख्तमे को मन्द कर दिया गया'

ये दो उदाहरण इस बात को साफ कर देने के लिये पयाप्त हैं कि ऋषि की मृत्यु का आर्षसमाज पर पड़ता भय बहुत ही निराशाजनक हुआ। वे अपने भाप को वेपार के पक्षों की तरह अमर्त्य समझने लगे। भार्यसमाज के आकार में जो अधिपारी सी छा गई। भय तक हरेक पट्टिनाई का हल 'स्वामी जी' थे, अब पट्टिनाइयों का पड़द आर्षों के समान भागे लगा। काम अधूरा रह गया, रास्ता भीच ही में फट गया, आयुष्यों को भान होने लगा कि भार्यसमाज को नौका मम्बार में फम गई, अब इसका निकलना दुःकर है।

### ० उत्तरदायित्व का अनुभव

परन्तु शीघ्र ही भार्यसमाज के सामान्य समझ गये। ऋषि की स्मृति से ऋषि का उपदेश जर्दस्त निकला। ऋषि की स्मृति भी उपदेश व प्रभाव को चदान का कारण बन गई। पहले भद्र का मोहक प्रसर दूर हाते ही भार्य पुरुषों के हृदयों में एक नया भाव उत्पन्न होने लगा। वह नया भाव था, उत्तरदायित्व का भाव। अब तक भार्य पुरुष अपने भाप को नाकालिग समझने थे। वे करते सब कुछ थे, परन्तु इसी विचार से प्रेरित होकर करते थे कि दुनिया और दूसरी दुनिया के स्वामियों के सामने उत्तरदाता 'स्वामीजी' होंगे। ऋषि की मृत्यु का पहला प्रभाव दूर हाते ही उत्तरदायित्व के अनुभव न आय-पुरुषों के हृदय में धीरे धीरे प्रवेश किया। यह समय भार्य-पुरुषों की परीक्षा का था, आयसमाज के भाग्य निमाख का था। यदि ऋषि की मृत्यु का यह प्रभाव होता कि भार्य-पुरुष साल दो साल के लिये भी अकमथ्य होकर बैठ जाते तो सिद्ध हो जाता कि स्वामी दयानन्द न भार्यपुरुषों का जो कुन्द सिन्ध्या था वह असत्य था, अधूरा था। यदि भार्य पुरुष ऋषि के वापस से प्रयाण करते ही उन के स्थान पर किसी आचार्य की सलाह करन लगते ना व अपने भाप को नाकालिग सिद्ध कर दते और दुनिया को यह दिखाने कि दयानन्द के उपदेश उनकी जिह्वा पर ही हैं, उन के हृदयों पर नहीं। ऋषि के मरने पर हम इर्ष-पूर्य आश्चर्य के साथ देखते हैं कि एक भी भार्य पुरुष यद् शब्द नहीं उठाता कि ऋषि की स्थान-पूर्ति के लिये किसी व्यक्ति की तलाश कम्नी चाहिये। ऋषि दयानन्द भार्यसमाज का एक प्राण-सत्तात्मक संगठन बनाना चाहते थे, समाज की नींव में आचार्यन सभ्यति के भाव को मरा था। यदि ऋषि के अलग होने ही भार्य पुरुष उन सिद्धान्त का भूल जाते,

तो आर्यमन्त्र का इतिहास किमी दूरी ही तक लिया जाता। उग्राश्रम के आर्य-समाज का इतिहास इस्लाम या ब्रह्मोन्मत्त का समाज ब्यक्तियों का इतिहास होता, जाना का इतिहास नहीं। आर्यमन्त्र परमात्मा न उतीर हो गया। उत्तम ऋषि की स्मृति को स्थिर करने का यही यही उपाय सम्मत् कि ऋषि के उपदेश को सर्वोपरि रखा जाय।

स्वामी जी की अज्ञानमृत्यु में जो गुच्छ उन्नत हुई थी, वह शीघ्र ही जाती रही और आर्य-जन्तु न अपने प्राय को बालिग मान कर उत्तर-शक्ति का अनुभव किया। ईश्वर को आचार्य और पधदशक बनाकर शास्त्र ही आर्य पुरुष ऋषि के उद्देश्य की पूर्ति के लिये कठि बद्ध हो गये।

### ३ ऋषि स्मारक

ऋषि की मृत्यु के पीछे चेष्टा पैदा होने पर जो पहला विचार आर्यजगत् में पैदा हुआ, वह यह था कि आचार्य की स्मृति को कैसे ताजा किया जाय। इस विषय में आर्य-जगत् की परीक्षा थी। स्वभाव से मनुष्य अपने प्रिय की स्मृति को स्मृत्यन्तर्गम चित्रजीवी बनाना चाहता है। वह ऐसा स्मारक चाहता है जो शान्दार भी हो, और सरल भी हो। किसी की याद में किताब लिख देना सरल हो सकता है पर स्मृत्यन्तर्गम से पुस्तक शान्दार नहीं है, अपने प्रिय की याद में चीज को दीवार खद कर देना शान्दार कहा सकता है परन्तु सरल नहीं है। साधारण मनुष्य दोनों गुणों को देखता है और किसी स्तूप, किसी मन्थर या किसी माल के रूप में स्मृति को अमर करने का यत्न करता है। ऋषि दयानन्द ने उदयपुर में कथिराम श्यामनदास जी से कहा था कि—“मेरे मरने के पश्चात् मेरी अस्थियों को किसी खेत में डाल देना, कोई समाधि या कोई चिन्ह करापि न बनाया।” कथिराम ने कहा कि—“महाराज ! मने तो यह सोच रखा था कि अपनी एक पत्थर की मूर्ति बनवाऊँ और उसे किसी जगह रखवाऊँ, ताकि मेरे पश्चात् वह मेरा स्मारक समझा जाय।” स्वामी जी ने कहा कि—“देखना कथिराम जी ! ऐसा भूलकर भा मत करना वरत यद्य तो मूर्ति-पूजा की जड़ हुआ जाती है।” ऋषि का यह उपदेश था। वह शान्दार से शान्दार और सरल सरल ही ऐसे स्मारक को पसन्द नहीं करते थे, जिनमें मूर्ति पूजा का प्रभाव पायी जासके। यदि आर्यजन्तु ऋषि की यादगार में कोई स्तूप या मन्थर बनाता देती तो आचार्य हिन्दू धिया उम पर झूल और चलावे चप कर अपने जायनों को सकल मान रहा होती।

आर्यसमाज १ श्रुति दयानन्द के आशय को गूढ़ समझ लिया, और स्वयं ही ऊपर बाईं हुई दो शक्तियों के साथ एक ही मर्म, और मर्म जोड़ दो। यह सब यह थी कि स्मारक शान्दार और सरल होने के साथ ही साथ उपयोगी मा हो। अजमेर से लौटकर आर्य-गुरुओं ने अपने स्थानों पर स्मारक की चर्चा प्रारम्भ की। अजमेर, प्रयाग, मेरठ, कोरोजपुर, मुल्तान और लाहौर में वह चर्चा अधिक वेग के साथ होने लगी। प्रायः सभी स्थानों में अन्ततः व्यवस्था मत्त था। यह आश्चर्य की बात है। यथा पही थी कि श्रुति ही यादगार शिक्षणालय के रूप में स्थापित की जाय। इससे सूचित होता है कि आर्यसमाज का शिक्षा ही शिवाय के स्मारक के विरुद्ध थी। यह ठाढ़ है कि परोपकारिणी में एक बार दिवाने के स्मारक की चर्चा प्रारम्भ हुई थी, परन्तु बाद रखना चाहिये कि परोपकारिणी मन्त्र म सी कीसरी आर्यसमाजिक विचारों का राज्य नहीं था। आयजनता का दिमाग ही ऐसे रूप का बना हुआ था कि वह स्मारकव्यप में वैदिक शिक्षणालय से उठा बन्तु नहीं सोच सकती थी।

स्मारक की चर्चा कहीं पाठशाला के रूप में घनीभूत हुई तो कहीं स्कुल के रूप में परिणत हुई। मेरठ में हम मुश्ताकप्रचारिणी नाम की समाज, और आर्यपाठशाला नाम की पाठशाला का वृत्तान्त पढ़ते हैं। प्रयाग में किसी न किसी रूप में पाठशाला का कार्य जारी रहा। अजमेर में परोपकारिणी समाज में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए उनको यथा हम आगे करेंगे। पच्छिम में स्मारक की चर्चा तन स्थानों पर प्रारम्भ हुई थी, परन्तु लाहौर के सिवा अन्य किसी स्थान पर वह घनीभूत नहीं हो सकी। लाहौर में वह शीघ्र ही घनीभूत हो गई, और साहस के साथ कहा जा सकता है कि कल्पनागत शोका से लाहौरनिवासियों ने अपने आप को स्वामी ना के सच्चे मन्त्र सिद्ध कर दिया।

## ४ वैदिक शिक्षणालय

श्रुति दयानन्द के जीवनकाल में ही वैदिकग्रन्थों की शिक्षा का प्रचार करने के लिये एक शिक्षणालय की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था। श्रुति दयानन्द मन्त्रार्थ और सत्यशिक्षा के ध्येय की ही भारतवर्ष की गिरावट का कारण समझते थे। काशी में, फरव्वाबाद में श्रुति ने पाठशालाएँ स्थापित की थीं, परन्तु प्रजात होता है कि उस समय तक अभी आर्यजनता में इतनी जागृति पैदा नहीं हुई थी कि वह उसबोध को उठाने के लिये उद्यत होती। अभी शिक्षणालयों का समय नहीं आया था। लोग अनुभव कर रहे थे कि जब तक स्वामी जी जीवित हैं तब तक आर्यसमाज में देश का न्यूनता नहीं कही जा सकती। स्वामी जी के जीवन का अन्त हो सकता है—पार्य

पुरुषों के दिमाग में यह बात नहीं समाई था । व जानते थे कि आदित्य ब्रह्मचारी सौ साल से पहले नहीं मर सकता । उन्हें क्या मालूम थी कि सत्सार म ऐसे पुरुषों की वास करते हैं जो मनुष्य जाति के उपकारकों का प्रायःसहरण करने में सुख का अनुभव करते हैं ।

ऐसी दशा में भी भार्यपुरुष यह अवश्य समझ रहे थे कि वैदिक ग्रन्थों की शिक्षा का प्रबन्ध करना पड़ेगा । १८८२ और १८८३ ई० के पूर्वभाग में पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश के भार्यसमाचारपत्रों में वैदिक शिक्षाशाला की आवश्यकता पर लेख निकलते रहते थे । लाहौर के 'भार्य' नाम के अखबार में १८८२ ई० के मई मास में हम ऐंग्लोवैदिक स्कूल की आवश्यकता पर एक लेख पढ़ते हैं । १८८२ ई० के मई मास में ऐंग्लोवैदिक स्कूल की चर्चा सिद्ध कागती है कि दो बातें पहले से मानी जा चुकी थीं । एक ऐसे शिक्षाशाला की आवश्यकता है जो वैदिक ग्रन्थों की शिक्षा दे सके, और वह शिक्षाशाला ऐसा होना चाहिये कि जिसमें अंग्रेजी भाषा और पश्चिम की अवाचीन विद्याओं का शिक्षा का भी प्रबन्ध हो ।

ऋषि की मृत्यु ने इन दो बातों के साथ एक तीसरी यह बात शामिल कर दी कि यह शिक्षाशाला ऋषि का स्मारक भी हो ।

### ५. डी. ए. बी. स्कूल का मस्ताव

३० अक्टूबर ( १८८३ ई० ) का रात्रि को अजमेर में वैदिक सूर्य अस्त हुआ । उस समय अजमेर में पञ्जाब के बहानु से महानुभाव भी विद्यमान थे । प० गुरुदत्त जी और ला० जीवनदास जी ने ऋषि के जीवननाटक पर पटाक्षेप होते देखा, और लाहौर पहुँच कर १ नवम्बर को सार्वजनिक सभा में आप्तों से जो अद्भुत मृत्युमय जावन देखा था उसका वृत्तान्त जनता को कह सुनाया । सुनने और कहने-वालों की यह दशा थी कि आर्ये डबडबा रही थीं, गल भरे हुये थे, सभा में एका सन्नाटे का राज्य था, जिसे देखकर यह अनुभव करना कठिन नहीं था कि आर्यसमाज पर जो आपत्ति आई, वह अनाशक्ति थी । सात दिन पीछे ८ नवम्बर को फिर लाहौर के भार्यपुरुषों की एक सभा हुई । उस दिन दृश्य ही बदला हुआ था । शोक के स्थान पर उत्साह और जीवता का राज्य हा रहा था । प० गुरुदत्त एम. ए और उनके साथियों ने भागपूर्ण शब्दों में प्रस्ताव दिया कि ऋषि की यादगार का ऐंग्लो वैदिक स्कूल तथा कालिदास स्मृति स्थापित किया जाय । सभी उपस्थित जनता ने प्रस्ताव को पास दिया । उस समय अन्धे के लिये अन्धधरता की गई । उस समय तक उत्तम भाषों के लिये दान देने की प्रथा नहीं चली थी । अभी तक दान के लिये पदों के पेट और तीर्थों के

कठ डाँट पात्र समझ जाते थे। उस समय धार्मिकनिक प्रार्थना ( राय ७ ) तक भी विशेष ध्यान रखा था। उन दिनों चर्चा गणपति के साथ समाचार परम... गनी थी। उस समा में (२०००) का नाम मुकाम गमा, जिसे हम आजकल की दृष्टि से (२००००) ने हम नहीं सफलता पाई। दादासाहो की सुविधा में कई स्थानों और बसों के भी नाम मिलते हैं, जिसमें उत्साह का अनुमान लगाया जा सकता है। मातृका के धार्मिकता की अनुसन्धान १ दो दिन पूर्व ही ७ की स्कूल के लिये धर्म एकाद के तैयारी मिलित एक मंत्र (मर्दी बाई) था, जिसका निम्नलिखित समाप्त है —

ताता लालचन्द्र एम ए, लाला मदनसिंह बी ए, लाला जावन दास, ५० गुन्द्रत एम ए ।

यह सम-कमेटी धर्म सभ्य के लिये बनी थी, परन्तु वह कइना कुछ अत्युक्ति-पूर्ण न होगा कि डी ए वा. स्कूल की स्थापना के लिये जिनका उत्साह उत्पन्न होगया था, उसका दगाव भी न होता यदि ताहौर के महाजुमानों का यह मादूम न होता कि एक योग्य धार्मिक नयनुरुक उम श्रेष्ठ कार्य के लिये अपना जीवन समर्पण करने को तैयार है। उन समय नव-युवक का नाम 'हसराम' था। लाला हसराम ने अपनी हाल ही में बड़ी प्रतिष्ठा के साथ पंजाब यूनिवर्सिटी से बी ए पास किया था। उसका सामने नौकरी या व्यापार का मैदान खुला था। परन्तु सामाजिक इच्छाओं से लाला मादूम उस स्वामी नव-युवक ने धर्म-यज्ञ में अपने जीवन की आर्द्रता डालने का सङ्कल्प लिया। बताया कि आश्चर्यकरता नहीं कि उस समकमेटी धार्मिकता के उत्साह को जितना बलका होता। उस दृष्टान्त में पंजाब में धर्म-यज्ञ के जन्म पर वैसा उत्तम प्रभाव डालता, धार्मिकता के इतिहास की जननीलाल इसे तब जानते हैं।

## ६. मजार का क्रम

एक बार तो ऐसा प्रतीत हुआ कि धार्मिक प्रचार का कार्य स्वामी जी की मृत्यु के सारा ही बन्द हो जायगा, परन्तु शीघ्र ही इस महाजुमान राई हो गया, जिन्हान प्रचार का दृष्टि ही दृष्टि डार म गाठ बोंग दी। इस समय के मजार-नी में पंजाब नाम मृषि के पठित स्वामी धामानन्द जी का है। १८२३ की समकमेटी जन म पूर ही हम स्वामी धामानन्द जो का न २ धार्मिकता की स्थापना करते हुए पाते हैं। मृषि का मृत्यु क उड गा- र्थ ही स्वामी धामानन्द जी के उपाय से नये धार्मिकता की स्थापना हुई। उस समय देसम ( म तीन ही शरीर म धार्मिकता की अतिशय शक्ति थी।

पञ्जाब न ताहौर, मयुक्त प्रदेश में गेरठ और पश्चिम में दम्पई। इन्हीं समाजों द्वारा भगवान के दर्शन या मंत्रों में प्रसार होता रहता था। इसी गायत्रय का मौफा भण्डार पर भाग्यशत्रुओं के आगपुरा दलखलमहिन जा पटुवते थे।

### ७ अन्य मतवादियों से मुठभेड़

आय मतवादियों में मुठभेड़ आर्यसमाज को जन्मशुद्धी म दी गई थी। ऋषि दयानन्द ने चौमुनी लडाइ लड म आर्यपुस्तकों को जन्मनिद्व योत्रा याा दिया था। एक आयसमाजो बालक धुरन्धर माताती पयिन्त को ललकारा में नहीं किमजना था। उते विश्वास था कि सत्य उसके साथ है, इस लिये जीत उमी की होगी। शास्त्रों का ज्ञान ऋषि की मृत्यु क पीछे भी जारी रहा। १८८३ के आत म हम कागा के आर्यपुस्तकों को मुन्लमाजो के नाथ लल ता हुआ पाते है। वृत्तान्त पश्ने से ज्ञात होता है कि मौ० मुहम्मद बुसाल और मुन्शा अन्दुन्ता या नाग के मुन्लमाज प्रचारक बालका म बहूा दिनों से शोर मचा रह थे कि “इमन पादत दयानन्द के यह ताके उग दिने है कि याद रहेंगे” मग वा बालका आर्यसमाज के समस्त पठित गार्गीचन्द्र और ला० रशीगम तासे मिह गये। देर तक मुतादिमा हुआ। जा परि-राम हुआ, उस एक आणसमाजो समाचार पत्र के सारादाता ने इन शब्दों म दयान किया है—

“इम पर अहतेइस्लाम इधर उधर की बातें करन लगे, और तागे बगल फाकने। इजाजकार मुन्शियों ने यह फैसला किया कि मौताजी साहिब से पठित साहिब के सनातान का जभाव नहीं दिया गया, और फिर जन्सा वरगवास्त हुआ” इस मुन्शहिनो में मार वशीर हुसैन साहिब डिपुटी इन्सपेक्टर कोर् डकशाई बहने इस्लाम की तरफ से और ला० मुन्लाल साहिब डिपुटी इन्सपेक्टर कालकासमाजवातों की ओर से मुन्मिक नियत किये गये थे।

इस समय ध्यासोफिस्टों के साथ आर्यसमाज का सघर्ष जोर से चल रहा था, क्यों कि बनल अन्काट की समाज स जुदावगी अभी नई थी। पञ्जाब और युक्तप्रदेश के आर्यसमाचार पत्रों में धियासोफिस्टों की ‘पोल खोलने’ वाते लेख प्राय प्रकाशित हाते रहते थे।

बहुत से लोगो का विचार है कि विधर्मियों ने शुद्ध कान की प्रथा नई है। आयसमाज पहले दिन से ही अन्य मतवादियों का अपन धम-भजन म प्रतिष्ठ करने का लिए उद्यत रहा है। उसके किताब खुच रह है। पैशाख और ज्येष्ठ (१८८१) के आयसमाचार से हम निम्नलिखित सूचनाए उद्भूत करते हैं—

( १ ) भार्यसमाज अगुतासर ने धर्म सत्र ३५ कादायिा को जो, पूरा हुआ हैगार्द और मुमनगा बने हुये थे, भार्य बनाया ।

( २ ) रियासत राजगढ़ में भी बहुत से मुमनगा बनाये गये ।

( ३ ) अन्धकार निरटोरिया पत्त से काण्ड हुआ कि भार्यसमाज रावगापिबडी उपदेश से दो माहिनाम बहाजे इस्लाम १ गजद्व मुहम्मदी को तर्क बगक, वीर न अन्निगाय किया ।

शुद्धि के सम्बन्ध में निम्नलिखित समाचार भी कर्तोयजक है । "श्री महा शाहिब बहादुर पाजौर काश्मीर न धर्मसभा में यह काण्ड पास फग दिया है कि हिन्दू ने मज्जब गौर का अखिन्कार किया हो, वह तोस बरस तक अघनी निरटरी शामिन हो सकता है । बगारस के पयिडतों ने भी इसकी ताईद में श्री महाराज क शानेश की सपरस्ती से इस कितम की व्यवस्था दी है,"

## ८. परोपकारिणी सभा का अधिवेशन

१८२३ ई० के आरम्भ में श्रुपि दयालन्द मेवाड में घोषोपदेश कर रहे थे वरामा का अतिक्रमण करनेवाली सूदनदधि ने अपने जीवननाटक का अन्तिम अ समाप्नप्राय देख कर श्रुपि ने उस समय परोपकारिणी सभा का निमाण किया था उसकी चर्चा हम दूसरे खण्ड में कर आये हैं । प्रशि दयालन्द का अन्तकाल समय से पूर्ण ही आ गया, इन कारण समाज का जैसा सगठन वह बगाना चाहते थे, पैना न बन सका । लोम्बक का पिश्वास है कि यदि भार्यप्रतिनिधि सभा और सावदेशिक सभा बन चुकी होती तो परोपकारिणी सभा की स्थापना न होती, पन्तु जैसी परिस्थिति थी, उसे देखकर अपने कार्य को जारी रखने और ग्रन्थों की रक्षा करने के लिए श्रुपि ने परोपकारिणी सभा को ही उचित मावन समझा । सभा में सभी ऐसे प्रान्तों के प्रतिनिधि रखने का उद्योग किया गया था, जिन में भार्यसमाज के पाव जम चुके थे ।

परोपकारिणी जिस उद्देश से स्थापित हुई थी, वह पूर्ण हुआ था नहीं, यह इतिहास के अगतो प्रसंग म हात हो जायगा, पन्तु इतना हम प्रारम्भ म ही कह देना चाहते हैं कि परोपकारिणी में भार्यसमाज का रहस-मयदत श मिल था, और यही कारण था कि भार्यसमाज के प्रजासत्तात्मक सगठन के साथ परोपकारिणी ने कभी ठीक २ मेल नहीं खाया ।

श्रुपि की मृत्यु से दो मान पीछे अजमेर में परोपकारिणी सभा का पहला अधिवेशन हुआ । २८ दिसम्बर को दोपहर के दो बजे मेयो कालिज में बनी हुई मेवाड

दरबार भी कोठी में ऋषि की वसीयत के ट्रस्टी इन्टूटे हुए । उपस्थिति पयात्र थी । कई समाज प्र-निविदा द्वारा उपस्थित थे । समासों ने ऋषि की वसीयत के अनुसार जिम्मेवारी का बोझ सिर पर लेना स्वीकार किया । मेरठ के रा० सा० रामसरनदास के स्थान पर महाराज श्री प्रतापसिंह सी आई ई को नियुक्त किया गया । इसी प्रकार कुच्छ और पूर्विया भी की गई । वैदिक प्रेस के सम्बन्ध में निश्चय हुआ कि उसे यथा सम्भा शीघ्र ही प्रयाग से अजमेर में लाया जाय । प्रेस के प्रबन्ध के लिये राव बहादुर रानडे, ठाकुर मसौदा, राय सुन्दरलाल, कपिराज श्यामलदासजी प० मोहनलाल गिन्गुलाल परड्या तथा प्रधान आर्यसमाज अजमेर की उपसमिति बनाई गई । वेद भाष्य की छपाई की देख भाल के लिये प० भीमसेन और प० ज्वालादास को बतन पर रखा गया ।

इस अधिवेशन में एक प्रस्ताव बड़े महत्व का हुआ । प० महादेव गोविन्द रानडे ने प्रस्ताव किया और रायनशादुर सुन्दरलाल ने अनुमोदन किया कि आर्यसमाजों को आपस में धीरे परोपकारिणी के साथ अविरत मनीषा लगे के उद्देश्य से एक प्रतिनिधि सभा का संगठन होना चाहिए । जब तक यह कमेटी न बने तब तक परोपकारिणी के समान ही जो आर्यसमाज के भी मेम्बर है प्रतिनिधि मान लिए जाय । जब प्रतिनिधि सभा बन जाय तब कुच्छ जगह, जो परोपकारिणी में खाली है, ऐसे ढग पर भरी जाय कि परोपकारिणी में कम से कम आधे प्रतिनिधि सभा के मेम्बर मुकरर हों । प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ ।

प० महादेव गोविन्द रानडे ने एक और भी बड़ा महत्वपूर्ण प्रस्ताव उपस्थित किया, वह भी सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ । प्रस्ताव यह था कि स्वामी दयानन्द जी की यादगार में एक दयानन्द आश्रम बनाया जाय, जिसमें कुतुबखाना, एग्लो वैदिक कालिज, किताबों की दुकान, अनाथालय, अद्भुतायम, प्रेस और लोकचरित्र सम्मिलित हो । इन शुभ कार्य के लिये ३४ सहस्र रुपया उसी समय लिखा गया ।







सेवापति थे, न फौज के जवान्म हूटकराउंर थ, न प्रिशाल तोरें थी, नौर न मशीनगनें थी । उन समय हरेक आर्यपुत्र्य निपाही था, और हरक सिपाही न हाय म धर्म की तलवार थी । वह युद्ध रास र मद्राओं में नहीं लग जा रहा था, वह शहर शहर, गाव गाव और घर घर में लटा जा रहा था । उस समय युद्ध की कला की नहीं, सत्य धर्म की जय हो रही थी । वह समय सचमुच स्वर्गीय था । नेतृत्व के लिये इन्द्रयुद्ध आम्भ नहीं हुए थे, सगठन का आग्रह्यक अत्याचार अदिवान था, सत्थाओं का लग जहाज के साथ नहीं लटकाया गया था । मनुष्यगन निरलताय उस समय भी नियमान थी, पान्नु उन निरलत मों को प्रकाशिन करन के जो प्रभावशाली सावन पीछे से बन गये, वह धर्मी नहीं बने थे ।

यों तो उस समय आयसमाज के सभी समासद् प्रचारक थे, पान्नु बुद्धेक विशेष प्रचारकों के नाम भी मिलते हैं । स्वामी आत्मानन्द सरस्वता श्रुति दयानन्द के पट्ट शिष्य समझे जाते थे । इस समय उनक उद्योग में प्रवृत्तता नई आयसमानें स्थापित हुई । आर्यसमाज में अन्य नव महात्माओं की अपेक्षा स्वामी आत्मानन्द जी का आग्र अग्रिक था । नई सन्तति ने उनका नाम नहीं सुना । प्रथममात्र क इतिहास में कुछेक कुरानियों ने बहुत से ऐसे नामों को तिगहित कर लिया है, जो भुजानवाय नहीं थे । जहा पर स्वामी आत्मानन्द जी जाते थे, प्रचार करते थे, और यदि पहिले से आयसमाज दिवमान न हो तो स्थापित कर देते थे । १८८५-१८८६ ई० के समय में जितनी आर्यसमाजे स्वामी जी ने स्थापित कीं, उनका नामा न ही कीं । स्वामी जी में अनेक गुण थे । आपका स्मरणशक्ति बहुत बल ती र् । आर्य समाज के चलते फिलत विश्रभोष थे । जहा आर्य एकवार घूम आये, वहा के प्रान्त, उपमान, मत्त, उन्नत हो, सोपावद्ध अदि की पटी दरपाठी जिहास पर रहता र् ।

दूसरे प्रचारक स्वामी देशगनन्दनी थे । म्याना महजानन्द ने र्भ इस समय आर्य समाजों में अच्छा प्रचार किया, किन्तु चार पाच साल के पीछे आवाग-उठ होकर आर्यसमाज से अलग होगया । १८८६ में हम उस समयसमाज का कष्ट दुग्गत पाने हैं । सतत धर्म सभा में देर तक बाल न गलता देखकर फिर साल भर पाछे उस आर्यसमाज में आन का चेठा नी । पश्चिमोत्तर प्रदेश की आर्यप्रतिनिधि सभा ने उसे उग्रशरक के स्थान पर रख भी लिया, पर तु पचास के समाचारपत्र ने बटे जोर का मन्तरा उठया, जिनमे पाश्चात्तर प्रदेश की प्रतिनिधि सभा की आर्य सुल गड, और अन्त न न एक मयाग मनुष्य क हाय से बन गया, इसत उस समय के आर्य पुत्रों को म बरख सम्मन्ना तीज अनुममशक्ति का बाव होता है । सम्मर्द प्रान्त की आर

गये, परन्तु दुःख है कि प्रथम जर्मनी होकर गये, गुरु बनकर नहीं। राजपूतान के कुर्जों वीर जानते हैं कि एक अर्थी और एक गुरु में क्या भेद है। वह अमनी और बकरी उपदेशक में भेज कर सकते हैं। याद रह कि राजपूतान में कदल वरी प्याजय सफलता प्रप्त कर सकता है जो उदयपुर और जोधपुर के मानी मस्तों पर लास मर सकता है। श्रुति ने राजपूतान के शैरो की नाक में नकेल डालदा थी, श्रुति के अनुयायियों में स जा लाग राजपूतान में गुरु बनने के लिये गये उनके दिरों में या तो आतक था, और या मरता था। ऐसे गुरुओं को राजपूतान में मान नहीं मिल सकता।

श्रुति दयानन्द ने राजपूताने में अनेक शिष्य बापे थे, परन्तु यह सबसे उचा रान महाशय प्रभाव के राज महाराजा सज्जनसिंह को दते थे। राजपूतान में उनका मुख्य शिष्य वर्तमान है। श्रुति ने मृत्यु के लगभग १ वर्ष पीछे महाराजा सज्जनसिंह की मृत्यु हो गई। इस मृत्यु से पण्डितारिणी सभा का सामे बडा स्तम्भ गिर गया और राजपूताने की अवसतन की पात्र उखड़ गये। शाहपुर जेरेग महाराजा शाहसिंह ने महाराजा के शिष्य दुःख का भुदाने का यत्न किया और आर्य समाज के काय में बहुत उसाह दिवया। अक्टूबर १९१६ मार्च १९२२ को शाहपुरा में आर्य समाज की स्थापना हुई।

जोधपुर राजपूताने की एक प्रसिद्ध रियासत है। राठौर राजपूतों का यह किमी समय गड था। यह वडा नभूमि है जहा आर्य समाज के प्रवक्तृ का विप रिया गया था और जग व्यभिचार और साम्प्रदायिक पक्षपात ने एका करके अपनी जड उखाडने वाले का प्राण हरण करने का बीटा उजाया था। ज्येष्ठ सम्बत् १९४० में दयानन्द का मिठनाद जोधपुर में हाणे लगा। उस समय प्रचार का प्रभाव जध जोधपुरावाश महाराजा श्री यशवन्तसिंह जी पर पन्न लगा तभी घातों की कुन्त्रणा का सावन ब्रह्मकुन्त्रणातंत्र गणना बना। जगदुद्धारक श्रुति ने सा पता टागत हा घातक का कुच्छ धन देकर भगा दिया, परन्तु आयजन्ता की उठना हुई आशाओं पर वज्रपात ही हा गया। श्रुति राज के नदून से मरानुचारों को श्रुति के सत्त्व का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथापि उा सब म से श्रुति के उद्देश्य को समझ कर, उसका आदर केवल महाराजा और प्रतापसिंह जान हा रिया। उस समय न वह ब्रिटिश नास थे और गौर्ण उन्हें जौ सा० एम० आई० की उच्च उपाधि धारण की थी। मेजर जनरल ता पया, उस समय क्या कोई यत्न भी साच नसता था कि उन्हें ब्रिटिश सेना में कोई वज्जान भी नसगा। परन्तु महाराजा का उपदेश शिउल का सा असर कर गया और यही प्रतापसिंह ने वेद ज्ञानमार अपना आत्मिक गुरु से मानसिक प्राप्ता की—

नोऽग्रनाभवत् न स्तु । “द्वारा शरीर पत्थर क तु-व ह्वा” और यह शरीर  
 वैसा वज्र क समान हो गया, उस कालुन की सहाद और फ्रान्स क मैदान हो  
 जानते हैं ।

महाराज प्रतापसिंह के नाम श्रुति दयानन्द का निम्नलिखित पत्र दोनों के गु-शिष्य  
 भाव को प्रकट करता है—

“श्री प्रतापसिंह जी आनन्दित रहो । यह पत्र बाबा साहब को भा दृष्टिगोचर  
 करा हीजियेगा । मुझ का इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमन् जेठपुराणेश  
 आलस्यादि म वतमान, आप और बाबा सह्य दासो रामयुक्त शरीर करते हैं ।

अब कहिए, इस राज्य का, कि निम्न सालह लाख से कुछ ऊपर गुण्य व्यते  
 है, गद्दा और कल्याण का उठा भर आप लोग उठा ग्य है । मुझ और त्रिगाड भी  
 आप ही ताना महाशयो पर निर्भर है । तथापि आप लोग अपन शरीर क आभार्य,  
 सरदार्य आद्यु बढान क काम पर बहुत कम ध्यान देत हैं-यह नितनी बड़ी शान्नीय  
 बात है । मैं चाहता हू कि आप लोग अपनी दिनचर्या मुझसे सुन कर सुधार लें  
 जिससे मागवाड को क्या अपन अयत्त दशभर का बर्याय करन म आप लोग  
 प्रसिद्ध होंगे । आप जैसे योग्य पुरुष ज त् म -हु। कम ज म्ते हैं उत्तम  
 पुरुष जितना अधिक जीवे उतना ही दश का -ति हान है ह० दयानन्द  
 सरस्वती, आश्विन ३ शनिवार स० १९८५ वि०”

महाराज प्रतापसिंह के निज शरीर सेवक महाशय लक्ष्मण क हृदय म पश्चिधर्म का  
 अकुल पक्षिते पढ़ता उगा । श्रुति दयानन्द क देहान्त क पश्चात् नितामी सवत् १९४२  
 मे नीन आयममाज स्थापन किया परन्तु पर त्त उपर्युति न हान के कारण ६ मास  
 म ही उसको समाप्ति होगई । सवत् १९४५ म स्वामी भास्करानन्द जा के  
 उद्योग से फिर आर्यसमाज स्थापित हुआ । श्री मह गज प्रतापसिंह जा उक्त स्वामी  
 का बडा आदर करते थे, इस लिय वह उक्त आदरमाग क प्राधान तन, जावपुर राजा  
 के महामन्त्री श्री पंडित मुकुन्ददेवप्रसाद जी ण, सी आई ई मन्त्री का और अन्य  
 व्युत समाजनों ने शेष अविचार तिप । उस समय जोधपुर का माग राजा ही सभ सत्यो  
 क सूची म सम्मिलित समझा जाती था और तात्कालिक आदेशानोंमें दो सदस्य से  
 अधिक जन उपस्थिति होना था । तत्कालमात्र पंडित ठाकुरदास, पंडित गणेशचन्द्र,  
 पंडित अचरोहरादि इसी समय उपदेशक नियत किए गए थे ।



उठकर हाथ में दे । और आक्षेपयुक्त मन निकाल मन रो रहा । अग्नि-जी जी बेपरे बेद क्या जने ? उन्होंने विलापत के कुछ दोषकों क बद मम्बन्धी उद्गार पठ रखे थे , उन्हा के आधर पर आक्षेप कर लिया था । जब बहुत देर तक दूट कर भी बेद में से कुछ न निकाल सके तो लोग हँस दिये । तब से अग्नि-जी जी कार्य समाप्त के दुश्मा हो गये ।

ब्रह्मसमाज में प्रसिद्ध होकर प शिवरायण ने अच्छे उत्सह से कार्य किया । आपकी बोलन की शक्ति अद्भुत थी । उग्र बगाल म श्री० केशवचन्द्र मन ब्रह्मसमाज के आचार्य बन रहे थे । बाबा और योग्यता क बल पर वह पूना ग रहे थे । ख बूने को देवता स बूजा रग परना है । प० शिवायण न भी आचर्य और पूज्य बनने का दिल म ठ नकर २० सितम्बर १८८२ क दिन स-यस ल लिखा । कुछ ही दिन पूरा दुसरा गिरह हुआ था । नई हू और अच्छो को सथ रेकर प० शिवायण अग्नि-जी न सत्यानन्द स्वाम बनकर भगवा धारण कर लिया, और घोषण दा कि 'मैं न दुनियासे मन्दास लिया है, ली और नकवो म नहीं ।' १८८३ में प० सत्यानन्द अग्नि-जी न धमनावा नाम का एक पत्र निकालना आरम्भ किया ।

नौकरी का त्याग और भगवा स्वामी प० सत्यानन्द अग्नि-जी को उस उच्चे आसन पर न गिरा सका, जिनको उन्हें चाह था । उग्र अन्भाव पहले से ही तबत्व के दावे की भूमिका था गहा था । अर्यसमाज के लेखक और प्रयाक पहरो दिनसे ही इस अद्भुत-।वन कथा को सग ल चना का दृष्टिमे दख गइ थे । समाचार पत्रों म आतङ्कारी जी क मन्यस और गुरुभव की आलोचना यग शक्ति की जाती थी । उन्हीं क उक्त के लिये 'म गदन' का चन्म हुआ ग । इस समय से प० सत्यानन्द स्वामी और अर्यसमाज म जो रूप आरम्भ हुआ, वह देर तक जारी रहा । वह तब तक सग पत गी हुआ जबतक कि ईश्वर या स्वान टोन के अधिपती ददगुरु भावन् के धार्मिक दावे दुनिव की दृष्टि म मूर गदित नहीं होगप ।

प्रचीन मतमतान्तों से मय्य बराबर चला जाता था, पर तु अभी तक विशेष जोरना लडाइ सन तन मसे ही आरम्भ हो गइ थी । इस समयकी विशेषता यह थी कि बहुत बडे शिखर्य अभी आरम्भ नहीं हुए थे । कारण यह प्रतात हाना है कि शिखर्य की बला में अभी कोई म निपुण नहीं हुआ था । शिखर्य की पुगनी शला, जिनमें अदन्धेरक की युक्ति ही अमोघ शक्ति का काम पशती थी, अर्पि दयानन्द क अग्नि-जी गानों से निरन्त्री कइ गई थी । पुगने परिणतवा को वा दयानन्द क तरु तरो ने नर रेत कर दिया था । दयानन्द का वाक् प्रचल पाण्डित्यदृश पर विजला की तरह



लठानन स्वल्प जी ने एक प्रस्ताव किया था कि प्रान्त में आयप्रतिनिधिसभा स्थापित की जाय, पञ्जाबम भी आर्य प्रतिनिधि सभा की चचा उठ रही थी। आर्यसमाज लाहौर के मन्त्री ने यत्रों में एक चिट्ठी उपवाई था, जिसमें ऋषिदयानन्द के जीवन चरित्रकी सामग्री भेजने की प्रार्थना की थी। राजपूताने के रामगढ़ स्थान में कान्ठगम नाम के एक श्रद्धिभक्त ने १०००० मनुष्यों का गायत्रा देकर दयानन्दभक्त आर्यसमाजी बनावा। इधर पञ्जाबभूषण श्रीमती माई भगवती के उद्योग से अमृतसर तथा अन्य स्थानों पर स्त्री समाज बनाने का उद्योग हो रहा था। यह सब नई उमर और नई जिंदगी के चिन्ह थे।

इस जीवन की ज्योति को जीवित रखने के लिये आजकल के शतमुख उपदेशक समाचार पत्र भी जन्म ले रहे थे। आर्यसमाचार भारतमुद्रशाप्रवर्तक आदि पत्र श्रद्धि के जीवनकाल में ही निरल जुके थे। लाहौर से अग्रेजी के 'आर्य' नामके मासिक पत्र ने १८८२ ई० के मार्च मास में जन्म लिया। उसका सम्पादक मि० बारी थे। इस पत्र ने कई साल तक उपयोगी कार्य किया। पाछे से पत्र सम्पादन और वेदभाष्य द्वारा पैसा कमाने का उद्योग करने पर मि० बारी सब साधारण की दृष्टि में अप्रिय होगये और आर्यपत्रिका ने अग्रेजा पत्र की आवश्यकता को पूर्ण कर दिया, इस कारण 'आर्य' बन्द हो गया लाहौरसे Regeneration of Aryavart नामक पत्रिका निकली, उसने भी अच्छा कार्य किया। १ मई सन् १८८५ ई० में मुरादाबाद से भागभाषा का पाक्षिक 'आर्यविनय' निकलना आरम्भ हुआ। सन् १८८५ ई० के जून मास में लाहौर से आर्यपत्रिका प्रकाशित होने लगी, और उसी वर्ष के जुलाई मास में फीरोजपुर से आर्यगजट ने जन्म लिया। आर्यविनय को कुछ दिनों तक चमका कर प० रूद्रदत्त जी सम्पादक आर्य कलकत्ते चले गये, पत्रवेचारा बहुत दिनों तक सिसन्ता रहा। आर्यपत्रिका का विशेष उद्देश्य डी० ए० वी० कालिज के सबन्ध में आन्दोलन करना था। सिद्धान्तों के सबन्ध में प० गुरुदत्त एम० ए० तथा अन्य विद्वानों के लेखों से इस की उपयोगिता को बढ़ाया जाता था। आर्य गजट याह्रा था। इनके अतिरिक्त देशहितैषी ( हिन्दी ) मासिक अजमेर से, आर्यपत्र (उर्दू तथा हिंदी) बरेली में तथा आर्य प्रकाश (गुजराती मासिक) दम्बई से प्रकाशित हो कर आर्य जनता की धर्म पिपासा को बुझाने का यत्न कर रहे थे। इनमेंसे अधिकांश प्रायः मरान्तरोंकी उम्र ममी-काशों से ही भरे होते थे। पहिले से ही आर्य पत्रिका की लेखशैली अधिक सौम्य और अतिरिक्त दिवात्मक थी। अपने १२वें ही अंक में आर्यपत्रिका ने उस समय प्रचलित शास्त्रार्थ प्रणाली के विराम में एक लेख प्रकाशित किया था। सामान्यतया लाहौर के इस साप्ताहिक का संपादन बहुत योग्यता और गम्भारत



# तीसरा परिच्छेद

टी० ए० वी० कालिज

— १०५ —

१८८६ ई०—१८८७ ई०

१-उत्साह

एक पुरुष की गृहस्था मरचे से जन्मि होत होशबर परतोक को बनी जली है । एक क्षणभर के लिए पुरुष का प्रात हीन है कि उगता सगरा उड होगया, यह प्रेम का अमृत, तिमर विना जीवर नि सा है, गिराया हागा है । यह दुःख मन बान होना है । सत्य ही पडना भावग उड हागा है, पुरुष को हीन मरुति का मरुके पर पडती है, प्रमासृत का सगरा उबड बाता है, भी जो शून्य पैदा हुआ था, यह भर जाता है । प्रेम को एक केन्द्र तित जना है । तिसा बनी पुत्र को बोरी में लकर मर-पर चूपने लगता है । उत समय उठे यह पुत्र पडने से अधिक ध्याता प्रनेत होत रागता है ।

पक्षी अन्ध पंजाब क आर्यपुरुषों की हुई । श्रुति स्थापन क नियोग ने छासुर क निय आन पुरषों को निम्नच सा कर दिया । उनका प्रेम गिरावार होकर मरुतने लगा । २०० में दयानन्दरें लापैदिक कालिज का स्तान सामने आई । दरय म जो शून्य उत्पन हुआ था, यह भर गया । आर्य पुरुषों क प्रेम ता अथवा ठिकारा गिन गया । पञ्च व की आदसनाजों क सिरपर एक पागताप सा सगर हागया । उरें श्रुति का स्मारक, प्रचारक निजालन का साजन, वैदिक रथाप्याय को जगृत करन का उपाय— सत्र कुड डी० ए० वी० कालिज ही प्रनेत होत लगा । उम अनिय व अग्रद के साथ, जिसके लिए पत्राजी मरुत है, डी० ए० वी० कालिज की स्थापना का काय आरम्भ हुआ । पत्रा के आर्यसमजों म जो धाडे म कायकर्ता थे, उनका शक्तिया इसी ओर लग गई ।

इस जिन प्रचार्यगण का इतिहास गण परिच्छेद में लिख आये है, उग्रा एक वैदिक शिक्षणानुसंग का भाग्यशुक्ता को और भी अधिक सिद्ध कर दिया। प्रचार्य का उदरसाहकल में ही प्रचार्यों के अभाव का अनुभव हुआ करता है। उस समय सभी प्रचार्यक थे, परन्तु वह पगपग पर अनुभव करते थे कि जबतक शास्त्रों के जाननेवाले योग्य प्रचार्यक न हों तबतक कार्य सुव्यवस्था से नहीं चल सकता। विशेषतया लाहौर के आर्यपुरो में तो फालिज को अपने कार्यक्रम का पदना भाग बना लिया। डी० ए० वी० फालिज के आशय को फैलाने के लिये आर्यपरिषद् निकाली गई, और जिन 'सर्वकमेटी' को चर्चा पड़िले परिच्छेद में का चुके हैं उसके सिवा एत और सर्वकमेटी बनाई गई जिसके निम्नलिखित सम्म थे—

- १ ला० हालचन्द एम० ए० प्रभार
- २ ला० मदनसिंह बी० ए० सकेटरी
- ३ ला० अमोलकराम
- ४ ला० जीरमल
- ५ ला० मुखदयाल
- ६ ला० मटालिपाराम

यह कमेटी नियमपूर्वक अपने रजिस्टर रखती थी। एकचित् चन्द्रा आगरा बक में जमा किया जाता था।

इस कमेटी में एक नाम का अभाव रहता है। प० गुरुदत्त एम० ए० डी० ए० वी० फालिज के जन्मशताब्दी में स थे। शिक्षणालयसम्बन्धी आन्दोलन के दिमाग और आत्मियतग गुरुदत्त विद्यार्थी ही थे। उनका नाम कमेटी में नहीं दियाई दत्ता, जिसका कारण स्पष्ट है। यह आन्दोलन का गुरु ब्राह्मण समझे जाते थे। वह भाव के प्रचारक थे, उन्हें प्रबन्ध के सम्मेल से अलग ही रखा गया था। आर्यसमाज के सदस्यों पर अधिकतया फालिज के नाम पर आप ही अपील किया करते थे। इन दिनों ला० लाजपतराय हिसार में विकसलत कर रहूँ थे। डी० ए० वी० फालिज के लिये उनका उत्साह प्रारम्भ से ही प्रकटित होरहा था। आर्यसमाज

के मैदान में उनकी भाषणशक्ति की भी धाक ज़रूरी आरम्भ हो गई थी। उन्हें अच्छे बोलनेवाले समझा जाता था। कई स्थानों पर जाकर ता० लामपतराम जी ने ध्यान दिया और चन्द्रा एकत्र किया। १८२४ में साधु रमनाराम ने लाहौर में कालिज के नाम पर आटा फ़ड़वा डाला, जिसमें बहुत कामयाबी हुई।

## २-उद्देश्य

डी० ए० वी० कालेज के उद्देश्यों के सम्बन्ध में स्वयं बुद्ध न बहकर हम कानिज का पहली पिपेट के कुछ उद्देश्य, ला० लामपतरामजी की *The Arya Samaj* नाम की पुस्तक से लेकर देते हैं।

“ इन आदर्शक विचारों से प्रेरित होकर हम एक ऐसे शिक्षाशाला की स्थापना करना चाहते हैं, जो तत्काल प्रणाली के गुणों की रक्षा करता हुआ उसकी धुटियों को पूरा करे। मुख्य उद्देश्य यह होगा कि—

( १ ) राष्ट्रीय भाषाभाषा के स्वाध्याय को उत्साहित किया जाय और अशिक्षित लोगों को एक श्रमन्ता में बाधा जाय।

( २ ) प्राचीन सम्स्कृत के अध्ययन पर जोर देकर सदाचार और धर्म सम्बन्धी ज्ञान को फैलाया जाय।

( ३ ) नियमपूर्वक जीवनद्वारा स्वास्थ्य और शक्ति सम्पन्न जीवन को पैदा किया जाय।

( ४ ) आग्नेयी साहित्य से पर्याप्त परिचय पैदा किया जाय।

( ५ ) समाभौतिक और क्रियात्मक विज्ञान के प्रचारद्वारा देश की आर्थिक उन्नति को सहायता दी जाय।

यह घोषणा सम्पन्न के जारी होने से पूर्व की गई थी। सत्प्रा के बन जाने पर सोमाइटी को रजिस्टर्ड कराया गया। उस समय १८२५ उद्देश्य लिखे गये थे।





the Swami had laid them by devoting his life in cause but also because of the want of moral and religious education

यक्ताने उन अध्यात्मिक सेवाओं पर जोर दिया, जो स्वामी दयानन्द ने देश के लिये का है और नानासि पर कहा कि केवल इमलिये देशप्राशिया को कारिज की सहायता न करनी चाहिये कि वह स्वामीजी के सेनामय जीवन के उपकार के बोझ के नीचे दबे हुए है, परन्तु इसलिये भी कि इन समय सदाचार और धर्म की शिक्षाओं का नितान्त अभाव है ।

अगले वर्ष लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर प० गुब्दत्त एम० ए० न डी० ए० वी० कालिज के लिये अपील की । आपके ज्यारयान का साराश यह था कि ब्रह्मचर्य के बिना ज वन दु खमय होरह है । जो लोग ब्रह्मचारी नहीं रहते वह आत्महत्या के पाप के भोगी होते हैं । ब्रह्मचर्य तथा अन्य धर्मों का पालन करना असम्भव है जबतक कि हम वेद तथा शास्त्रों की सहायता न लें । डी० ए० वी० कालिज से देशको बड़ा लाभ होगा क्योंकि उसमें धर्म शास्त्रों तथा धर्म का ज्ञान कराया जायगा ।

यह अपीलें प्राम्भिक दशा की है । ज्यो २ समय घीतता गया, डी० ए० वी० कालिज को अपीलों में वेद और शास्त्रों का शिक्षा पर और भा अत्रिक बल दिया जाना था । १८८८ ई० में लाहौर आर्यसमाज के कार्षिकोत्सव पर फिर प० गुब्दत्त जी न ही अपील की । आपन बताया कि वर्तमान विज्ञान मनुष्य की अत्मा को शान्ति नहीं देसकता । वेद में ही शान्ति देने की शक्ति है । वेद के अध्ययन में ही समार का उद्धार हो सकता है । अन्त में व्याख्याता ने कहा कि जिस निमी सस्थाम वेद पढाने का प्रबन्ध हो, उसे महामता देना आर्यसमाज का कर्तव्य है । आपन विसा सस्था विशेष का का नाम नहीं लिया, लागोंने स्वय ही समझ लिया कि डी० ए० वी० कालिज के लिये अपील का गई है । कालिज का नाम क्यों नहीं लिया गया, इसका कारण पर हम इन समय प्रकाश नहीं डालना चाहते । हम केवल इतना ही दिखाना है कि जहा लिखित अपाना म कानूनी सावधानता को काम में लाकर डी० ए० वी० कालिज को केवल राष्ट्रीय सस्था बनलाना का यत्न किया जाता था, वहा सांजजिक मौखिक अपीलों में वेद शास्त्र ब्रह्मचर्य आदि के नामों को ही अविश्वस्य दोहराया जाता था । आर्य जनता लिखित भाषा को पेशीदगियों में नहीं जाती थी, वह दयानन्द और वेद दो ही आगे रखती थी । हम इस प्रकार प्रारम्भ से दो प्रकार की लहरों को चलता देखते हैं । पेशी दोनों लहरें धारे २ होकर पार्टी के रूप में परिचित हागई ।

## ४-उत्साह

उत्साह का स्थूल रूप दान है। किसी सार्वजनिक सत्स्या के लिये जनता में उत्साह है या नहीं इसकी परख आर्थिक सहायता से होती है। इस कमीठी पर पाख कर दी प्रभाव होता है कि आर्यसमाज में उस समय डा० ए० बी० कालिज के लिये वडा उत्साह था। श्रुतिका मृत्यु के कुछ समय पीछे ही लाहौर में जन समा हुई तो ८०००) एम्व हुआ। इस राशि में आर्य ललनाओं के भाभूपण भी शामिल थे। आज दंगन में ८ सहस्र की रकम छोटी दिवाई दत्ता है परन्तु उस समय की दशा में बहुत भिन्न थी। कपया आज से महंगा था, सार्वजनिक कार्यों के लिये दान देनेकी प्रादत लागों का नशा पडा था, और आर्यसमाज में धनी पुरुषों का अभाव था। लाहौर क मुग्री भा आर्य पुरुषों में स कोई भी उस समय लग्नपति कहाने क योग्य नहीं था। उस समय क ८ हजार आजके २० हजार क बराबर थे। १८८१ में हम समाचार पत्रा में पढत है कि कालिज के लिये २० हजार रुपया इकट्ठा होगया है।

पंजाब में आर्यसमाजों के उत्सवों पर डी० ए० बी० कालिज के लिये ही अपीलें होती थीं। अपील करण का काम प०गुरुदत्त एम० ए० और ला० लजपतराय के सुपु था। प०गुरुदत्त की याग्यता और धाग प्रवृत्त भाषण शक्ति जनता पर अद्भुत असर रखता थी। ला० लजपतराय की भोजस्वी वाणी प्रारम्भ से ही सत्कार पा रही थी। यभी २ ट्रिन्वुन के सम्पादक मि० मजुमदार भी डी० ए० बी० कालिज के लिये अपील किया करते थे। साधु रमताराम पंजाब के एक उत्साही कायकता थे। बालने में तेज, काम में अनधरु, स्वभाव में अखड, लगन क सच्चे साधु रमतागम न डी० ए० बी० कालिज के लिये कुछ सालों तक खूब काम किया। लाहौर में आटा फड चलाने का श्रेय साधुजी को ही था।

उस समय जिन दानियों ने पुष्कल राशिया देकर संसग के सचालकों के उत्साह को बढ़ाया, उनमें से दो के नाम त्रिशेणनया स्मरणाथ हैं। म्यानी के ठेकेदार मलिक ज्वालाप्रसादजी ने ८०००) का इकट्ठा टान किया। मलिकजी की आर्यसमाज के लिये दान की वट पहली किरत थी। अगली किरतें बरान्न आती रहीं। सन् १८६१ ई० के आर्यसमाज लाहौर के वार्षिकोत्सव पर आपन दो मौरुसी चाहात, दो मौरुसी मरानात, औरतों के कुछ जेरागत और बाकी कुल जायदाद के चौथे हिस्से की वसीयत ऐंग्लावैदिक कालिज के नाम कर दी थी। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी रकमें

समय समय पर आपमें अर्थ समाज को प्राप्त होती रही । डी ए वी कालिज के लिये दूसरो बड़ी रकम मैरो गाल के रईम बाबा नारायणसिंह ने प्राप्त हुई थी । आपने अमृतसर म डी ए वी स्कूल खोलने के लिए १० दस हजार रुपये नफ्त और ५० हजार की कौमल के गायदान में दिये थे, जो पीछे से उनके पोते ने नालिश करके आपिम लेलिये थे । आर्य समाज में मध्यम श्रेणी के लोगों का अधिकता उस समय भी थी और अब भी है । बडे र दान उत्साह को बढ़ाने के साधन होने थे, परन्तु खाना छोटी र राशियों से ही भरता था । कई आर्य समाजों निश्चिन्ता मामिक चन्दा देती थीं । मुल्तान आर्य समाज से ३०) मासिक, लुधियाना आर्य समाज से २१) मासिक, गुजरानवाला आर्य समाज से १५) मासिक के लगभग सहायता प्राप्त होती थी । अपनी थोड़ी सी आय का जितना अधिक भाग आर्य समाजी लोग दान में देते हैं, आपुण से शायद उतना दान दूसरे किसी समाज के लोग नहीं देते । सारा यह है कि डी ए वी कालिज, पञ्जाब के आर्य पुरुषों के लिये एक लाडला उद्देश्य हो गया । प० गुरुत्त जी की महत्प्रयत्न सहायता, ला० लाजपतदास जी की तेजस्विनी वाणी, और ला० हनराज जी की जीवनाहुति ने पञ्जाब की शिक्षित मडली को कालिज के पाछे पगल सा कर दिया ।

#### ५—लावा ह सराज वी० ए०

जिन व्यक्ति के स्वाधन्याग ने डी ए वी कालिज के सचालकों के उत्साह को कई गुना कर दिया, उनका जन्म होशियारपुर जिले के बजवाडा नामक कस्बे में हुआ था । आपके पिता का नाम बुर्जलाल था । जिस समय उनका देहात हुआ, हसराम जी के बडे भाई ला० मलकराम जी की आयु १५ वर्ष की और उनकी अपना आयु १० वर्ष की थी । पिता के मर जाने पर बडे भाई न ही बालक के लिये पिता का स्थान ले लिया । ला० मलकराम भला न लाहौर र आगर रेलवे में नौकरा कर ली, और हसराम जी पढ़ने लगे । परिश्रम और बुद्धि ने अपने फल दिखाये । आप आँखे विचारियों में समझे जाने लगे । बलदायस्था से ही आप के हृदय में धर्मप्रति उत्पन्न होने लगी थी । आपके स्कूल के हैडमास्टर ईसाई थे । एक रज वह भारतवर्ष का प्राग-थिक इतिहास (?) पढ़ते र कहने लगे, कि प्राचीन मग लोग पथरों और पृष्ठों की पूजा किया करते थे । आप ने इस निर्मूल स्थापना का विरोध किया । विवाद यहा तक बढ़ा कि आप को दो दिन के लिये स्कूल छोड़ना पडा ।

१८८० ई० में हसराम जी ने एंट्रन्स परीक्षा, और १८८५ ई० में डी ए परीक्षा पास की । परीक्षा के उत्तीर्ण विद्यार्थियों में आपका नम्बर दूसरा रहा । विद्यार्थीकाल में ही आप आर्य समाज के सत्संग में भाग जाने लगे थे । उन दिनों आर्य समाज लाहौर में एक दूर आन्ना का निवास था । वह एक सुगन्धित फूल था, जिसका साथ सर्ग होते



ही गुणवत् पेश हा जाता था। आदवा न के प्रयास १५० ई. में संधे। "सुवर्ण  
हस्ताज की उद्घाटन परिषद गिर, और उपाध्यक्षों की। इन उपाध्यक्षों का कार्य वही  
बाज ला० सार्वभौम जी १ हस्ताज जी का हस्तक्षेप को हल में शुरू करने और उद्घाटन  
कर दिया तो एक दूसरे महपुरुष ने उन में धर्म का धज बोधा। व लिन में प्रसिद्ध  
हो जाने पर ला० हस्ताज जी प० गुरुदत्त जी क संस्था में भागे। भाप प० जी के  
भागे गिने और स्थापितों में से थे।

१८८५ ई० में भाप दली सकलता के साथ ही ए परिषदा में उत्तीर्ण हुये।  
उधर पंजाब का कार्य साराजों में ही ए वी इतिहास के लिये उभाह उमड गहा  
था। जोश था, धन था, इच्छा थी, प नु नई माथा के लिये किसी दौरे-दौरे-दौरे के  
१ मिलने में सम्पूर्ण आस्थाता निर शकता ग प्रलभ होता था। उस समय ला० हस्ताज  
जी न अपने भाप को मेका के लिये पंग दिया। भाप १ दिना कुछ वेगन लिये  
डी. ए वी स्कूल में कार्य करने का इच्छा प्रकट की। अपनी दो भगन गिती। डी  
ए वी कास्तेज कमेडा का उत्तर प्रगुता किया, और प्रत्यक्ष एक जोश की  
रहा चल निरती। ग मन क का उस समय की परिभाषा में "ला० हस्ताज की  
उरा सुखीनी १ डी ए वी क लिन की मुन्दिर बना दिया।"

### ६-डी० प० वी० स्कूल की स्थापना

हमारा परिग्रम अन्त को पता भूत हुआ। १ जन १८८६ के दिन भावेसनाम  
गिर खाहौर में एक गण-जाति समा हुई। गिर ता यह था रि स्कूल की स्था-  
पना धूमधाम से हो जाय, परन्तु जून क सर्जिन का तागतक पत्र होने के लिये उचित  
नहीं समझा गया। व उरसा को किसी दूसरे समयक लिये मुन्तरा करके 'स्वल्पारम्भ'  
पर ही सन्ताप दिया गया। प० गुरुदत्त तियर्थी ए० ए० १ एक प्रभावशाली व्या-  
ख्यान में ए० ए० ३० फागिन क उद्देश्यों का वखान किया। अगले दिन धर्मसमा-  
मन्दिर में ही लटकों की भर्ती अरम्भ हो गई। जून मास में भर्ती होने स विद्यार्थियों  
से कोई प्रवेश को पास नहीं ला गई। प्रारम्भ में स्कूल का निर्माणादि धन्यापक  
योग किया गया।

१ ला० हमराज वी० ए० हैडमास्टर

२ ला० दुगासाद सेना मस्टर

३ भाई मोहनसिंह सस क अध्यापक

४ ला० देवीदयान गणित-अध्यापक

- ५ प० श्रीराम्य शास्त्री, प्रथम सम्स्कृत-ध्यापक  
 ६ प० मुनीगम विशाख, द्वितीय सम्स्कृत-ध्यापक  
 ७ प० गीराज विशाख, प्रथम हिन्दी शिक्षक  
 ८ प० मूलराज, द्वितीय हिन्दी शिक्षक  
 ९ प० हरनाथदास, प्रथम उर्दू शिक्षक  
 १० सा० प्यारेलाल, द्वितीय उर्दू शिक्षक  
 ११ सा० फगूराम

इस प्रकार ११ अध्यापकों की मदद से श्रुति के स्मारक की बुनियाद रखी। प्रारम्भ से ही यह स्कूल सर्मग गण्य का पारा बन गया। पहले ही सप्ताह में ३५० बालक भर्ती हो गये। दूसरे सप्ताह के अन्त में छात्रों की संख्या ५०० तक पहुँच गई। जून का महीना समाप्त होते-ही स्कूल में ६०० छात्र पढ़ने लगे। पहले क्षय से डी० ए० वी० स्कूल ने विद्यार्थियों में जा प्रथम प्रथम की, वह बढ़ती गई, यहाँ तक कि किसी दिन साहस से संख्या में सब से बड़ा स्कूल-डा० ए० वी० स्कूल और संख्या में सब से बड़ा कालिज डी० ए० वी० कालिज हो गया।

### ६—उन्नति और हठता

डी० ए० वी० स्कूल की स्थापना के पाछे उसकी प्रसिद्धि प्रति दिन बढ़ती गई। सचलकों ने शिरता उत्पन्न करने में भी कोई कसर न छोड़ी। २७ अगस्त १८८६ को दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक कालिज सोसाइटी की रजिस्ट्री करा दी गई। रजिस्ट्री के समय सोसाइटी के दो उद्देश्य बतलाये गये थे।

( १ ) पञ्जाब में दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक-स्कूल कालिज तथा आश्रम की स्थापना।

( २ ) शिष्य की शिक्षा का प्रबन्ध करना।

शिक्षा की निम्नलिखित विशेषतायें उद्घोषित की गई थीं।

( १ ) हिन्दू साहित्य ( २ ) प्राचीन सम्स्कृत साहित्य ( ३ ) और अंग्रेजी भाषा तथा पाश्चात्य विज्ञान के शिक्षण पर बल देना। रजिस्टर्ड हाते सभ्य सोसाइटी के मुख्य २ समासद्-निम्नलिखित थे।

सा० लालचन्द्र एम० ए०, प्लीडर चीफमोट प्रधान

सा० इश्वरदास एम० ए० प्लीडर रायलार्बिडी प्रधान

मलिक ज्वालासहाय ठेकदार

सा० मदनसिंह बी० ए० मंत्री

ला० सद्दास प्रगान आर्यसमाज लाहौर समासद

सा० काशीराम प्लीडर मुन्ताज "

प० गुरुदत्त एम० ए०

शय मूलराज एम० ए०

शा० गगाराम सिविता इजिनिपर

ना० द्वारिकानदास एम० ए० प्रिन्सिपल महन्त्र कालिन् पटियाला इत्यारि

आश्रम बनाने का निश्चय पहले से ही हो चुका था। मंगोरैयडम में भी आश्रम की चर्चा थी। आश्रम के नियम १८८६ में ही प्रकाशित कर दिये थे। नियमों की विशेषता यह थी कि आश्रम में रहते हुए कोई बालक विवाह नहीं करा सकता था। २० वर्ष से ऊची उमर का युवक आश्रम में नहीं आ सकता था। नियम प्रकाशित होगये, और उन पर विचार होता रहा। स्कूल के समीप ही ला० रतनचन्द्र दूगल का मकान किराये पर लेलिया गया। उसे यथासम्भव विद्यार्थियों के लिये उपयोगी बनाकर १२ अप्रैल १८८६ को आश्रम का उद्घाटन कर दिया गया। मा० दुगाप्रसाद जी आश्रम के अध्यक्ष बनाये गये। प्रारम्भ में ता थोड़े ही बोंडर भर्ती हुए परन्तु शीघ्र ही इतने प्रार्थना पत्र आगये कि अधिकार को सम्प्रीकृत करना पडा।



## चौथा परिच्छेद

### आर्यप्रतिनिधिमन्त्रों की स्थापना ।

१८८६ ई०—१८८७ ई०

#### १. वैदिकधर्मप्रचार

जिन दो वर्षों में पञ्जाब के आर्यपुरुषों ने अनश्रुत परिश्रम करके डी० ए० वी० स्कूल को स्थापित कर दिया, उन्हीं दो वर्षों में आर्यसमाज के संगठन को मजबूत बनाने के लिये भी बहुत सा कार्य हुआ । बहुत सा नई आर्यसमाजें स्थापित हुई, पुराने आर्यसमाजों के सभासदों की संख्या बढ़ती गई, और तनसे बड़ा काम यह हुआ कि आर्य प्रतिनिधि सभाओं का संगठन हो गया । आर्यसमाज के प्रचार और बलवर्धन की दृष्टि से भी यह दो वर्ष स्वर्गीय रहेंगे । यह आर्यसमाज के उत्साह का समय था । नया जोश आर्य पुरुषों के रुधिर को वेग से दौड़ा रहा था । दुनियाभर का विरोध परस्पर प्रीति को पैदा करके अत्यन्त के नाते को रुधिर के नाते से भी अधिव मजबूत बना रहा था । परस्पर मतभेद को क्षमा किया जाता था, आर्यपुरुष एक दूसरे से इतनी सहानुभूति रखते थे कि छोटे २ सवय कोई अंतर नहीं पैदा कर सकते थे । आर्यसमाज रूपी शिशु प्रकृति का चोटों को सहता हुआ निरन्तर उन्नति की ओर कदम बढ़ा रहा था ।

१८८६-१८८७ के दो वर्ष में लगभग डेढ़ सौ नई समाजों की स्थापना का पता चलता है । १८८७ के आरम्भ में हम आर्य समाचार पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ पाते हैं कि १८८६ में ६३ या ६५ नई समाज बनें । अगले वर्ष का हिसाब देखने में भी ऐसा अनुमान होना है कि ८० से कम समाजों की स्थापना नहीं हुई । इन दो वर्षों में आर्यसमाज के प्रचारकों की संख्या बहुत बढ़ गई । स्व० आत्मानन्द जी और स्वा० ईश्वरानन्दजी के अतिरिक्त कई नये सन्यासी भी मैदान में आ रहे थे । स्वामी स्वात्मानन्दजी की अच्छी धूम थी । वह विद्वान और सुवक्ता थे । आर्य समाजों के उत्सवों पर उनके व्याख्यानों को बड़े चाव से सुना जाता था, परन्तु प्रतीत होता है कि मौलिक सिद्धान्तों पर उनका मजबूत विश्वास नहीं था । चार साल बाद

१८६० में आपने आर्यसमाज को छाड़ दिया। उस समय लाहौर की आर्य परिषद ने लिखा था कि 'जब हम देखते हैं कि ईशान्दारी से वह आर्यसमाज के लिये काम नहीं कर सकते तब हम समझते हैं कि उनका भी आर्यसमाज से जुड़ा होना ही अच्छा है। उसमें उनका भी भला है और सत्य का भी भला है।'

साधु रमनाराम कट्टर धर्म-भक्त थे। आर्यसमाज में उनकी स्त्री और अनन्य भद्रा थी। उद्योग में आप अनुपम थे। गंगा और सागर मृगाने के कारण आपसे अपने और पराये सभी नागज हो जाते थे परन्तु आपके धर्मभाव का सभी जगह आदर था। प्रचार में और डी० ए० की कालिज की सहायता में आपने बड़ा भारी काम किया जिसकी प्रशंसा उस समय के प्रायः सभी समाचार पत्रों में मिलती है। आपकी भाषा अधिककठोर थी। उनकी शिक्षा-यत्न में आर्यपरिषद, सदन प्रचारक आदि साप्ताहिक पत्रों में पाई जाती है।

स्व० आतागम उस समय आर्यसमाज के उपदेशक थे। पौराणिक मत के खण्डन में छोटी २ दो एक पुस्तिकाएँ भी उन्होंने लिखी थीं। इन्हीं में कई आर्यसमाज स्वा० आतागम के आगम से ही स्थापित हुए थे। प्रतीत होता है कि उस समय भी उनके विचार दृढ़ नहीं थे, क्योंकि इस दो वर्ष पाँचे आर्यसमाचारपत्रों में यह घोषणा मिलती है कि स्वामी आतागम के मिथ्याता के लिये समाज उत्तरदाता नहीं है। पीछे से स्वामी आलखान कट्टर मनानन्दजी वरकर आर्यसमाज से जखाज करते रहे और अन्त में मरुगी बन गये। स्वामी भारकरानन्द ने गुजरात का और प्रचार किया था, और स्वामी प्रकाशानन्द पञ्जाब में भ्रमण करते थे। साधु मनानन्द स्वामी गिरानन्द, कृष्णानन्द भद्रानन्द गौजानन्द गायतानन्द आदि अन्य अनेक सन्ध्यासी में आर्यसमाज का प्रचार करते हुए देश में विचरते थे। गुरुम्य व्याख्याता दासजी में ५० गुरुम्य एम ए लाला लालनारायण और भगत रमल के नाम बार बार आते हैं। पश्चिमे तर प्रदेश में भी और सहारनपुर के अनेक महात्मा प्रचार के लिये दौरे लगाते रहते थे।

## २. लन्दन में आर्यसमाज

उस समय आर्यसमाज के अतुरा विचार रखने वाला प्रत्येक पुरुष अपने आपको प्रचारक समझता था। वह अपने कार्य करता था मानों सत्तार भर को आर्य बनाने का बोझ उसी पर है। इसका ही प्रमाण यह है कि जो थोड़े से आर्यपुरुष शिक्षा प्रदत्त कान के लिये इंग्लैण्ड में पहुँच गये थे, उन्होंने वहाँ आर्यसमाज की स्थापना कर दी। पञ्जाब से ला० लक्ष्मीनारायण वैरिस्ट्री पान करने विस्तारित गये थे। उनके

हृदय में आयसमाज का जोश था । उन्होंने आर्यसमाज का स्थापना के लिये बहुत उद्योग किया, जो शीघ्र ही सफल हो गया । १८ अप्रैल १८८६ को लन्दन की आयसमाज का पहला अधिवेशन हुआ । ला० गण्टराम और मर्दान् कृष्णसिंह के निवास स्थापना पर ६ सज्जन उपस्थित हुए । उन ६ में से एक लार्ड के पुत्रो मत्त आयसमाजी ला० रोशनलाल भा थे । ५ सज्जन लन्दन आयसमाज के प्राग्भिक सदस्य बने ।

स्थापना के समय कवल ६ समासद् बने थे, परन्तु शीघ्र ही लन्दन की भारतीय मसदली का हृदय उस ओर खिंचो लगा । साप्ताहिक अधिवेशनों में अच्छी उपस्थिति होने लगी । दृष्टान्त के लिये हम पाचों साप्ताहिक अधिवेशनों का दृष्टान्त देने हैं, जिस से प्रतीत होगा कि लन्दन में विद्यमान मसदरों का उद्योग निफल हीं ज रहा था ।

६ जून १८८६ को आयसमाज का एक अधिवेशन हुआ । हाजिरी में स्याह नाम देवग आगे 'इत्यादि इत्यादि' लिखा है । प्राग्भिक मसदर पथना के भजन हुए । ला० उमाशंकर ने आर्यसमाज के उद्देश्यों के सम्बन्ध में एक निबन्ध पढ़ा । उसके पश्चात् लाला (?) वैकटगमन गायड ने [ Ode to India ] नाम की एक अष्टोत्तरी कविता गायर सुनाई । कविता के पीछे ला० रोशनलाल बी० ए० का आर्यसमाज के तारों निधम पर अष्टोत्तरी में यस्याह हुआ जिस म दली का शिक्षा पर बल दिया गया । इस ब्याख्यान के पीछे मि० एक पिन्काट न खटे हो कर जो कुछ कहा वह २५ जून १८७६ की आयसमाज में निम्नलिखित शब्दों में दिया गया है ।

" He himself has read Rigveda and discovered the most natural method of its arrangement. There must be no doubt of its contents being true. He can without hesitation endorse the speech of Lala Koshan Lal."

सरदार किशनसिंह कपूर ने दोनों वक्ताओं के कथन की पुष्टि की । अन्त में आर्यसमाज के नियमों की कापिया वितरण की गई, और भजनों के साथ समा समाप्त हुई ( आयसमाज २७ जुलाई १८८६ )

आर्यसमाज के अधिवेशन नगर जारा रहे, और प्रवासी भारतवासियों की रचि उधर बढ़ती गई । साप्ताहिक अधिवेशनों में प्रताष्टिन भारतगती शामिल होने लगे । एक अधिवेशन में प० विशन नगाथण दर न निबन्ध पढ़ा । दूसरे अधिवेशन में मि० दादभाई नौतोजी महाराष्टी कूरमिहार आदि की उपस्थिति में वैदिकधर्म के महत्त्व पर मापण हुए । महाराष्टी कूरमिहार ने आर्यसमाज के उद्देश्यों से महानुभूति प्रकट की ।

और उन्हीं भगदिकों हान स्वीकार कर लिया। आर्यसमाज के सप्ताहिक अधिवेशन में शामिल होने के लिये प्रो० मैक्समूलर का भी निमन्त्रण भेजा गया था। प्रो० मैक्समूलर जन्म से जर्मन थे, विराम में प्रव्रज थे, और विचारों से एशियाटिक थे। योरोपियन भाषों का मिश्रण हाथ हुए भी प्राफेसर् मैक्समूलर के मन का भुक्तान पूर्व की ओर था। आर्यसमाज के निमन्त्रण पत्र के उत्तर में आपने निम्नलिखित पत्र लिखा—

\* भावसफाड ता० १४ मई १८८७

प्रिय महाशय ! लन्दन आर्यसमाज के जन्मे में शामिल होने और योग्य सेवा करने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होती। मुझे मालूम है कि श्री स्वामी दयानन्द सारस्वती महाराज का उद्देश्य बहुत श्रेष्ठ और अच्छे थे। उन्होंने अपने देशवासियों को बड़ा लाभ पहुँचाया है और अगर यह महात्मा कुछ अधिक ब्रह्म तक जिन्दा रहते तो भारतवर्ष के लोगों को और अधिक लाभ पहुँचाते। जो कुछ वह करना चाहते थे, वह सब आपुणों को करना चाहिये। कबल वेद मातृवत्त्ववा होकर सन्तुष्ट न होना चाहिए, बल्कि स्वामी जी के अनुरूप उससे आगे काय करना चाहिये जहाँ तक स्वामी जी कर गये हैं। मैं हर तरह से इस काय में आप लोगों की सहायता करने को राजी हूँ। अजबल ब्रह्मसफाड में परीक्षा के निरीक्षण के काय में लगा हुआ हूँ, और जब परीक्षा समाप्त होगी तब आपन घर जाऊँगा। क्योंकि मेरे घर के लोग इंग्लिस्तान से चले गये हैं। परीक्षा के कारण मैं उनके साथ न जा सका। परीक्षा की तैयारी में लगे रहने के कारण मैं अभी समय नहीं दे सकता, किसी दूसरे समय अवश्य आर्यसमाज के समासदों से परिचय का लाभ प्राप्त करूँगा।

आपका द्वितीय

मैक्समूलर

लन्दन आर्यसमाज ने एक और बड़ा कार्य किया, जिससे उसकी चर्चा इंग्लैण्ड के समाचार पत्रों में भी पुन हुई। चन्द्रनामह नाम का एक गरीब ब्राह्मण लन्दन में रहता था। वह हस्पताल में भर गया। हस्पताल के अधिकारियों ने लाश को लावारिस स मकानर ईसाई ढग पर दफनाने का निश्चय किया। जब यह समाचार आर्यसमाज के अधैतनिक मन्त्री ला० लक्ष्मीनारायण को मालूम हुआ, तो वह हस्पताल में गये और शव को जलान के लिए मांगा। हस्पताल के अधिकारियों ने शव आर्यसमाज के सुपुर्दे कर दिया। लन्दन के बाजारों में वह एक अदभुत ही दृश्य था। अर्थी के साथ बहुत से भारतीय, और अनेक अग्रज नग्नारा जा रहे थे। वह एक खामा मातमी जलूस बन

गया । अर्थात् पर 'आर्यसमाज की जय' 'हिन्दुस्तानी नौकर' यह शीर्षक लगा हुआ था । जनता पर इसका अभुन प्रभाव पडा । लन्दन में यह पहला ही अक्षर था कि एक लारासि भारतवर्षी को वारिस बनाने का साइस भागतासियों ने किया । उस से पूरा कई धनीवानी भारतवासियों के अन्त्येष्टि सस्कार भी ईसाई रीति पर हो चुके थे । शशानभूमि पर दाहक्रिया को दूर कर तो बहुत से अंग्रेजों पर बहुत ही अच्छा अक्षर पडा । इस मृतक सस्कार पर (५०) खर्च हुए, जो समाज के पुरुषार्थी मन्नी ला० लक्ष्मीनारायण की जेब से ही निकले ।

### ३ मुरय २ आर्यसमाजें

इस समय पंजाब में लाहौर अमृतसर और जालन्धर पश्चिमोत्तर प्रदेश व अवध (भाजकल का संयुक्त प्रान्त) में मेरठ और सहारनपुर और पश्चिम में बम्बई-यह आर्यसमाजें मुख्य थीं । दिल्ली की आर्यसमाज भी उठ गयी थी । इनमें से लाहौर की आर्यसमाज अपने शिक्षा सम्बन्धी जोश के लिये विख्यात हो रही थी । उस समय के समासदों में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती थीं । कुछ सज्जन जिन्में ऊंची अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किये हुए सज्जन मुख्य थे, शिक्षा को निरूपण ही आवश्यक समझते थे, वह मानते थे कि यदि आर्यसामाजिक वातावरण में अच्छे ढंग पर कोई भी शिक्षा दी जाय तो वह वैदिकधर्म पैदा करने का साधन बन सकती है । इस प्रवृत्ति के सज्जनों में शिक्षा का स्थान अत्यन्त उच्च था । दूसरी प्रवृत्ति के नेता प० गुरुदत्त एम ए थे, और अनुपायी सर्वसाधारण थे । इन लोगों में शिक्षा को साधन समझ कर ही कालिज के लिये प्रेम पाया जाता था । वह शिक्षा को विज्ञान रूप में, वेद प्रचार के रूप में, आदर दते थे । प्रवृत्तियाँ दो थीं, परन्तु फल एक ही था । आर्यसमाज लाहौर इस समय शिक्षा की धुन में था । उसती सब शक्तियाँ डी ए बाँ स्वरु की ओर लगी हुई थीं । आर्यसमाज लाहौर का वृत्तान्त शूरा रहगा यदि उसके उस समय के प्रधान सा० सईदासजी के विषय में कुछ शब्द लिखे जाय । सा० साईगमजी उन आर्य पुरोहों में से थे, जिन्से निकलकर मनुष्य अपने आपको ऊँचा उठता हुआ समझता है । आप न व्याख्याता थे, और न लेखक । आपकी शक्ति सदाचार तथा बान्नीत में थी । निम नखुवरु को दो चारवार आपके साथ टहगन का मौका मिला, वही आपके कानू आजाता था । उस पर वैदिक धर्म का रंग चढ़े बिना नहीं रहता था । सा० साईगमजी की हस्ती आर्यसमान लाहौर के लिये धन्य थी ।

पंजाब का दूसरा मुख्य आर्यसमाज जालन्धर का था । जालन्धर का आर्यसमाज अपने प्रचार काय के लिये लाहौर की प्रवृत्ति शिक्षा की



थी, जैसे ही १८४४ का प्रवृत्ति प्रसार और खुशबू की आरंभ थी। आयसमाज जालन्धर के मन्त्री ला० दयाशंकर का उपाय प्रयत्न था। उसी सहायताके विषय उनका सम्बन्धी और मित्र ला० मुन्शिरामजी भीमैयान में आरंभ थे। यह जोड़ी जालन्धरके आर्यसमाज को घसीटकर आगे लेजाता का यत्न कर रही थी। ला० दाराजी का भक्तिभाव, धर्म प्रेम और हृदयिधाय, ला० मुन्शिरामजी के प्राणद साहस, धार्मिक भावना और उग्रभक्ति के साथ मिलकर जालन्धर को लाहौर से भी पाग ले जाने का चिन्तित किया था। १८२६ के आरम्भ में जालन्धर आर्यसमाज ने मण्डलिया बनाकर आसपास के प्रान्तों में प्रचार का कार्य आरम्भ किया। १८२६ के अक्टूबर में जालन्धर के काठ किरान चन्द ने आयसमाज को आरंभ से एक कन्या पाठशाला जारी की गई। यह सुदृष्टिवात कन्या महाविद्यालय का बीज था। ला० मुन्शिरामजी इस समय जालन्धर में मुन्शिराम थे, और आयसमाज के प्रान्त थे। १८२६ में आर्यसमाज लाहौर का जो उत्सव हुआ उसपर आयसमाज व्याख्यान भा हुआ था। इस व्याख्यान पर आर्यप्रवृत्ति की छिपछिप यह थी कि व्याख्यान 'eloquent' और 'forcible' था। आयसमाज व्याख्यानों में पहले से एक विशेष जाय पाया जाता था, जो एक आवेशपूर्ण शब्द के उद्गार में ही मिलता है। १८२६ के अन्त में आयसमाज जालन्धर का वार्षिकोत्सव हुआ, जिसमें बहुत पचास भी थी। उन दिनों उत्सवों पर महता अमाचन्द्रजा के मुर और रसीले भजनों की बहार रहती थी।

पश्चिमोत्तरप्रदेश में मेरठ और सहारानपुर की आयसमाजों के कार्यकर्ता विशेष उत्साह से कार्य कर रहे थे। मेरठ में आयसमाज पर निकलता था। प्रारम्भ से ही मेरठ को यह सौभाग्य मिला कि उसमें जन्मदत्त आयसमाज समाज के अधिकारी बने। यहां की आयसमाज के गतिविधियों पर दूर से आयसमाज पहुंचते थे। सहारानपुर में भी अच्छा काम हो रहा था। इलाहाबाद में वैदिक प्रेम था। इसके कारण दो पत्र पण्डित हमेशा यहां रहा करते थे।

जिले यद्यपि पन्नास का एक भाग है, ता भी उसमें आयसमाज का जीवन पृथक् ही रहा है। जिले में आयसमाज का कार्य शिवमभा के नाम से शुरू हुआ था। कई वर्षों तक मित्र समा ही आयसमाज के स्तम्भ का पूर्ति करती रही। पंछे से आयसमाज बना गई। ला० गिरधारीलाल वकील आयसमाज के प्रारम्भिक स्तम्भ थे। जब तक यह जायित रहे, तब तक आयसमाज को उखाड़ा बड़ा सहारा रहा।

दम्भई की आयसमाज का प्रथम आयसमाज होने का कारण जिस उपाय से कार्य करना चहिये था उसमें ऐसा नहीं किया। महता चण्डीराम इच्छाराम चकेले ही पश्चिम

में वैदिक सन्देश गुनान का प्रयत्न कर रहे थे । नरसारी म एक विशेष सभा नरुत बढ़ोदा नरेश न महता जी का वैदिक सिद्धान्तों क विषय पर व्याख्यान सुना, जिसका प्रभाव बहुत उत्तम पडा ।

## ४—आर्य प्रतिनिधि सभाओं की स्थापना

सगठन ही आर्यसमाज का जीवन है । ऋषि दयानन्द का दृग्दर्शिता और बुद्धिमत्ता का सबसे बडा प्रमाण यह है कि उन्होंने आर्यसमाज की दीवार को नियम की नींव पर खडा किया है । आर्यसमाज का सगठन ही ऐसा है कि वह विस्तृत और मजबूत हुए बिना नहीं रह सकता । सभा के निर्माण और प्रजा के अधिकार पर ऋषि न इतना बल दिया है कि जिन लोगों न योरप के इतिहासलेखकों की राय के अनुसार भारतवासियों की प्रजासत्ता की ओर उपेक्ष दृष्टि का सिद्धान्त रूप में मान छाडा है उन्हें आश्चर्यित होना पडना है । एक सभासद् आर्यसमाज की झाई है, और भूगण्डल के आर्यों का सगठन उसका लक्ष्य है । यह उदार और ऊचा विचार है, जो आर्यसमाज के सगठन की तह में काम करना है ।

ऋषि की मृत्यु के उपरान्त ही आर्यपुरुषों म यह चर्चा चल गई थी कि देशभर में बिखरे हुए आर्यसमाजों को एक सुत्र म पिरोना आवश्यक है । १८८३ ई० के अन्त में परापरकारियां सभा के अधिवेशन में प० महादेव गोविन्द रानडे न आर्य प्रतिनिधियों को एकत्र करने का विचार उठाया था । १८८४ क सितम्बर मास में इन्वर्ड आर्यसमाज के उपप्रधान सेवन्लाल कृष्णदास को ओर स सत्र आर्यसमाजों में एक पत्र जारी किया गया था । उस पत्र म देशभर की आर्यसमाजों को परस्पर परिचय तथा सहायता क लिये एक शृंगला में जीवन की उपयोगता दिखाने प्रस्ताव किया गया था कि एक 'प्रधान आर्यसमाज' बनाया जाय, जिसमें सत्र आर्यसमाजों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों । उस प्रधानसभाज की नियमावली में सम्पूर्ण देश को एक ही प्रान्त मानकर उसकी प्रतिनिधिसभा सगठित करने का प्रस्ताव सामने रखा गया था । आर्य सामाजिक समाचार पत्रों म प्रतिनिधिसभा की आवश्यकता की चर्चा बराबर जारी रही । मेरठ के आर्य समाचार में पश्चिमोत्तर प्रदेश व अरध और लाहौर की आर्यपत्रिका ने पजाब म प्रतिनिधि सभा के आन्दोलन को विशेष रूप से उठाया ।

आर्यपुत्रों के पत्न फलीभूत हुए । ४ तथा ५ अक्तूबर (१८८६ ई०) को लाहौर में पजाब के आर्यसमाजों के प्रतिनिधि एकत्र हुए । उस अधिवेशन म १६ आर्यसमाजों के प्रतिनिधि उपस्थित थे । नियमों और उपनियमों पर बहुत से विचार के अनन्तर अस्थायी रूप से अन्तरंग सभा के १५ सभासद् चुने गये । सत्रेदरी का काय लाला



मुद्रित काके समाजों में मेरठी जाय, और भगले अधिवेशन में निश्चय हो । काय-संचालन के लिये निम्नलिखित चुनाव हुआ ।

मुन्शी लक्ष्मण स्वरूप साहिब ( मेरठ )	प्राधान
प० मिहारीलाल	( मेरठ ) मन्त्री
सा० रामसरन्दास साहिब	( मेरठ ) खजानाची
बा० भानन्दीलाल साहिब	( मेरठ ) पुस्तकालय

### ५—परोपकारिणी सभा का अधिवेशन ।

१८८५ ई० में एक अधिवेशन काके परोपकारिणी सभा लम्बी ताग कर सो गई । इस समाचारपत्रों में सभा के आलस्य की चर्चा आरम्भ होगई । वैदिक प्रेम का प्रबन्ध असन्तोष जनक था । उसकी शिकायतों के भी दफ्तर तय्यार हो रहे थे । चारों ओर से प्रेरित किये जाकर १८८७ ई० के अन्त में मन्त्री जी ने परोपकारिणी सभा का अधिवेशन अजमेर में बुनाया । उस समय तक प्रान्तों की प्रतिनिधि सभाओं ने जोर नहीं पकड़ा था । इस कारण आय पुरषों का ध्यान परोपकारिणी सभा पर केन्द्रित रहता था । यह भी खबर थी कि परोपकारिणी सभा एक वैदिक आश्रम की स्थापना करने वाली है । यही कारण थे, जिनसे अधिवेशन पर भारत भर की मुख्य २ समाजों के प्रतिनिधि अजमेर में उपस्थित होगये थे । अधिवेशन २८, २९ दिसम्बर को था, परन्तु आय पुरषों की भीड़ २५ तारीख से ही आरम्भ होगई थी । पश्चिमोत्तर प्रदेश व अवध की आय प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन भी उन्हीं दिनों अजमेर में रखा गया था । इस कारण और भी अधिक रौनक होगई ।

परोपकारिणी सभा का अधिवेशन दो दिन हुआ । ६ सभासद उपस्थित थे । वैदिक आश्रम सम्बन्धी प्रस्ताव पर देर तक बहस होती रहा । अन्त में शाहपुगारीश धीयुत नाहरसिंह वर्मा की ओर से बा० जीवनराम साहिब ने अनामागर के किनारे पर विद्यमान उद्यान आश्रम के लिये भेंट के रूप में पेश किया । सभा ने भेंट को सहर्ष स्वीकार कर लिया । दूसरे रोज प्रातः काल ६ बजे से आश्रम का बुनियादी पत्थर रखने की विधि का समारोह था । प्रातः काल ही बाहिर से आये हुए और अजमेर के सज्जन इकट्ठे होकर भजन गाते हुए अर्चन मागर की आंग गाना हुए । उद्यान में पहुँचकर पहले ईश्वरभक्ति का भजन हुए, फिर प० गुरुदत्त जी तथा अन्य कई विद्वानों ने मिलकर वद पाठ किया । परोपकारिणी सभा की ओर से प० मोहनलाल विन्धुलाल पण्ड्या ने आश्रम की आधारशिला रखी, आधारशिला के साथ एक तोतल में वेदभाग्य के कुछ भक्त

भी रखे गये। उसी स्थान पर ऋषि की अस्थियों की स्थापना की गई। विधि समा हो जा। पर हिसार के वकील ला० लाजपतराय जी का एक प्रभावशाली भाषण हुआ। ऋषि के शिष्य रतलाम के दीवान प० श्यामजी हाथ वरमा ने एक छाटे से भाषण ऋषि का गुणानुवाद किया। इस प्रकार उत्साह और जीवन के चिन्हों के साथ आश की स्थापना की विधि समाप्त हुई।

दूसरे दिन के अधिवेशन में वैदिक प्रेम की दशा पर विचार हुआ। आर्य पुत्र का प्रेम से जा २ शिक्षार्थी थीं, वह पेश का गड। उनका कोई सन्तानपजनक उत्तर न दिया गया। अत्रिपुत्र लुट्टियों को स्वीकार करना पडा। यह समझकर कि शाह प्रान्ध क दूसरे हाथों में जाने से मुबार हो जाय, प्रेम की देखरेक का काम आर्यप्रति विधि समा मरठ के सुपुत्र किया गया। प्रतिनिधि सभा के मन्त्री ला० विहारीलाल इस वाक्य को स्वीकार किया।

### ६ विकटोरिया की जुबिली

१६ फरवरी १८८७ का दिन भारत में बड़ी धूमधाम से मनाया गया था। महाराणी विकटोरिया को राज्य करते ५० वर्ष व्यतीत हो गये थे। इस प्रसन्नता में जुबिली की गई थी। सारे भोप्रती सघाज्म में उन दिन ईश्वरप्रार्थना और धन्यवाद की मन्त्री लग गई थी। भारत राजभक्ति के मैदान में किसी से पीछे नहीं रहा, और अरानाज भारत में किसी से पीछे नहीं रहा। आर्यसमाजों में महाराणी विकटोरिया के जुबिली बड़े उत्साह से मनाई गई। उग दिन आर्यसमाज मंदिरों में विशेष समारोह की गई, ईश्वर से महाराणी के दीर्घ जीवन के लिये प्रार्थना की गई, गुरु को रोशनी हुई और अनेक समाजों ने महाराणी की अभिमान्दन पत्र भे दिये। आर्यसमाज के समाज पत्रों ने रगीन प्रशंसक अक निकाल कर अपनी राजभक्ति का परिचय दिया।

यह पत्रिका १८२४ में लिखी जा रही है। १८२४ में यह समझना पटिन है कि आर्यसमाज ने १८८७ में राजभक्ति विधान में इतना उत्साह क्यों दिखाया? यदि आर्य के नष्टों में नापा जाय तो आर्यसमाज का यह कार्य बहुत ही निचले दर्ज के प्रतीत होगा है। दिन में एक बार यही विचार हाता है कि जुबिली की घटना को एक शुभान योग्य दुर्घटना मान कर यही आदर और आगे चलें जाय परन्तु न्याय के समाना दूसरा ही है। न्याय चाहता है कि उन समय के आर्यसमाजों के कार्यपर पर्य्या हीर दृष्टि से विचार किया जाय। क्या उस समय के आर्यसमाजों ने व्यर्थ ही जुबिली के समारोह में भाग लिया? क्या वह सब धर्म के नीर योद्धा नेरल गुरुसम्पदी ही थे? जब गान्धि से इस प्रश्न विचार किया जाता है तो गान्धि होता है, कि उन समय के आर्य

पुरवों ने जो कुछ किया, सच्चे विचार से किया, और ईशान्याग के वा... उस समय के भाव पुरवों के कार्यों की पराक्षा ३७ वष पीछ की कर्तव्य... करनी चाहिये ।

उम समय के भाव्य पुरवों ने महाराजा विकटोरिया की खुशियों में... लिया । कारण यह था कि उम समय तक लगभग साग मारावों... रखना था कि दश का कन्याया अग्नेजी राज्य में हा है । अग्ने... पहले की भराजकता की खायते अमा नई थीं, जो अग्ने... यह ग्लैडस्टन के समय के उदार सरकारों को लिये हुए थ, और... यह थी कि विकटोरिया एक असाधारण महिला था । य... पर स्त्री भिन्न प्रकार अपना अमृतमय हाथ रख मरता है । य... अग्ने राजाओं की तरह नाचीज नहीं था । विकटोरिया के प्रति... भक्ति को, उसमें व्यक्तिगत भक्ति का भी उद्भवना मरा था ।

यह तो थे सामान्य कारण, जिपर उस समय के भाव्य... आश्रित थी । एक विशेष कारण भी था, जिससे आर्यसमाजी... राज्य का विशेषतया अनुगृहीत समझन थे । ता... घटनायें अकितसी होहा थीं । हिन्दू प्रजा अक्बर को मू... गजेव घाद था । वह समझते थे कि यदि अग्नि दया... स्वतन्त्रता से प्रचार न कर सकते । अग्नि... दिया था । प्रारम्भ में आर्यसमाजा ने जिस प्रकार का चौमु... लिये धार्मिक स्वतन्त्रता एक बच बके समान प्रा... तो यह विचार भी निमूल ही प्रनात होता है । यदि... होकर मुसलमानी राज्य के समय में होते तो यह किसी... कर वैदिकधर्म का जयनाद बुला देते । सिख धम अग्नेजी... राज्य में हा फैला था । अग्नि अपना रास्ता आप निराल... प्रगाह को हिमालय की चट्टानें बन्द नहीं कर सकती ।... जो जिन दशा में भी पड़ता, क्रान्ति पदा करके रहता ।... कि आर्यसमाज का प्रारम्भिक प्रचार इतना निर्मित न होना... एक धार्मिक सस्था न रहकर एक विशाल क्रान्ति क... हास में कल्पना का अधिक स्थान नहीं है । यह... पुरवों का यह विश्वास था कि अग्नेजी राज्य न भाग... चौमुखी लडाईं में दृश्यमान धार्मिक स्वतन्त्रता व... स्वतन्त्रता...

की ओर स महागुरु की सेवा में जो अभिनन्दन पत्र पेश किये गये थे, उनमें यह बात स्पष्ट होजाता है। राहौर आर्यसमाज के अभिनन्दन पत्र के तीसरे पृष्ठ पर म. स्कूल, यानिज, तार, जिज्ञा और शान्ति आदि के लिये अंग्रेजी राज्यकी प्रशंसा थी और चौथे पृष्ठ पर निम्नलिखित शब्द थे—

*"But the most precious and inestimable boon of Your Majesty's reign for which the Arya Samaj is especially grateful, may to which it owes its very existence, is the incalculable Blessing of religious toleration"*

आगे—

*"It was under spirit of religious liberty which invests and pervades all departments of Your Majesty's government that the founder of the Arya Samaj Swami Dayanand Saraswati was able to preach his inner convictions for the benefit of his countrymen, and to awaken them to the knowledge of theistic worship inculcated in their most ancient and sacred scriptures—the Vedas"*

परन्तु सबसे अधिक कीमती और अनुलनीय प्रस्ताव निम्नके लिये आर्यसमाज आपके राज्य का कृतज्ञ है, और निम्नके बिना इसकी सत्ता भी सम्भव नहीं थी, धार्मिक स्वाधीनता का है।

धार्मिक स्वाधीनता की उम उन्नतता के नाचे ही, जिसने आपकी सरकार के सब विभागों का स्थापन रखा है, आर्यसमाज के सम्स्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती देश-वासियों के दिव्य अथवा हार्दिक विश्वमों का प्रवर्धन कर सकें, और उनसे प्राचीन और पवित्र बनी में प्रतिपादित पञ्चेश्वर पूजा की ओर उन्हें प्रेरित कर सकें।

आर्यसमाज मेरठ ने जो अभिनन्दन पत्र पेश किया था, उसमें निम्नलिखित शब्द थे—

‘जिन वक्त से हज़ार मल्ला मुअज्जिमा केसो हिन्द ने भारतवर्ष की सत्तनत को अपने कब्जे में लिया है, उन वक्त से यहा पर धनन व आमन-नीर विप्राजत

जान व माल और मजदूरी आजाद और इजाजत तात्मीम और बहुत से मुफ्तीद काम हमारे लिये मुफ्त्या हो गये हैं, जिन्होंने कि जनाब पैम्परेहिन्द की सच्ची मुहब्बत हमारे दिलों में पैदा कर दी है ।”

यह विचार था, जो अर्यायुक्तों को राजमत्त बना रहा था । एग यह समते हैं कि उन लोगों ने बहुत अच्छी तरह अंग्रेजी सरकार के स्वल्प को नहीं समझा था, परन्तु उनका भाव उतम था ।

### ७ सामाजिक कठोरता और सहिष्णुता

वह समय वीरता का था । आर्य पुरुषों के लिये कर्म कर्म पर रूकावट थी । हिन्दू समाज आर्यसमाज को सन्देह की दृष्टि से देखता था । यदि लड़का आर्यसमाजी बनता था तो माता को नाराज करके और माता को रूजाकर, यदि बाप आर्यसमाजी बनता था तो वह लड़के और लड़की को नाता न मिलने का मतलब भेदाता था । विरोध के पन्हाड़ रास्ता रोकते थे, परन्तु आगेत्व का उत्साह उनके सिरों पर से लावकर निकल जाता था । वीरता क दृष्टान्त देना कठिन है क्योंकि उस समय जो भी हिन्दू सनातन धर्म को छोड़ कर आर्य आर्यसमाज में प्रविष्ट होता था, वह कुछ न कुछ धीरता दिखाता था । अनेक उदाहरणों में से हम केवल एक ही दृष्टान्त लेते हैं । मेरठ के आर्यसमाचार से हम निम्नलिखित वृत्तान्त उद्धृत करते हैं—

“खन प० नटरासिंह जी उपप्रधान आर्यसमाज नगीना

अखिदमत जुमला साहिबान व मेम्बरान आर्यसमाज आर्यावत, नमस्ते

आप सब साहिबान इस समाज की कतरबाई पर गौर फरमायें, और यह यह है । हरफरों बशर को लाजिम है, यानी जो शख्स अपना नाम आर्यसमाज के सभासदों में लिखवाये और सभा का मम्बर होना चाहे, उस साहिब का कोशिश और धीरज पैसा रखना चाहिये जैसा कि मोग्वाभिंह उपदेशक गोरक्षिणी सभा और प्रतिनिधि आर्यसमाज नगीना जिला बिजनौर ने रखा, और जिस कतर तकलीफ और रजिश इस शख्स को पैदा हुई है, उसको मुक्तसिर तौर पर बयान करता है, मगर उस शेरमर्द ने कुछ ख्याल न किया । अन्न देविग । अन्यता तो जिम मकान में यह शख्स रहता था, उस मकान से इस शख्स को इसके रिश्तेदारों पोप लोगों ने बाहिर निकाल दिया, परन्तु आर्यसमाज का आना जाना इस शख्स न न छोड़ा । और सिवाय इसके पोप लोगों ने और बहुत सी तकलीफें दीं, उभाना पान करना पड़ा सामकता है, और किसी तरह से पोपों का फानू इस शख्स न नहीं चलने दिया । मगर एक





हरिद्वार पर गोरक्षा का प्रबन्ध इत तर्ह किया गया था । वहाँ के ब्राह्मणों को यह पता गया था कि जो यात्रा भगवाण में स्नान करे उससे यह संकल्प भगवानी में बगन - वे कि मैं अयोध्यान्त दिनहीं के हाथ गाय १ वेनृगा और वह जो बुद्ध गोरक्षा के निमित्त दान दे उक्त आदमी से यहा पर जगत में गोरक्षा बनाई जावे, जिसमें वह गारे और गोरी पलने रहें और अन्न गौर्य आवे, वह भी उक्त आदमी से मोल लेकर गोरक्षा में छोड़ दी जायें । एक आता भी जो एक आदमी से लिया जाता तो १२००० हजार रुपया हर साल गोरक्षा के दान पात्र १ आता, क्योंकि दो लाख आदमी साल भर में गोरक्षा को खाते हैं, सो यर निपण हरिद्वार क ब्राह्मणों ने स्वीकार करके एक कुरदा गोरक्षा के नाम से ब्रह्मकुण्ड पर खडा किया था, और तख्ता जिनपर गोरक्षा के निपण लिखे थे, हर की पौड़ी पर खडा किया था और यह लिखा लिखी गई थी कि जो यात्री गंगा में स्नान करेगा उसका पुरोहित भगवटे के नीचे गोरक्षा का संकल्प करके ब्रह्मपूर्वक दानपात्र में दान दिये, और इस धन से गोरक्षा याई जावे, उसके मालिक हरिद्वार क ब्राह्मण पच हगें । प० भगवाणत ज्योतिषी फनखल को इसका अभ्यक्त किया गया था । उस लेख पर मेरे और सब ब्राह्मणों के हस्ताक्षर कराये गये थे और सब काम जारी किये गये थे । मैं इन काम को जारी करार गोरक्षा की पुष्टि के निमित्त चन्द्रा लाने के वास्ते सहारनपुर की तरफ दशों भ गया था, और यह सब हाल कई एक अखबारों में भी लिखना दिया था । जिस समय यह खबर बर्मसभा जगाधरी जिला अम्बाला, और धम्मभा रुड़की जिला सहारनपुर को मिली तो उक्त दोनों समाजों का वह विचार हुआ कि गोरक्षा का पूरा प्रबन्ध हुआ, और यह गोरक्षा का मार्ग दयानन्द सरस्वती का चलाया हुआ है इससे दयानन्द का पक्ष सिद्ध होता है, तो जगाधरी समाने एक खत देकर खाडलीप्रसाद गुजराती को, और बर्मसभा रुड़की ने फकीरचन्द अघ्यक्त को हरिद्वार पर भेजा । उन्होंने ब्राह्मणों से कहा कि तुमने अपने सनातन धर्म को छोड़ दिया । आजतक यहा न गोरक्षा बनी थी, न गौ के बेचने का संकल्प हुआ था । क्या पहले कोई बुद्धिमान् न हुआ था ? यह गोरक्षा का मत दयानन्द का चलाया हुआ है । हमारा तुम्हारा काम इसकी हानि करना धर्म है । जब तुम हरिद्वार पर गोरक्षा करोगे तो राग कड़ेंगे कि देखो दयानन्द का ऐसा उपदेश है कि, सब ब्राह्मण भी गोरक्षा करने लगे । दयानन्द जी की कीर्ति होने से हमारी तुम्हारी हानि है । गज ऐसी २ बातें कहकर ब्राह्मणों को बहकाकर गोरक्षा का संकल्प तख्ता दानपात्रादि उठवाकर हलवाई का भंडी में जलवा दिये । यह खबर मूलचन्द मास्टर फनखल ने खग के जरिये से मुझे दी । मैं हरद्वार आया, और आसुर ब्राह्मणों से कहा कि तुमने यह क्या किया, तो ब्राह्मणों ने कहा कि गोरक्षा करना या गोरक्षा बनाना हमारा धर्म नहीं, हमतो गंगा पुत्र हैं, गंगा देती है हम उाते है । हमको दुनिया के कानून

से क्या काम ? परमेश्वर की इच्छास गी मारी जानी है—हम उसकी मर्जी का वैसे गक दें । मुसलमान गो बध करते हैं वह भी तो बदरीति से करते हैं, घुरात भा तो अयत वेष्टे, पहले हमारे यज्ञ भा तो गो-अय करत थे । त्रय हय समर्थ थे, अब वह सामर्थ्य नहीं है ।” मैं उन श्रुति मुनियों की सन्तान के मुह से ऐसी बात सुनकर अत्यन्त शोक किया कि हाथ यह उन्हीं की सन्तान हैं जो गी पर अपना प्राण नौद्वार करते थे । आज उम ब्रह्मकुल की सन्तान प्रह्लयुक्त पर राडी हुई यह वह कि गोरक्षा करना हमारा धर्म नहीं है और इस परम धम का मूखडा उरखड कर भाग म पूरु द । अब हमसे क्या आशा हो कि हमारा देश उन्नति को प्राप्त होगा । क्या हरिद्वार में यह प्रबन्ध होने से सारे भारतभय म यह व्यक्त्ता न फेल जाती कि गी हिंसक को मत दो । जब हिन्दू लोग उनकी गाय न देत तो उनको गाय कहा से मिलता । २४ कगेड आधारी में ३ करोड गी का बुरा चाहा वाले और २१ कगेड रक्षा करने वाले है, फिर भी गी मारा जा रहा है । शाक ! क्या करें, हमारे ऊपर कोई व्यवस्था करने वाला न रहा जो गाय किनी ने रात को शेरा क डर से घर म बावी और देवयोग से उलफ कर मर गई तो बाधन वाला हत्यारा हो गया । गंगापर आकर गोयाट में प्रायश्चित्त करने लगे और भगी उसके सिर पर जूते मारे तब बिरादरी उससे खान पान करे और जो अपने हाथ से दो रुपये के बदले बूचर की घुंगी तले गी को वेच दे उसको न कोई दण्ड न प्रायश्चित्त । सच हमारे धर्म का वही हाल है कि अशक्तियों की लूट और कौयलों पर मोहर । एक हफ्ता इन रागों से मुम्बई मगज मारते हा गया पर म अकेला हू और धर्ममभा बाते कई आदमा बहका रहे है, मैं लाचार होकर आज जाता हू । उन लोगों की बुद्धि छट हो गई । क्या किया जाय परन्तु मैं देशोपकारक और धमरक्षक अणुचारों से आशा करता हू कि इस मजमून को अपने २ परचों म लिखकर और अपनी २ राम देकर इन दुर्बुद्धि लोगों को त्रिकार देकर समझा देंगे । मुम्बई एक साल इभा पेगावर से बरेली तक गोरक्षा के लिये फिरता हू । एक दो गोशाला मुजफ्फरनगरादि में बनाई गइ थीं और खाखों गन्तुयों का गो रक्षा का उपदेश देकर हिंसक के हाथ न वेचने का सन्ध भी कनाया परन्तु यह हरिद्वार म ऐसा उन्मोकार किया हुआ बर्म सभा जगावरी और रकी ने मझ का किया, जो यह मेरी जान भी ले लेते पर इस क्षाय का नष्ट न करते तो मुम्बई शेरु न था ।”

चौधरी नवलसिंह ने पयली के इस दुःख को उत्तरीय भारत के सारे नगरों प्र-  
भिद्ध कर दिया और आर्यसमाजों के प्रतिनिधि चाणों और से हरिद्वार पहुंच गये । ११  
मई सन् १८८६ का वल्लवल म एक बडी भारी सभा की गई । पयलों को बहुत से यज-  
मागों म लिपकर भेगा था कि यदि तुम गोरक्षा के कार्य का पुनरुद्धार न करोगे तो  
हमारा तुमसे कुछ वास्ता न रहेगा । आय मद्रपुरियों तथा अन्य मज्जनों ने पयलों को

बहुन समझाया परन्तु वह इस शुभ कार्य में महायत्ना देने की जगह क्रोधित होकर याधरत हुए और अमन्यता से गाली प्रदातादि व्यवहार कर लटन मरने को उपस्थित हुए । अन्त को हार कर सामाजिक पुरषो के उद्योग से बनखल चुंगालाल के बाग में १५ मई को हवन भजनादि के पश्चात् गोरक्षिणी सभा का मण्डप कायम किया गया और स्थानाभिप्रेत महाशय ने भी स्थान देने के अतिरिक्त दृष्ट प्रतिज्ञापूर्वक इस काम पर यथावत् दृष्टि रखने तथा उत्तति करने का जिम्मा लिया ।

इसी अन्तर पर चौवरी नवलामिह ने अपनी यह प्रसिद्ध लावनी बनाकर गाई थी जिसके एक पद में परबडे की वस्तु का ही वर्णन है । पद यह है—‘ इधर धर्म का मण्डप गावें, उधर अधर्मा रहे उखाड’ उस समय के दर्शक कहते हैं कि जिस समय यह पद गाया गया, सैकड़ों पुरुषों की आर्खा में आसु जारी थे और बनखल निवासी महाजन और अन्य पुरुष परबडों पर लानते डालत थे । इस गोरक्षिणी सभा के प्रजात परखा-बाद के रईस लाला मोहनलाल नियत हुए और चौधरी नरतासिंह को मन्त्री बनाया गया ।

सनातनी समाचार पत्रों ( मित्रविलासादि ) ने गोरक्षा का मण्डप उखाडने पर हरद्वार के परबडों की उलटी पीठ ठोकी जिसके लिए हेतु यह दिया कि “दयान्दी गोरक्षा की आड म अपना आयममाज कायम करते हैं, गोरक्षा तो केवल वहाना है ।” पौराणिक सनातनी पत्रों ने चाहे कुछ ही शोर मचाया परन्तु हरद्वार के परबडों को उनके यजमानों ने सीधा कर ही लिया । आर्य दिनय खड १ अक २१ के सामाजिक समाचारों में नीचे का समाचार छपा था. —

अत्यन्त हर्ष का स्थान है कि हरिद्वार में दूसरी गोशाला मी प्रस्तुत होगई । परबडों ने अपना पूर्वकृत दोष अपमाजन किया । इतना बुरा भला सुनकर, देश देशातरो में प्रख्यात होकर, अथ समझ म आया कि गोरक्षा अवश्यमेव करनी है । मूख लोग बिना अन्तिम फल विचारे शीघ्रता से ऐसे ही कार्य कर बैठते हैं कि जिससे पश्चात् उनको निन्दापात बनना पडता है ।” परबडों ने सभा तो बनाई परन्तु उसके तीन सभापति और छ प्रधान नियत हुए क्योंकि उनको अपने सभ यजमानों का प्रसन्न करना ही अभीष्ट था ।

हरिद्वार की गोशाला कुछ काल तक चलती रही ।

## ६. उपसंहार

यह दो वर्ष आर्यसमाज के लिये शान्तिमय उत्तति के थे । जहा डी ए वी स्कूल की स्थापना से आर्यसमाज की जड़ें पाताल में पहुच गईं वहा अन्य धर्मों तथा सम्प्रदायों से

पाईं बडा समय उत्पन्न नहीं हुआ। कहीं २ छोटे मोटे शाखाएँ होने लगे, परन्तु टकर का भयानक समय अभी आरम्भ नहीं हुआ था।

प्रायः पुरुष वैदिक सत्त्वात् धर्मो लग गये थे परन्तु अभी तक संस्कारों के पांव नहीं जड़े थे। विनायक नाम के विधवा विवाह के कुछ दृष्टान्त पाये जाते हैं और कहीं कहीं ११ वर्ष की कन्या के वैदिक विवाह के मनाचर भी मिलते हैं। मन्दागों की ओर जो धोडा बहुत भी प्रचलित मिलती है, वह महत्त्वपूर्ण है। इस समय छोटी २ वस्तु का बडा विरोध होता था। वह लोग धोडा भी करते थे तो अधिक सदन करना पड़ता था। उस समय के धर्म पुरषों की यदि उन्नी समय की चरित्राओं को देखने हुए परीक्षा की जाय तो बड़ा पता कि वह लोग धर्म पर मुक्तों का प्रतिदान करवा जानते थे।



# पाँचवाँ परिच्छेद

## सनातनधर्म से सर्वप

१८८८ ई०—१८८९ ई०

### १. कारण

ऋषि दयानन्द ने चौमुखे आराम्य क्रिये, सब सम्प्रदायों को धक्का लगाया, किसी को भी अछूता नहीं छोड़ा । ऋषि ने अनेक शास्त्रार्थ क्रिये । बहूत से पवत जो अपना उवाई का दावा रखते थे, उस विचामेव क सामने छोटे दिग्वाई देने लगे । सनातनधर्मियों ने अपने बड़ी से बड़ी तोपों को लाकर दयानन्ददुग का घेग डाला, परन्तु ब्राह्मण्य और प्रतिभा की फमील पर कोई अमर न पैदा कर सके । शस्त्रार्थ भी एक फता है, जो केवल पण्डित्य के साथ नहीं मती । ऋषि से पूव तग उस समय में भी काशी और नदिया म दिग्गज पण्डित विद्यन न थे । वह धागप्रवाह स्मृत बोल सकते थे, व्याप्तियों के छरों और अचछेदनों के मोलों से विराधा पण्डित का अंग-भग कर सकते थे, पर सत्सागरण क साजन आकर छोटे से छोट विषय पर युक्ति-पूवक बात नहीं कर सकते थे । वह अघेरा काठरा क दिग्गज थे, ऋषि न उन्हें खुले मैदान में ललकारा । खुले मैदान की लडाई में जिन गुणों क सफलता प्राप्त होती है, वह उनमें विद्यमान नहीं थे । दयानन्द ने शस्त्रार्थ क पुगने सब कानूनों को तोड डाला । वह व्याप्तियों की धारा नहीं छोडता था, अचछेदनों के मोले नहीं बरसाता था, वेदों क मन्त्र प्रमाण में देश करता था, और जब उसे आवश्यकता होती थी, तब वेद ब्राह्मण उपनिषद् दर्शन और स्मृति अपना २ हिस्ता देने के लिये उपरिपत होजाते थे । इम गई शस्त्रार्थ पद्धति न पुगनी पण्डितक शस्त्रार्थ पद्धति को बिल्कुल निरम्मा बना दिया । अन्तिम दिनों म ऋषि का माग निरन्तरक बन गया था । प्रति-पक्षियों न हथियार केंक दिये थे ।

ऋषि के पीछे लगभग ५ साल तक प्रतीक्षा और तयारी का समय था । आर्य सनातन का सत्सय सेवापति खो गया था, तबे सेनापति तय्यार नहीं हुए थे । उमर सनातनधर्म नई शास्त्रार्थप्रणाली का क ख ग सोख रहा था । वह भी मड़ों को तय्यार



को उगड़ता था । उनके मुँह से देवगिरी का शब्द सूगर के घुर घुर शब्द की तरह निकलता था । वह मानो अपने भेष को कलकिया कर रहा था, सारे सत्तार को, अयोग्य की जन म डुगो रहा रहा था, सज्जों के दिलों को दुःखित कर रहा था, अपने दश को और बस्तु अपने आपसे ही धोखा दे रहा था और फलन्ति कर रहा था ।

यह महावाग्निद्रावण की प्राग्भिक पत्तिया है । इस प्रकार की भाषा का प्रयोग उस समय के परिदृश्यों में श्रेष्ठ समझा जाता था । वह समझते थे कि एक लच्छेदार अप-शब्द नीम युक्तियों का स्थान देता है । उन्हें नहीं विदित था कि युग परिवर्तन हो चुका है । अब कठिन गाला नेरान पर शब्द युक्ति को अधिक बलयुक्त समझा जाता है ।

इस प्रकार के लेखों का सर्वसाधारण पर तो कोई प्रभाव नहीं होता था, परन्तु सत्सुता के विद्वान् इन्हें पढ़कर अवश्य प्रभावित होते थे । प्रभाव का यह अभिप्राय नहीं कि उनकी सम्मति पर कोई प्रभाव उत्पन्न हो जाता था, ऐसे लेख कभी सम्मत्तियों पर प्रभाव नहीं पैदा कर सकते थे । इनका असर केवल यह होता था कि जो लोग ऋषि के विरही थे वह कुछ समय के लिए प्रसन्न हो जाते थे, और जो ऋषि के भक्त थे, उनके हृदयों को दुःख पहुँचता था । ऋषि के शिष्यों में सत्तार ही मुख्य समझे जाते थे । स्वामी अत्मानन्द जी के कार्य का उणा आ चुका है । प० भीमसेन और प० ज्वालादत्त ऋषि के सबसे शिष्यों में से थे । उन्होंने ऋषि से बहुत कुछ पढ़ा था । वेद भाष्य तथा अन्य ग्रन्थों के प्रसंगों का कार्य प्रायः इन्हीं दोनों के हृदयों से हाता था । ऋषि की मृत्यु के पीछे उन्नत शक्तियों परिदृश प्रयोग के दैदिक प्रेम में सशोचन का कार्य करते रहे । उस समय आर्यमनाज में पंडित का अभाव था । ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों के प्रसंग-शासन तथा लेखन के कार्य के लिये अपनी फरख बट की पाठशाला के सबसे योग्य विद्यार्थी भामसेन और ज्वालादत्त को साथ ले लिया था । दोनों में से प० भीमसेन की योग्यता अच्छी थी, परन्तु स्वभाव चञ्चल था, प० ज्वालादत्त का स्वभाव स्थिर था, अक्षय अच्छे थे, परन्तु कौशल और पांडित्य की कमी थी । स्वभाव की चञ्चलता के कारण भीमसेन का स्वामी जी के कोप का भाजन भी होना पड़ता था । प्रतीत होता है कि वह ब्रह्मकाण्ड में बहुत शीघ्र आजाते थे । कभी २ अपने पांडित्य के मर में आकर स्वामी जी की अशुद्धि निहासन की धुन उन पर सवार हो जाती, और इस उम्र बुढ़ाई तक कने लगते । एकबार कार्य की अत्यन्त शिथिलता के कारण ऋषि ने प० भामसेन को अलग भी धर दिया । मार्गशीर्ष बदा ५ सम्बत् १८३४ के पत्र में ऋषि ने दैदिक प्रेम के मैनेजर मर्न की समवेदान को लिखा है "भाम अत्यन्त अयोग्यता के कारण भामसेन को सभ दिन के लिये निहाल दिया है,





प्रारम्भ से यह पं० भीमसेन शर्मा के पूर्ण अधिकार में रहा । उही उम्मेद वालों का-  
रिस था गये । जब शर्मा भी भीमसेन का पालन तो पक्ष भी सुस्तान लगता । मन्-  
दर्शन हा । देता था, परन्तु उस समय सामाजिक पक्षों का इतना प्रभाव था, ला ।  
की धर्म विपासा इतनी बढ़ी हुई थी, और दृष्टि के शिष्य का इतना ध्यान था कि  
सब क्रमियों के होते हुए भी प्रायः सिद्धान्त को प्रायः पुरुषों से बहुत सी आर्थिक सहायता  
पिताली थी । जब वैदिक यज्ञलय प्रयाग से उठकर अश्वमेध चला गया तो पं० भीम-  
सेनजी प्रयाग में ही रह गये और उनके साथ ही प्रायः सिद्धान्त और आचर्यसभा  
के कार्यालय भी रह गये ।

आर्य धर्मसभा की ओर से १९४४ के अन्त में व्याजन्द विश्वविद्यालय का  
उद्घाटन किया गया । विश्वजी चलय का उद्देश्य आचर्यसभा की आचर्यसभाओं का  
पूर्ण करने के लिये उद्देश्यक तय्यार करना था । इस विद्यालय का मुख्य कार्यकर्ता पं०  
भीमसेन जी हा थे । आर्य पुत्रों ने विद्यालय के लिये अच्छी सहायता दी । एक समय  
इसमें पन्द्रह वीन विद्यार्थी पढ़ने लगे थे । विश्वविद्यालय के सचालक ता० बिरोश्वर  
सिंह जी रहते थे, जो नृपे के आन्य भक्त थे । वड चाहते थे कि अधिकारी बनाई हुई  
पाठशाला का विद्यालय में अक्षरशः पालन किया जाय ।

आर्य धर्मसभा के सभासद् माघ १९४४ में ३३ थे, जिन में से लगभग आधे  
सम्पृक्त थे । सभासद् बनने के लिये इतनी ही शर्त थी कि 'जो सभासद् बनना चाहे  
वह आचर्यसभाजी हा और सन्तुष्ट जानता हो' मस्कृता जान या न जाना का निर्णय  
सभासदी के उम्मेदवार के अधिकारी था । इस कारण सभा में अधिक संख्या उन लोगों  
की होगई जो नाममात्र के ही सम्पृक्त थे । यही कारण था कि सभा अधिक समय  
रक न चल सका । लगभग दो वर्ष तक जागिर रहकर माघ १९४६ में सभा अपने  
तीसरे अधिवेशन के साथ समाप्त हुई । सभा समाप्त होने के कई कारण प्रतीत होते  
हैं । आचर्यसभा का जन्म पुत्र में निम्न और नियन्त्रण मिलना गया है । आर्यधर्म  
सभा का उद्देश्य नियन्त्रण का और न कोई विशेष नियम थे । आर्य प्रतिनिधि  
सभा के अतिरिक्त प्रायः म दिती ऐसी सभा का रहना कठिन था, जो सब अर्थ पुरुषों  
की प्रतिनिधित्व में समझी जाय । यदि आर्यधर्मसभा प्रतिनिधि द्वारा बनाई जाता, या प्रति-  
निधि के अधिकारी होता तो शायद जीवित रह जाती । प्रतिनिधि सभा का बान्धन और  
आर्यधर्म सभा के लिये ही सिद्धिर्वाक के कारण यह सभा अन्यथा मिद्ध ही होगई  
थी । तीसरे अधिवेशन में यह सभा तोड़नी गई और प्रायः सिद्धान्त तथा विश्वविद्या-  
लय के कला धरा

अधिसभा शर्मा ही रह गये । जितना दिनों तक आर्यधर्म

समा रही, उसने उपयोगी कार्य किया। यह धार्मिकसमाज के संगठन के अद्वैत नहीं थी, इस कारण जीवित न रह सकी।

### ३ सनातनधर्म-महामण्डल

धार्मिकसमाज की शक्ति का रहस्य उमका मजदूर संगठन है। धार्मिकसमाज सभा को स्थापना के पीछे सनातन की शक्ति और भी अधिक होगई। पौराणिक धर्म के कुछ समय में अन्तर्गत की मरना पना हा रही था। धार्मिकसमाज के प्रचार से दिन लोगों का हार्दिक मात्रो अथवा धर्मियों पर चोट पड़ने लगी थी, यह लोहे की पक्की पहनने का उद्योग बन रहे थे। पौराणिक धर्म न अन्तर्गत के निषेध प्रचार के अन्तर्गत धार्मिक धर्म पर दिये। स्थान २ पर धर्ममहा, पंडितमहा अन्तर्गत सभा अन्तर्गत स्थापना होने लगी। पौराणिक सिद्धान्तों की पुष्टि में मसिक तथा संप्रदायिक पत्र विवरण होने, और शब्दार्थों का मन गह्र क्षण लगा। इन पुस्तक परने के अन्तर्गत एक बड़ा उद्योग जो इस समय में आरम्भ हुआ, यह काशीभाग में भारत धर्ममहासंघ की स्थापना थी।

मण्डल की एक शाखा पञ्जाब में भी स्थापित हुई। उसके मन्त्री प्रसिद्ध बानी प० दीनदयालु शर्मा बन। उस समय शर्मा जी मुन्शी दीनदयालु के नाम से प्रसिद्ध थे।

जनता के मध्यभाग में आपने लाहौर में व्याख्यानों का सिलसिला जारी किया। शर्माजी फार्सी और हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। आपका स्वर गमम और मीठा था, बोलने में चतुरता और प्रीति पाई जाती थी, भाषण के अन्तर्गत में तुन्सी और सुदास का दोहे ऐसे मगोहर प्राप्त होते थे, जैसे उद्यान में गुलाब का फूल। आप जब स्वर भगी के साथ चीपाई का पाठ करते थे, तब अद्भुत शान्ति मन्त्रमुग्ध से होकर सिर झिलाने लगते थे। लाहौर में मन्त्री जी के व्याख्यानों में एक हलचल सा पैदा करता। आपने मूर्तिपूजा आदि विषयों पर व्याख्यान दिये।

धार्मिकसमाज की ओर से इन व्याख्यानों के उत्तर दिये गये। स्वामी रवामानन्द जी, स्व० अच्युतानन्द जी और प० गुरुदत्त एम ए के जारदार भाषण हुए। प्रतीत होता है कि अन्तर्गत के व्याख्यानों का अच्छा प्रभाव हुआ। एक जनता सभा में प० गुरुदत्त जी के भाषण के पश्चात् धार्मिकसमाज के ५० ७५ सभासद बन। शब्दार्थ का थोड़ी बहुत चर्चा हुई परन्तु कुछ फल न निकला। दोनों ओर के व्याख्यान अन्तर्गत शान्ति स्थानों में होते रहे। महामण्डल के डेप्युटेशन का सनातन धर्म लागू की ओर से अच्छा प्रचार हुआ। धर्म से भी पुनरुत्थान हुआ। प्रतीत होता है कि डेप्युटेशन को ओर में मिली, उसके अन्तर्गत के सम्बन्ध में बहुत से मतभेद पैदा होगये थे।

‘साहे कश्मा’ नाम के सनातनधर्मी पत्र ने उन्हीं दिनों शिरायत की थी कि मडल क मन्त्री ने मयडल का रूप खाली खा लिया । प्रतीत होता है कि लाहौर के सनातनधर्मियों में ऐसे सनाचारों का बहुत खलबली पैदा कादी थी । कुछ ही दिनों पीछे लाहौर की सनातनधर्म समा दो हिस्सों में विभक्त होगई । एक पक्ष मयडल के मन्त्री को पक्ष करता था, और दूसरा उसकी आलोचना करता था । आर्यममाज के समाचार पत्रों ने इन घटनाओं पर दा टिप्पणियाँ की । एक तो इस फूट को सनातनधर्म की भेदलत का फल बतलाया, और दूसरे व्याप रूप से प्रस्ताव किया कि यदि मयडल क मन्त्री का पुरानल मसिरा बरत रखा गया तो कागडा दूर हो सकता है ।

महानमडल के साथ आर्यममाज की दूसरा मुठभेड़ वृन्दावन में हुई । १८८६ ई० के अग्रेज नाम के वृन्दावन में एक मेला था । उस समय से लाभ उठाकर मडल के अग्रकारियों ने प्रचार का समागोष्ठ किया । भारतभर के सनातनधर्मी पंडित एत्र दृष्ट मथुरा आर्यममाज की ओर से मडल का प्रत्युत्तर देने के लिये प्रचार का प्रयत्न किया गया था । लगभग २०० आर्य सज्जन इकट्ठे हुए, जिनमें से अधिकांश सस्कृतज्ञ थे । आर्यममाज ने पृथक् डेरा तय्यार किया था, जहा प्रतिदिन व्याख्यान होते थे । स्वामी सारनानन्द जा के भाषण सुनने को लोग इतने उत्सुक रहते थे कि प्रतिदिन उन्हें कुछ न कुछ बोलना ही पता था । आर्यका भाषण स्पष्ट रोचक और युक्तिपूर्ण होता था । आर्यममाज के कार्यकर्ता जानते थे कि मथुरा और वृन्दावन पौराणिक गढ हैं । उन्हें आशा नहीं थी कि उस गढ में सब्धी पारन्तु बड़वा भाग सुनने को कोई तय्यार होगा, पन्तु आर्यममाज के समाचार पत्रों में प्रचार का जो वृत्तन्त छपा है, उससे प्रतीत होता है कि जनता ने आर्यममाज की बातों को बड़ी शक्ति से सुना ।

शास्त्रार्थ की चर्चा भी टिडी थी, परन्तु यह नहीं होकर । यों तो दोनों पक्षों ने शब्द में न होने की उतावद दिया एक दूसरे पर डाली, परन्तु प्रतीत होता है कि महानमडल की नैति प्रगम में ही यह थी कि य गसम्भर शास्त्रार्थ से बचा जाय । बहुत सा साँस सार सचार अन्त में बिना भिडे ही दोनों ओर के बोद्धा घरों को चख गये ।

### ३ शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थ का मुग आगम हो चुका था । स्थान २ पर छोटे २ शास्त्रार्थ तो होते ही रहते थे, परन्तु बड़े २ स्थानों पर भी अभय नहीं था । उस समय के शास्त्रार्थों का वृत्त १८८१ से यह प्रतीत होता है कि घोरता लाग शिष्टता से प्रेरित होते थे । हिन्दू समाज में एक विशेष इलफत पैदा होगई थी, जिसका फसर बहुत व्यापी होगया था ।





पण्डित गनौराम और सनतन धर्म सभा के परिश्रित श्री कृष्ण जी का सस्त्रुण और हिन्दी में राजकीय हुआ। अन्त में नरेश को और से दोनों पक्षों को धन्यवाद दिया गया और यह ज्ञान चर्चा समाप्त हुई।

शासन का शीक और पैग झोड़ा था। कहीं पत्र-पत्राहार तक ही समाप्त हो जाते थे, कहीं थोड़ी बहुत मारत भा हो जाती थी, पर तु ठीक शास्त्रों के नीचे फल पहुँचती थी। जहाँ कहीं शास्त्रों में हा जाता था, वहाँ श्रोताओं पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता था। हिन्दू जनता अत्यन्त ही चाटा से विचलित होगई थी। विचार रूढ़ि की अत्यन्त से निकलकर द्रव अत्यन्त ही आगये थे। द्रव अत्यन्त ही विचारों पर वाद विवाद का प्रभाव हो सकता है। जब विचार घनीभूत हो जाय तब वाद विवाद केवल और में समाप्त होता है। उम समय के सभ शस्त्रार्थों में अत्यन्त ही जीता या हारा—इस पर इतिहासलेखक कोई गप नहीं बना सकता परन्तु यह इतना अवश्य यह सकता है कि उन शस्त्रार्थों से अत्यन्त ही प्रचार में नहीं सहायता मिली।

### ४ आर्यपुरियों की धर्मधर्म

जब कोई नया विचार लोगों के सामने रखा जाता है, तो वह प्रायः चौक उठते हैं। नये विचारों का मंत्र से अतिरिक्त अत्यन्त परिश्रम के अन्वये पर होता है। सुधारक लोगों पर सदा यह दोष लगाया जाता है कि वे पारिवारिक शान्ति में विघ्नकारी होने हैं। सुधारकों का आज से नहीं हमेशा से यह अपराध लगाया जाता रहा है। सुधारक और ईसा से लेकर अग्नि दयाचन्द्र तक जिन लोगों ने मनुष्य जाति का मुकाबला किया है, उन्होंने पारिवारिक संगठन के पक्षपातियों की गलतियाँ खाई हैं। अत्यन्त ही ने भा प्रारम्भ में पारिवारिक शान्ति में बहुत हलचल पैदा की, और खून्दरानों के बुजुर्गों की गलतियाँ खाई, यह गलत। इस बात में प्रमाण था कि अत्यन्त ही कुछ काम करने में समर्थ हुआ है। जो सभ हृदयों पर राज्य नहीं कर सकता वह किसी आदर्श के बिना भी नहीं कर सकता। जो हवा का काना जाल में समझी नहीं पैदा कर सकता वह आसों को रगड़कर भाग्य की उत्पत्ति नहीं कर सकता।

उन दिनों अत्यन्त ही की फीका बहुत कड़ी होती थी। यहाँ एक दृष्टत उदधृत फलना पयात दागा। एते दृष्टत उत युग म देश के प्रत्येक नगर में हो रहे थे। इन यह दृष्टत अत्यन्त ही के सङ्ग-प्रचारक से उदधृत करते हैं—

“नान्दया आयममाज धी वृत्तिला पट्टेया नि पण्डित कृपागाम मेम्बर श्रीगणेश  
 गोजपुर जो नासिन्द्रा सुल्तानपुर ग्यामत भूपूजा कहै अपनी पुत्री का विवाह म-  
 तार वेद रीति से करना चाहत हैं। इन सुभावरी, को सुनवर ला० मुन्शीराम  
 जीका प्रदान, म्ने ला० मात्तगज व ठाकुटात व ला० रंगाग व ला० गीतराम  
 और प० श्रीधर अत्यापक समान २० अग्रे १८८६ ई० की शाम को जातेश्वर से  
 जाना होकर पहुँचले जाने हुए २१ अग्रे १८८६ ई० की शाम को जातेश्वर से  
 ला० गाविन्द सहस्र मेम्बर समाज कपुर्यना व प० कृपागाम जी का खबर दी। उस  
 रोज ति का वृत्त कथाम किया, शाम का जायेकथाम पर भजा कीर्तन के बाद उपाना  
 हुई। उस वक्त शहर में खबर पहुँचते ही कबीरा २७० आदमा जायेकथाम पर होगये।  
 गो लैखर की तैयारी पहले से व गी ताइम लोगों को लाम पहुँचा की नीका से  
 ला० मुन्शीराम प्लाडग ने एक वेत्त मन्त्र का भर्ष करके मुक्ति पर बडा जोरदार ध्या-  
 रथान दिया। जिससे अयाम न अच्छा असर पडा। इसके बाद प० कृपागाम जी मै  
 दो पढितों क ला० मुन्शीराम क पास आय, और उनका तसल्ला विवाह कर्मके बारे म  
 करना चाहत, क्योंकि अयाम मे मशहूर होना था कि आय निक म्मात तबाल करके  
 पिन्ड कर दत हैं। जच पढितों ने तस्कारपिधि का कृया मुना ता अपनी पढति मे  
 मिलाकर उसे बहुत उत्तम बयान किया। शहर मं घूम मची हुई थी। स्त्रिया सभ वैदिक  
 रति का विवाह देखने की मुश्तयार थी। १० अग्रे शत्र के बागीग २१ अप्रैल  
 १८८६ ई० सब भाई मय चन्त मग्गन कपुर्यना ममाज पढिम कृपागाम जी के म्यान  
 पर पहुँचे, और प० श्रीपत नी व यज्ञशाला रचना शुभ की। वेजक पढित जो का  
 अन्तो म वेदा का आगयश कर ता उस प्राचीन समय को याद दिता रहा था जय कि  
 हमार गौतम आदि अग्नि अत्रे भूमि जो वदधमि से मन्वा स्वर्ग बनाए हुए थे। लेकिन  
 जब सत्र सामान य का तय्यार करके वर को बुता के लिये आदमा भेजा, उस वक्त  
 एक शस्त्र गिरधारी नामी नाम का बगहमा राक्षसहृति वाता शराय के नशे में चूर,  
 लंगोट बंधकर भा मौजूद हुआ। शहरवालों का कसीर अजोह हमराह था। बाहिर  
 घम पर जा देन वास्ते वनसभा के सरपरस्त के मुलाजिम गिरधारी बाम्दूनकी मुमल्मानी  
 कजरा शराय मे मजमूर अपनी आशना को बुलाना था। उस राक्षस न ठाक वैसा ही  
 निशाच कर्म किया जैना कि निष्कामिध के यज्ञ म मारीच अयुग् ने किया था। प० कृपा-  
 राम व पुलिस मे मदद मागी कि गिरधारी को मरदावला वेजा व काज रथों के लिए  
 गिरफ्तार कर। लेकिन पुलिस का साज्जद मन सिपाहियों के टलकर बाहिर निकल  
 आया। हरकात से मान्ग हाता था कि प्रतिन पहले हा निना बडे मुदबबर मोलमदरयामत  
 का सिखलाए पडाई हुई है। साज्जद साध्व ने माक जगव दिया कि जब कोई कमान  
 होगा, तब उता वक्त हम दस्तन्दगी करेंगे वरीन तो अजे प० गिरधरी दस्त  
 धमममा गुन्जहुत बला गया। अब लडके वाला की यह कम्पाय कि वह एक गुप्ते।



लड़के के चचा को कुछ पेंनी शह मिली कि यह वैदिक रीति में निगह १  
 मिल्तुन इन्वामी हागत, और कथा दिया कि दिना ११००० हा दोगा न जस  
 यह चमर भी सखिल बयल है कि मुगलकी क धनदात पर नई मंदिर व दीप  
 शागा प० कृपाराम ने किनागाश वर गये थे । प० कृपाराम गुरु बुलने ग  
 रोकिन लडके के चचा १ नौपद की पूजा पर इतर किया । पंडित १ दिन १ धर्म प  
 नगरी जग म कर्म नग कि जग १ प्री १ पूज व गगरी डगम है तो  
 हागत शाग न करगा । यह ता म पूर्वी बग है लेता प० कृपाराम की शाग  
 और बुचानी का यह भाग्य नग मल है जिन्होंने इनको गिधारी का मालिकों व  
 सद्ग सभाव से क्या इते और व दपु कपरी गाग और बदिन की बाहोजारी ।  
 चची प्रतिश की फलन कान मं ह दगा है । उस मग टीक मजग एक सच  
 भाग का जिदगी का दिगल, इ टता था । जप ४ बज का वक्त हुआ भाव भाई ल  
 चार वापिस भाये । दिन बटा पर उछ और ही गुर तिला हुआ था । लक्ष्य  
 चला के लिए तैयार और शयवारा उई गेने पर मानदा । रोकिन फिर भी प  
 कृपाराम ने हिम्मत की नहीं छोडा । हुए तैर डाके खाना पर दिये । तब गी शर  
 बाग्हा और खात्रा न धानवर जगली प० कृपाराम के मनान पर अपना दयल व  
 लिरा । सभ है, जब घर ही मं कृ हो जाय, तो इतान क्या कर मरना है । पंडि  
 कृपाराम का की व बदा और नदिन मुगलकान की युगम उनके दुमे भाई के जिन  
 से नागी दगा पर मुतैर हाइ । रोकिन प० कृपाराम जो १ अपने हाथ से १ नौप  
 पून बादि दिया न दन्यागा दिया । अपने मय को कायम रता दर्शन विवाह कृ  
 के एक और पसा वरगा हुआ जिना जाहिं वर दिया कि नन का बीन जग म  
 जाय जग मस पेंग करता है । यानी प० कृपाराम जी की पुत्री न जिमरा पिदा  
 होगदा या नौपद की पूजा से साक इन्कार कर दिया । प० कृपाराम जी को तो शक्ति  
 कर दिया था, लेकिन पत्र जिमरी की कल म चर म मागई । अगर रा की व  
 चलटा म दते तो विवाह किसके सार होता । सावार पंडितों न यह पतका दिया ।  
 अगर लडकी नौपद पूजन १ भी फरे स कोई हज नहीं है । डाके वर बुल मारवा  
 बपायदा होल रही । विरादा ने हजार तरह बोवा से प० कृपाराम जी का इम फार  
 वाई म शरीक जना चहा, लेकिन उन्होंने अपने बोल से इन्कार न किया, कि  
 काम म शरीक न हुए ।”

इस उदाहरण से कई बातें विनि्त होती हैं । उस मय के भाग्य पुरखों में धम व  
 गुरु उत्साह म । निगदियों न ब्यक्तियों की धार्मिक स्वतन्त्रता को छानने का उनी  
 भारम वर दिया था । भाग्यमान के विगरी छोड़े इधियों पर उल भाये थे । इ  
 उदाहरण से उत समय के धर्मिकपनों की लेबलता का भी काफी परिचय मिलता है ।

## ५ समाचार पत्र

आयमाज के कार्य के लिये जो उत्साह उत्पन्न हो रहा था, वह खोखला हो प्रकट होने लगा । इस समय में कई समाचारपत्र भी निकले, जिन में से दो का चर्चा आवश्यक है । १९२६ के अप्रैल मास के अन्त में जाटधर से सद्धर्म प्रकाशक नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकला । यह पत्र ला० मुन्शीगम त्रिगामु और ला० देवगज जी के सम्पादनत्व में आरम्भ हुआ था, परन्तु पीछे से अनेको हा० मुन्दरी रामजी के हाथ में ही सम्पादन का कार्य रह गया । यह पत्र एक नये उत्साह के साथ आरम्भ हुआ था, और आर्यसमाज में एक नये भाव का संचारक था । प्रवाक के उद्देश्यों विशेषताओं और लेखशैली को समझने के लिये किसी एक अंक को देना जना पर्याप्त है । दूसरे सप्ताह जो अंक प्रकाशित हुआ उस पर दृष्टिपात करने से पत्र का जीवनचरित्र समझा जा सकेगा । चौथे पृष्ठ पर 'अधूरा इन्साफ' शीर्षक दफा जो मुख्य लेख प्रकाशित हुआ है, उसमें श्री गिदा का जारटार समर्थन है । मित्र वर्ग का यत्न किया गया है कि पुरुषों और त्रिना के अधिकार समान हों । दूसरे पृष्ठ पर 'एडिटोरियल' नोट है, एक नाट्य आर्यसमाज मुल्तान छात्रों के पुरुषार्थी आध्यपुरुषों को सलाह दी गई है कि वह समान की ओर में जुदा पाठशाला खोलने की जगह डा० ए० वा० कालिज व। ही विशेष सहायता करें तो उराम है । दूसरे नाट्य में दौलत की बुराइयों का बर्णन किया गया है । उस नोट के अन्तिम वाक्य निम्नलिखित है ।

‘पुरुषार्थ के साथ, पक्की इच्छा के साथ निर्धन में निरत लोगों ने अपना कर्तव्य सिद्ध कर लिया है । और जहाँ दौलत काम नहीं कर सकती था, उनका पुरुषार्थ ने काम किया ।’

### एक और नाट्य सीधिये —

‘साहूकार हर रोज बही खाते की जाच पडताल करके नफा और नुकसान आन्दाना अपने मारूम करता है । इस नियम का बदल केना पडा है । बही खातों की पडताल उसके लिये सब बालों में जरूरी है इन लिये हर शाम को यह गिता बन्ता है । तुम भी अपने भाइया ! अपनी निन्दगी के रोज नामचें की पडताल किया करो । देखो कि नके और नुकसान या क्या मारना है । प्रत्ये जयारा है या पाप ! यह पत्र नज आखुद जरूरी है ।’

यही एक ही प्रकृत्य के जीवन परिचित का कुछ भाग प्रतिग्याप्त दिना घटा था ।

प्रारम्भ में गीर जरीबतगाय का पत्रिका छपना आरम्भ हुआ। जो आर्य समाज के पत्रिकाओं की पहली कड़ी माना जा सकता है। यह पत्रिका प्रारम्भ में प्रतीक नाम से छपी थी। आर्य समाज की प्रथम प्रकाशित पत्रिका के सम्पादकीय मन्त्रों में १८६६ ई. में प्रकाशित किया गया। आर्य समाज के उच्च अधिकारियों पर, जो धनी तो हैं परन्तु आचारहीन हैं, यह पत्र पहिले से खरगमन रहता था। यह पत्र न तो सभ्यता में बढ़ा प्रकाशक के सम्पादकीय लेखों को पहिले दिन से लिखता था। यह पत्र समाज के आर्य समाज में एक नई स्त्री पैदा करने का प्रयास बना।

१८६६ ई. के अक्टूबर नाम में लार्ड से वेचिंग मंगरीन नाम का मासिक पत्र निकला। इसके सम्पादक पं० गुरुदास त्रिपाठी एन० ए० थे। पं० गुरुदासजी अंग्रेजी के उच्च लेखक होने के अतिरिक्त सायम के बड़े प्रसिद्ध विद्वान् थे। यह इन विद्वान् गुरुदासजी का लिखित प्रकाशक था। आर्य समाज के स्वाध्याय का शीक मत्र की सीमा तक पहुँच गया था। अन्त-गया और निष्क की गहापा से बन्धन के जाने का यत्न न केवल स्वयं आपन ही किया, दूसरों का भी किया। आपन सन्तुष्ट व्याकरण का भी यत्न श्री स्वामी अच्युतानन्दजी से किया। स्वामी जी आपन शिष्य के शिष्य बन गये। आपन कर अन्तगदी थे। व्याकरण के शिष्य बनकर पं० गुरुदासजी आपन घण्टा बने। पठितज्ञों का प्रतिमा आपन प्रमाण उत्पन्न किये बिना नहीं।

वैदिक मेगजान के लेख मन्गीर और वायनायक होने थे। अंग्रेजा पत्र लिखे लोग में वह बड़े सम्पादक पढ़ी जाती थी। आपन का हुई वेदमन्त्रा की विशद व्याख्या का पत्रिका प्रिफिर या मानिपर विनिपन के अनुवायों से विगडे हुए दिमाग सीध रास्ते पर आ जाते थे। नई रागनी से प्रभावित हिन्दू नौजवान आश्चर्य से पृष्ठते थे कि क्या सचमुच वेदों में एसे रत्न गर हुए हैं। सामर्थ्य वतों की ओर वैदिक मेगजान की दृष्टि नहीं पड़ता था। आम लोग पर स्वाध्याय के विद्वान् में पं० गुरुदासजी अंग्रेजों का पत्रिका तक हटाइ दते थे। वैदिक मेगजान न पत्रिका के शिक्षित समाज में एक ऐसी विचारजान्ति आरम्भ का था कि यदि वह २५ वर्ष तक जारी रहती तो प्रान्त का कायापलट हो जाता। इसी समय कई अन्य समाचार पत्र भी लिखे और आ समाज की सेवा में तैयार हुए। पत्रिका के भारत मुद्रा का नाम विशेषतया उल्लेख योग्य है। इस पत्र का घना भंगने प्रारम्भ में अधिक विस्तार से की जायगी। १८६६ ई. के अक्टूबर मास अंग्रेज से वैदिक विजय नाम का पत्र निकला। यह पत्र भी अन्वय में की गहल कड़ी आलोचना करता था।

# छठा परिच्छेद

## पंजाब में मतभेद के अंकुर

### १. जन्मदाताओं में मतभेद

डी० ए० वी० तालेन क जन्मदाताओं में दो तरह के विचारोंवाले व्यक्ति थे । दुनोरे परिच्छेद में मदीप से उनका अचा हो चुकी है । यहा पमाप क भाय जगत् मे छुट पैग होने के कारणों पर प्रकाश डारान के तिर बुद्ध विस्तार से चर्चा करते है । क लिन वी जा प्राग्भिक स्त्रीम आर्य जनता के सापन रगो गई थी, उसम ड० ए० ज० कालिज के दो उदेश्य बतलाये गये थे । पृला उदेश्य प्राचीन आय विशा का उद्धार और दुमग उदेश्य उत्तम राति से जातीय शिक्षा को देना था । सम्थापकों का लक्ष्य यह था कि जहा एक ओर वेदों की शिक्षा का प्रबन्ध हो वहा दूसरी ओर भायसमन प्रचलित शिक्षा का दौड म ईमाइयों से बाजी गा जाय । नाम भी इती आधार पर रखा गया था । ऐंग्लों शब्द प्रचलित शिक्षा की सूचना देता था और 'वैदिक' शब्द आर्य सभ्यता क उद्धार का सूचक था । इन दोनों का मिश्रण डी० ए० वी० कालिज का उदेश्य था । डी० ए० वी० कालिज के सस्थापक ऋषि दयानन्द के नाम पर पूर्ण और पश्चिम को मिला देना चाहते थे ।

कालिज के प्रथम सचालकों मे दो नाम विशेष महत्व रखते है प० गुरुदत्त एम० ए० कालिज के दिमागी गुरु थे, ता ता० लालचन्द्र एम० ए० उसके शारारिक पिता थे । गुरु ने कालिज के ख्याल का जन्म दिया और ला० लालचन्द्र ने कालिज के शरीर को पैदा किया । इन दोनों महान् आय पुण्या का नाम कालिज की विख्यात सस्था के साथ बधा हुआ है । जब आप इन दोनों के विचारों का अनुशीलन करगे, तब आप को मालूम होगा कि जहा प० गुरुदत्त एम० ए० भ्रमजी शिक्षा प्रस कर्के भी 'वैदिक' के प्रतिनिधि थे, वहा ला० लालचन्द्र एम० ए० वेदों पर विश्वास और ऋषि दयानन्द में भद्धा रखते हुए भी 'ऐंग्लो' के प्रतिनिधि थे । दोनों के मेल का नाम 'ऐंग्लोवैदिक' रखा गया था । दोनों के दृष्टिकोण मे धोडा २ भेद था । प० गुरुदत्त भ्रमजी शिक्षा को वैदिक शिक्षा का परिशिष्ट बनाना चाहते थे और ला० लालचन्द्र एम० ए० वैदिक शिक्षा को प्रचलित शिक्षा का पोषक बान म ही जानि का भला समझते थे ।

प्रारम्भ से ही ता० लालचन्द्र एम० ए० कालिज वमेटी के प्राण छोड़ देना था, इस कारण कामजात में शिक्षा का राष्ट्रीय रूप ही मुख्य रखा जाता था। दूसरी धारण० गुरुदत्त एम० ए० प्रारम्भ में ही प्रायजन्ता के नाम से डी० ए० का कालिज की विकसित करते थे, इस कारण व्याख्यानों और वार्त्तिकता की अपील में 'वेदिक' भाग पर ही अधिक बल दिया जाता था। ज्ञान ही नेत्याका के विचारों में जा था २ भेद था, वह प्रारम्भ में शायद उन्हें भी विदित नहीं था। कालिज ने कथना भी दो हिस्सों में बटे हुए थे। अविश्रुतवा अग्रणी शिक्षा में दीक्षित या वनात लोगों का सुकाय ता० लालचन्द्र की ओर था और 'रूपि के भक्त सावाय्य धर्म पुस्तकों का सुकाय प० गुरुदत्त की ओर था। प्राण की अग्रणी शिक्षा का केन्द्र हीन का कारण लाहौर का प्रभावशाली मत ता० लालचन्द्र के साथ सम्मत था और प्राण के अन्य धर्म समानों में प० गुरुदत्त से सहमति रखनेवाले अधिक थे। स्पष्ट रूप में नहीं, परन्तु किसी न किसी रूप में कालिज के उद्देश्यों का सम्बन्ध में मतभेद प्रारम्भ से ही था। पूरा और पश्चिम के मिश्रण में एक धर्म की मात्रा अधिक डालना चाहता था ता दूसरा पश्चिम की।

डी० ए० वी० कालिज के स्वरूप के साथ ही मानो विना न छीक दिया था। प्रारम्भ से ही मतभेद दिखाई देने लगा था। प्रारम्भ में हम यह शिकायत सुनते हैं कि परोपकारिणी से प्रुद्धे बिना रूपि का स्मारक लाहौर में क्यों खोला गया? यह शिकायत सयुक्त प्राण और राजवृत्तान की ओर से सुनाई दा परन्तु कालिज का विचार लोगों के दिलों में घर कर गया और विरोधी की आवाज दब गई।

शीघ्र ही सभों में एक दूसरी बेमुरी तान सुनाई देने लगी। डी० ए० वी० हाई स्कूल की स्थापना से कुछ दिन पीछे ही कलकत्ते के आयात में यह शिकायत छपी कि स्कूल में सम्पूर्ण पर काली ध्यान नहीं दिया जाता। \* धर्म पत्रिका धर्मसमाज लाहौर की मुखपत्रिका थी, उसने आर्षागत में किए गये आक्षेप का उत्तर देने की चेष्टा की। उत्तर यह था कि भारत भर में एक डी० ए० वी० स्कूल ही ऐसी सभ्य है जिसमें अग्रणी के साथ ही सम्पूर्ण को भी आवश्यक बनाया गया है। + धर्म पत्रिका में आयात के सम्बन्ध को बहुत सी शिक्षा दी गई है कि तहकीकात किये बिना ऐस आक्षेप का हाना अच्छा नहीं है।

परन्तु प्रकृत होता है कि वह धर्म पुस्तकों का आपपत्रिका से समाधान नहीं हुआ, प्रकृत होता है कि असन्तोष का भाव अन्दर ही अन्दर बढ़ता रहा। १७ अगस्त

१९२६ के सद्धर्म प्रचारक में स्यालकोट के सीतलदास जी का एक पत्र छपा है, उसका कुछ भाग हम यहाँ उद्धृत करते हैं ।

“क्या दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज सचमुच दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज है या दयानन्द मनेन्जुलर कालिज है ? ।

( १ ) क्या यह संस्कृत विद्या की उन्नति और वेदविद्या के प्रचार की गर्ज से खोजा गया था या इल्म अम्रजी या फार्सी की उन्नति की गज से ?” इत्यादि ।

इसी ढंग के दो और प्रश्न हैं । आशय दो प्रश्नों से हा प्रष्ट हो सकता है । डी ए वी स्कूल में संस्कृत की शिक्षा के अभाव को बहुत से आर्य पुरष महसूस करने लगे । समझा जाता था कि प० गुणसजी उन असन्तुष्ट आर्य पुरुषों के अगुआ थे । लाहौर आर्य समाज के कुछ सभामन्त्री भी पंडित जी से सहमत थे । मा० दुर्गाप्रसाद, ला० नारायणदास, ला० केदारनाथ थापर और ला० रुद्रशागम के नाम उन्में से विशेषतया स्मरणीय हैं । अन्य आर्यमार्गी म भी असन्तुष्ट मण्डली पैदा हारहा थी । गुजरना के ला० रत्नाराम शीत्र ही इस बहस में पडकर अपनी विवादाशक्ति का सिद्धा जमाने वादो थे । जलन्धर के ला० मुन्शागम जी प० गुणस जी के कष्ट अनुयायी समझे जाने थे ।

यह असन्तोष का भाव धीरे २ स्त्रूल रूप में आने लगा । १२ जून के सद्धर्म-प्रचारक म अमृतसर आर्यसमाज के प्रधान प० धर्मचन्द्र जा का एक पत्र उपा है । उस का कुछ भाग हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

“प्रतिगिति समा पजा और मैनेजिंग मनेटी दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज और आर्यसमाज लाहौर और सत्र आर्यसमाजों और आर्य सभासदों और सत्य सत्य विद्या के प्रचारकों और वैदिक धर्म के सहायकों तथा दशहितैषियों का सेवा म विनय पूर्वक प्रार्थना है कि—

( १ ) जा से धर्मक्षक मैनेजिंग मनेटी के धार्मिक उन्माह से दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज लाहौर जारी हुआ है, तन्में उमका तसीज कालिज शुनर गुजारी ग्वास को आम के प्रकाशित होगहा है ।

( २ ) अब इस वक्त निहायत जबरत इस आम वी मान्य होती है कि प्राचीन अविद्वत धर्म वेदांग का पठन पाठन जारी होना चाहिये, और आम तालपदमो म इस किम्ब की तालनाम जा हानी मुसलिम नदी, उनके लिये मिलफल रस कररकानी है कि वैदिकधर्म के उपदेश सुना जाये, और धर्मक निष्कर्ष पानी मन्था उपासना



१८८६ के सत्रमें प्रचारक म स्यालकोट के सीतलदाम जी का एक पत्र छपा है, उसका कुछ भाग हम यहाँ उद्धृत करते हैं ।

“क्या दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज सचमुच दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज है या दयानन्द यैक्युनर कालिज है ? ।

( १ ) क्या यह सन्वृत विद्या की उन्नति और वदविद्या के प्रचार की गर्ने से खोजा गया था या इस्लम आप्रजी या फार्मी की उन्नति की गर्ने से ?” इत्यादि ।

इसी दग के दो और प्रश्न हैं । आशय दो प्रश्नों से ही प्रकट हो सकता है । डी ए वी स्कूल में सन्वृत की शिक्षा के अभाव को बहुत से आशय पुरुष महसूस करने लगे । समझा जाता था कि प० गुरुजी उन असन्तुष्ट आशय पुरुषों के अग्रगण्य थे । लाहौर आशय समाज के कुछ सभामन् भी पंडित जी से सहमत थे । मा० दुर्गाप्रसाद, ता० जावादास, ला० कटारनाथ धर और ता० रूझाराम के नाम उनमें से विशेषतया स्मरण्याय हैं । अन्य आशयसमाजों में भी असन्तुष्ट मण्डली पैदा होरहा थी । गुजरात के ता० रत्नागम शीत ही इस बहस में पडकर अपनी विवादशक्ति का सिद्धा जमाने वाले थे । जालन्धर के ता० मुन्शागण जी प० गुरुजी के बहस अनुयायी समझे जाने थे ।

यह अमन्तोप का भाव धरि २ स्थूल रूप में आने लगा । १२ जन के सत्रमें प्रचारक म अमृतसर आशयसमाज के प्रधान प० धमचन्द्र जी का एक पत्र छपा है । उस का कुछ भाग हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

“प्रतिनिधि सभा पत्रा और मैनाजिग कमेटी दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज और आशयसमाज लाहौर और मयत्र आशयसमाजों और आशय समाजों और अथ अन्य शिक्षा के प्रचारका और वैदिक धर्म के सहायकों तथा दशद्वैतविद्या का संसार में प्रचार प्रोत्साहन है कि—

( १ ) जन से धर्मदाक मनेजिग कमेटी के धार्मिक उद्देश से एंग्लो वैदिक कालिज लाहौर जारी हुआ है, तासे उसका नामा कालिज शुद्ध गुजारी क्या भी आम के प्रकाशित होरहा है ।

( २ ) अथ इस बात विहायत जरूरत इस अर्थ में प्रकृत होती है कि प्रवृत्त अथि कृत प्रचार वेगम का पठन पाठन जागे होना चाहिये, और आशय तालिका में इस किम्ब की तालिम जगे होना मुपदिन नहीं, उनके लिये किम्ब इतना प्रकृत है कि वैदिक धर्म के उपदेश सुनाये जाये, और अथ अन्य धर्म याना सन्तुष्ट



शास्त्रि पुस्तक पढ़ाये जाय। इस लिए मुनासिब मालूम होता है कि चन्दवन सन्ध्याविही के वास्तु एक शरादय तन् एना वैदिक कालिज की वेदांग और प्राचीन श्रुति कृत्रिय पत्रों के मास्ते गानी जावे।”

यह प्रस्ताव यद्यपि बहुत मारी भाषा में दिया गया था तो भी इसका अग्रिम रूप ३१। इनका अग्रिम यह था कि पत्रों की अथ समानों का एक किस्मा यह अग्रिम का रहा था कि डी ए वा कलिज का जो पर भी स्मृत की शिक्षा का ठीक प्रकृत गरी हुआ। यदि कालिज से वैसा प्रबन्ध गरी हा सके ता किमी दूसरी तरह से करना चाहिये।

### ३ दूसरा पक्ष

दूसरा ताक कालिज के सनातनों का एक बड़ा भाग समझता था कि डी ए वी कालिज कमेटी पर जा आक्षेप हो रहा है, वह गिना है, दियाता आस्थाओं में कमटी जो कुछ कर रही है, वह कम नहीं है। आर्थ गजट में आक्षेपों के समाधान करने का पत्र किया जाता था। दूसरे पक्ष की स्पष्टता से जानने के लिए हम ला० राजपराय जी के एक टैकट से कुछ उद्धरण देते हैं। लालाजी उस समय कालिज के यात्रा थे। ला० लाजचन्द्र कालिज कमेटी का निगम थे, ला० हमराज हृदय थे, और ला० राजपराय गाढ़ थे। प० गुरुचन्द्र जी कालिज कमेटी का आत्मा के बह शब्द थे जो कमा २ अपनी हालत पर असन्तोष प्रकट किया करते हैं, कालिज पर जा आक्षेप होने थे, उन्हें वाणी और लेखनी द्वारा खालाजी का कार्य था। युगपरिवर्तन हो जाने पर, बहुत साल पीछे, १९२१ में लालाजी ने एक टैकट में लिखा था कि ‘वहस मुवाहिसे का गन्दा काम बहुत हद तक मर सुपुद था’ उस समय की बहस में लालाजी ने बहुत कुछ दिना और बोला ३। सन्धुत की शिक्षा के सम्बन्ध में कालिज कमेटी के पक्ष में विस्तार से रजने के लिये हम ला० लाजपरायजी का ‘‘दयानन्द ऐंगला वैदिक कालिज में तालाम सन्धुत पर एक मुक्तसिख तागखी नगर’’ नाम की पुस्तिका का अग्रय लेने हैं। उस पुस्तिका में लालाजी ने कालिज पर किये गये आक्षेपों का उत्तर दिया था। उत्तर इस समय से ३ वर्ष पीछे लिखा गया था, परन्तु वह इस समय भी लागू होगा है, इसलिए उसीका अग्रय लेना उचित है। हम यहां खालाजी के कुछ प्रारम्भिक वाक्या उद्धृत करते हैं —

‘‘  
 अब यहां पर यह सवाल पैदा होता है कि स्वामीजी की यादगार में पेंगे वैदिक कालिज खो जाने की तजनीज क्यों मजूर हुई ? क्यों नहीं पहले ही से एक वैदिक खालने की तजनीज मजूर हुई ? उन्ही (रामा दयानन्द ने) तक कुछ मजूर

सम्कृत के तुफल हासिल किया था, उनकी फाजताना तहरीरों और तकररीरों से जाहिर हो चुका था कि संस्कृत के जमीरों में किसी दिग्गम की दिया की कमी नहीं है, फकत दयाफन और मेहनत की कमी है । फिर वायजूद इस वा-रुफायन के उनकी यादगार को ऐग्लो वैदिक कालिज के नाम से क्यों नामजद किया गया ? इसकी वा-रुफान साफ थी ? फ-रत यह कि इरामाजी का मन्शा का उन तोगा ने ही पहिचाना था जिनकी आखें अफ्रेजा तालीम की रोशनी ने खोल दी थीं । सम्कृत के गदूत से फानिल मुल्क में मौजूद थे, मगर बहुत कम । स्वामीजी के फनय की कार की, और ग काई उनका मोतफिद हुआ, बल्कि उन लोगों के हाथ से उनकी यह फिकक और मुगालिफत उठानी पड़ी जो हिन्दुस्तान की मजहबा तारान में अपने आप हा यादगार रहेगी ।

धोयम—स्वामीजी के पैरों को यह मालूम था, कि स्वामीजी खुद अपनी उन कोशिशों को अफमास की निगाह से देख करत थे, जो उन्हाने मद्रज सम्कृत की तालीम के लिये फरुवाफाद व मथुग वगैरा मुफामात व कर्क नाकामयाभी हासिल की बल्कि श्री स्वामी फिरजानन्द सरस्वती का भी अपनी उमर में एकही शामिद ऐसा लायक मिला जो उनके दिता मन्शा को समझकर प्रकाश कर सके और इलाहा अर्जी समाज के सरवर आगुन समन्तार अरकान का यकान था कि इरामाजी क तरीक पर पूरण विद्या हासिल करन के लिये बस ही उस्ताद की जरूरत है वा मुल्क में नापैत है, इसलिये अगर कभी हिन्दुस्तान को वैदिक सम्कृत के इसूत में कामयाबी हासिलता है, तो इत तरह से होमनी है कि ये विद्या के शायक अवल अफ्रेजा अलूम में अपने विभाग को वेद के गहरे और गूढे अर्थ मामकन के लिये तज्वाफ कर, और फिर ऐसे तय्यार शुदा लोगों में से बाज क वेद का अथ समझने का उमकान होमकता है ।”

इस लम्बे उजरण के लिये हम पाठकों से एमा चान्ते है, परन्तु फालिज कमेटी क पक्ष का स्पष्ट करन के लिये इतना स्थान देना आवश्यक था । फालिज कमेटी के सदस्य मात थे कि वही तर्तीम कामयाब होसके ग, निमकी तीरार अफ्रेजा शिक्षा की नींव पर ग्यही की जायगी, क्योंकि विद्या में उशरता आये विना शिक्षा अगुगे है । कमेटी की शिक्षाप्रणाली में शिक्षानुसंग का काफी हिस्सा था, निरुक्त बारे में यह भी फहा जाता था कि कमेटी तालीम का “कौमी” माना चाहता है ।

इस ‘असुली’ मतभेद के कारण कालिज कमेटी में और बाहिर नी आये पुरुषा में अवर्य आरम्भ हागया । कमेटी क नेता ला० लालचन्द्र एन० ए० और अमन्तुष्ट मन्ली के नेता ए० गुरुचत एम० ए० अमभे जात थ । अमन्तुष्ट मण्डली का फतन रहता था कि किसी न किसी तरह अन्त अरके देगमप्रकश और मण लम्ब को खुद या कालिज की पाठविधि में रखाय जाय । इसी आग में यथामन्तुष्ट गत हाता था कि जो रा-

मात्र सन्तुष्ट और हिन्दी पर ही सन्तोष किया जाय । दम्टा के सामने सरकारी शिक्षा विभाग की आवश्यकताओं भी विद्यता थी । एक ओर कल्याण-नगरीय आदर्श की धुन थी, दूसरी ओर लौकिक व्यापार बुद्धि का गन्ध था । दोनों में सन्तुष्टि का पैग होना स्वाभाविक था ।

कालिज कनेजी ने अपने पत्र का लेख और गार्गी द्वारा पुष्ट करने में कोई कम्पन नहीं की । । अग्रे जुट मचदला न भा मोन धार्य नहीं किया, परन्तु इतना अभय्य कहना पडेगा कि प० गुरुदत्तजी के आदेशों गतमेर न बहुत उम्कप धार्य नहीं किया । कालिज क प्रति पठितनी का प्रग 'पिठू प्रग' के सान था, अनन्तोप द ते इण भी समाजा मं डी० ए० वी० कालिज क लिये अणान करने का काम पठितनी के सुपुद ही था । हा, पिछ न दिनों यह कालिज के लिये ४ पील कर दते थे, परन्तु कालिज का नाग नहीं लेते थे ।

बहुतसा आन्दोलन होने पर १८६० के आरम्भ में मिडल क्लास में आटाध्यायी की पनाई आवश्यक कर दागई ।

### ४ सिंहावलोकन ।

हमने कालिज में सस्कृत शिक्षा सम्बन्धी प्रश्न पर आगे पत्र एवं दिये हैं । एक इतिहासलेखक का यह वाग नहीं है कि यह ठीक और बेठीक का फैसला करे । उसका काम यथा सम्भव दोनों क यथाथ दयानों को सामने रख देना है । उस समय दोनों पक्षों ने कौन २ सी भूल की, उस पर भी लेखक अपनी राय नहीं देना चाहता । उस समय के सम्मति-संग्राम के एक मुख्य तथ्यक ला० राजपतराय ने ३१ सारा पीछे जो मिहा-वलाका प्रकाशित किया था, उसके कुछ भाग को उद्धृत करके ही लेखक सम्ताप करण । हालांकि न अपनी "स्वामी दयानन्द सरस्वती और आयसमाज की मौजूदा हालत" नाम की पुस्तिका में आयसमाज और डी० ए० वी० कालिज के सम्बन्ध म सिंहावलोकन करते हुए लिखा है —

"कालिज के बानी यह उम्नेद करते थे कि चन्द सालों में सूरे में हिन्दी का खिाज आन हो जावेगा, और कालिज की मैनेजिंग कमेटी न कालिज का दफतर हिन्दी जवान में हो जावेगा । आयसमाज न उस वक्त भी अंग्रेजी ताजामयाफता लोगों की क-गरत थी । आयसमाज को पशाव म सरकारा मुलाजिमों व यकीलों के जरिये फरोग मिला । इन लोगों के शिरोदिभाग अंग्रेजी से भरे हुए थे, और यह हस कदर लियाकत न रखते थे, कि यह दूर अन्दरश से साच सकें । यह सब अपने कौम के लिये आजादी

चाहते थे, उनके दिल में इन्डुलावतनी का जनना जोश मारता था, यह दुरस्त तौर पर यह समझते थे कि इस इन्डुलावतनी के जन्म को बढ़ाने के लिये अंग्रेजी तालीम को जल्द कर लें ।” ‘गर्ज’ वालियाने कालिज कौमियत के नशे में शरारत थी, और उनके दिल में कौमियत के यह समाग जननात जोशजून थे, जो इस वक्त कौम में तनजह पा रहा है । मगर सारी स्कीम की कमजोरी इसमें थी कि कालिज का नाम ‘ऐंग्लो वैदिक’ रखा गया, और ऐंग्लो को वैदिक पर तरजीह दी गई, जिस कमजोरी ने मानियान को ‘ऐंग्लो वैदिक’ बनने के लिये मजबूर किया । इसी कमजोरी ने कालिज की समाग कौमी खुमूसीयतों को ‘मस्लिहत वक्त’ के मातहत कर दिया । हत्ता कि सरकारी व मिशन कालिजों में और दयानन्द कालिज में बहुत थोड़ा फर्क रह गया । हमारा दिमाग हमेशा ‘ऐंग्लो’ को “वैदिक” पर तरजीह देता रहा । यहाँ तक कि जब मद्रास प० गुरुदत्त ने और मौजूदा महात्मा पार्टी क लीडरों ने यह सबाल उठाया, तो मन जा शौर से उसकी मुसालिफत की । जो जो अमली तनाजोज उन्होंने पेश कीं, वह अब तक मुसलमानों का बाधिले अमल मालूम होती हैं । अफिमन्ती से उस वक्त तालीमी मामलात में न उनको काफी तवर्बा था और न हमको । वह धार्मिक मुक्ता ख्याल को सामने रखते थे, और हम कौमी मुक्ता ख्याल को । यह हमसे इसलिये पटजन था कि उनको हमारे अन्दर धर्म की रेखा दिखाई न देती थी । वह समझते थे कि हम सगसर पुलिटिकल इगाराज के लिये काम कर रहे हैं, हम समझते थे कि यह लोग कौमी मुक्ता प ख्याल की पवा नहीं करते ।”

यह ऐसे आलोचक की राय है जो स्वयं उस मतभेद में मुस्लिम का काम कर रहा था । हम पाठविधिसम्बन्धी मतभेद के किस्से को इसी राय पर समाप्त कर देते हैं ।

### ४. मतभेद के अन्य कारण

प० गुरुदत्त जी के जीवनकाल में मतभेद और अधिक नहीं बढ़ने पाया । इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि कालिज कमेटी के अधिकारियों को पण्डित जी का बहुत लिहाज था । अन्दर २ असन्ताप की जवाला मुलाग रही थी, परन्तु एक महान् ध्यतिके प्रभाव ने उसे भडकाने से रोक रखा था । आगे चलकर हम देखेंगे, कि फूट के कई कारण बन गये । पाठविधिसम्बन्धी मतभेद कई रूपों से प्रकाशित हुआ । इस समय उनकी छायामान दिखाने देती है । कालिज कमेटी क आह्वानों का प्रथम पाठविधि के मन्गरे का पण्डित था । मासभक्ष्यसम्बन्धी प्रश्न अभी गौरवरूप में था । प्रतीत होता है कि आर्यसमाज के क्षेत्र में यह प्रश्न पूछा जाता था कि ‘मास खाना वेद विरुद्ध है या नहीं ?’ १८८६ के अप्रैल मास में आर्यसमाज जालन्धर के अधिवेशन

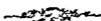




# सातवां परिच्छेद



## प० गुरुदत्त विद्यार्थी (१)



१८९४ - १८८३

### १-जीवन का महत्व

प० गुरुदत्त विद्यार्थी का जीवन आर्यसमाज के इतिहास का एक परिच्छेद है। उमे हम केवल एक घटना समझकर आगे नहीं जा सकते। हम उस हीनहार युग के जीवन की उस चमत्कार सितारे से उपमा दे सकते हैं, जो रात की अंधियारी में पैदा होकर अन्तर्दिप्त को रोशन कर देता है, प्रजा समझने लगती है कि अन्धेरी रात का इतान हो गया, पर शीत हा महान होने लगता है और जिन पुर्तों से आया था, उसी पुना से विद्रा हो जाता है। जिन लोगों ने उस जीवन का अनुभव किया था, वह उमे आनन्द नहीं भुला सक। कारण यह है कि वह सिद्धान्त-मय जीवन था। एक उद्देश्य और एक लक्ष्य के लिये उस जीवन की सत्ता थी। ऐसे जीवनों का सगरी तौर पर देखकर नहीं छोड़ा जा सकता। व्यक्तिगत चरित्र के लिये इस इतिहास में हम सामान्यतया कितना स्थान दे सकते हैं, प० गुरुदत्त विद्यार्थी के जीवन को उससे अधिक स्थान देना आवश्यक है। प० गुरुदत्त का जीवन धर्म के विज्ञान में एक महत्वपूर्ण पाठ है।

### २-परिवारी

प० गुरुदत्त का जन्म २६ अप्रैल १८९४ ई० के दिन मुल्तान शहर में हुआ। आप के पिता का नाम रामकृष्ण था। ता० रामकृष्ण कासी के बड़े आनिम धे, और स्कूल में पढ़ाया करते थे। सुगत शकल में गुरुदत्त का अपनी पिता के फोटो थे। आप का बचपन का नाम 'मूला' था। कुछ वयस होने पर नाम 'मूला' में धनमति और ज्ञानधरा की ओर प्रवृत्ति दिखाई तो उसे बरागी बनकर पुकारा जाने लगा। १२ वर्ष की उमर में पवित्र जी अपने पिताके साथ हरिद्वार गये। वहाँ स्वामी रावेश्याम

ने 'वेदगी' का नाम 'गुरुदत्ता' रख दिया। स्वयं ज्ञानसम्पन्न होकर 'गुरुदत्ता' ने सशोधन करके अपना नाम 'गुरुदत्त' रखा। आप जन्म के 'भतोदा' थे। आपके पवित्र ईश्वरप्रेम और प्रतिभा के चमत्कार को देखकर पीछे से आप के नाम के साथ 'पवित्र' का आदरसूचक शब्द लगाया जाने लगा। गुरुधर्मनुसार वर्यभ्यवस्था की पहली जल 'ला० गुरुदत्त' के 'प० गुरुदत्त' बनने में हुई। आश्वयं की रात यह है कि माथि का दुनिया ने इस जीत को स्वीकार कर लिया। योग्य व्यक्ति को योग्य आदर मिले ही किसी को भी शोभ नहीं होता। 'मथि' का 'गथि' कहलाने में परिश्रम नहीं करना पड़ता, हा यदि पन्धर को मथि कहना चाहें तो अवश्य ही भारी और लचका निगम होगा। आम यदि निरक्षर महापाप पवित्र मन जाय ता उससे गुरु धर्मानुसार वर्य भ्यवस्था की स्थापना नहीं हो जायगी। जो पवित्र कहलान के योग्य है, उसे इस ऊँची पदवी से विभूषित किया जाय तो सारा सारा 'तथास्तु' कहना, और वही वैदिक सिद्धान्त की असली जंत होगी। प० गुरुदत्त ने गुरुओं द्वारा ब्राह्मण्य प्राप्त किया था, और कुछेक विगडे विनागबानों को छोड़कर किसी न भी उसका विरोध नहीं किया।

गुरुदत्त जी का पिता स्कूल मास्टर थे। उन्होंने अपने पुत्रकी प्राइमरी तक की शिक्षा घर में ही दी। ८ वर्ष की उम्र में आप स्कूल में भर्ती हुये। आप ने मिडिल परीक्षा भाग से और मैट्रिकयुक्तेन परीक्षा मुन्तान से पास की। १८८१ में गुरुदत्त जी का स्कूल जीवन समाप्त हुआ। यह जीवन कई घरों में चमत्कारमय था। इतनी विशेषतायें विरले ही विद्यार्थियों में इकट्ठी होती हैं। पढ़ने में आप तेज थे। अध्यापक और इन्स्पेक्टर इस होनहार युवक को देखकर आश्चर्यित होते थे। मास्टर लोग प्रश्न के उत्तर देने में उलझ जाते थे। बड़ी श्रेष्ठि के लडके प्रतिभाशाला विद्यार्थी से सीखने आते थे। पढ़ने के साथ शारीरिक व्यायाम का कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु गुरुदत्त जी को विद्यायी अवस्था में कसरत का खूब शौक था। स्कूल से घर को आते हुये लम्बे से लम्बा रास्ता चुनते थे। मुशीलता की यह दशा थी कि राग 'वेदगी' और 'गुरुजी' के नाम से पुकारते थे। धार्मिक जीवन की ओर गुरुदत्त जी की बचपन से ही प्रवृत्ति थी। योग की पुन में होकर साधु की सेवा करते थे। एक बार बालक गुरुदत्त को नाम बन्द करके प्राध्यापन करता देखकर माता नाराज हो गई, और बेट को 'जोगियों' के रास्ते पर जान से रोकना चाहा परन्तु जल और हृदय का प्रमान नहीं रुका करता।

इसी जीवन में ऐसा भी समय आया जब गुरुदत्तजी नास्तिक समझे जाते थे। यह शिक्षाप्रत अगले जीवन में सा कई बार सुनीगई, परन्तु लेखक ने जहातक विचार किया

है, आर पढितजी की जानी का अनुशीलन किया है, वह इसी परिणाम पर पहुँचा है कि जीवन के २६ वर्षों में ऐसा कोई समय नहीं था, जब गुरुदत्तजी 'नास्तिक' या 'अविश्वासी' कह जा सकें। सन्देह के समय अग्र्य आये, परन्तु नास्तिकता का कोई समय नहीं आया। गुरुदत्तजी गहरे विश्वास के साथ उत्पन्न हुए थे। कभी २ उग्र प्रतिभा जमे हुए विश्वास से टकरा जाती थी, परन्तु शीघ्र ही विश्वास हावी होजाता था और वह टकरा से पहले के विश्वास की अपेक्षा अधिक बलवान् होता था। कभी २ सन्देह के झकोरे आते थे पर वह जड़ को और अधिक मजबूत बनाने के कारण बनते थे। विद्याधीं दशा में कई झकोरे आये, परन्तु उनमें से विश्वासी आत्मा और भी अधिक विश्वासी होकर निकली। मुल्तान में एक्ट्रेस की तय्यारी के समय गुरुदत्तजी के हृदय में बंद पत्थर की धुआँ पैदा हुई, और २० जून १८८० के दिन आप आपसमाज की सभासदी का फार्म लेकर मन्नीजी के पास पहुँचे।

### ३. कालिज का जीवन ( १ )

१८८१ ई० के जनवरी मास में गुरुदत्तजी लाहौर के गवर्नमेंट कालिज में भर्ती हुए। मट्रिक्युलेशन की परीक्षा में प्रान्तपरिम म आपका पाचवा नम्बर रहा था, परन्तु अब जो कालिज का जीवन आरम्भ होता है, वह उज्ज्वलता में अपना साना नहीं रखता। इन जीवनों में अमन्कारी युवक को कामयाबी पर कामयाबी हुई। जो प्रतिभा स्कूल के जीवन में अपने हाथ दिखा चुकी थी, वह कालिज में जाकर और भी अधिक ग्विल उठा। गुरुदत्तजी के विद्याधींजीवन के साथी और कई अशों में उनके चेलों में से बुद्धेक नाम पनाम के सायजनिक जीवन में ख्याति पाचुके हैं। ला० हसराम, दीवान नरेन्द्रनाथ, ला० शिवनाथ अस्सिस्टेंट इंजिनियर, ला० भगतगमसु सिफ, ला० चेतनानन्द यकील, प्रो० रुचिराम साहना, और ला० लाजपतराय—यह सब लोग पढितजी के केवल कालिज ग्विल ही न थे, वह उनके धार्मिक उद्देशों के भी कई अशों में साथी थे।

कालिज में जाकर प्रतिभाशील युवक को अपनी बुशाप्र बुद्धि की सिफ्ता जमाते देर न लगा। शीघ्र ही प्रोफेसरों तक ने मान लिया कि गुरुदत्त विद्यार्थी साधारणकोटि तथा साधारण नियमों से उपर है। प्राय कालिज में वह पाठ के सुनने पर कम ही ध्यान देते थे, परन्तु प्रोफेसर बुरा नहीं मानते थे। घर का समय दो कामों में ग्वध होता था। कालिज में जो विषय लिया था, उसे छोडकर अन्य सब विषयों का अनुशीलन करने में, और धार्मिक विषयों पर बहस सुनाहिसा करने में। गुरुदत्तजी अनथक और समकदार पढनेवाले थे। कालिज का दूसरा वर्ष समाप्त होने से पूर्व आपका दिमाग पश्चिम के दर्शन और विज्ञान का खासा स्टार रुम बन गया था। भानस्ट्रुआर्ट गिर में आपका



ज 'वैगमी' का नाम 'गुर्दत्ता' रख दिया। स्वयं इन्द्रमन्त्र द्वारा 'गुर्दत्ता' न सदाभन करके अपना नाम 'गुर्दत्त' रखा। चाय नाम के 'भारता' थे। चायने पवित्र व ईशानेन भी प्रतिष्ठ के लम्कर का देकर धरि २, चाय के नाम के चाय 'पवित्र' का आरम्भक शर सगया जान लगा। गुर्दत्तनुमा गदभ्यश्म्या ही पहली वंज 'सा० गुर्दत्त' के 'प० गुर्दत्त' नाम में हुई। चायने की बात मढ़ने कि चायने की दुनिया न इस जंत की स्वीकार कर लिया। योग्य ध्यनि की योग्य आदा कि ता निमी की भी योग नहीं होग। 'मधि' की 'मधि' रहस्यो में परिभा नहीं करना परता, हा यदि पय्य की मधि कइना चाइं ता अय्य ही मारी और उचित गिरीर होगा। चाय यदि निरदर भद्रापाय पवित्रत बन चाय ता उससे गुर्दत्तनुमा परे व्यवस्था की स्थापना नहीं हो जयगी। जो पवित्रत कइना के योग्य है, उन इत उषी पत्नी स विमूषित किया चाय ता सारा सार 'शपास्तु' कइगा, और तही गिक सिद्धारा की बसली जंत होगी। प० गुर्दत्त ने गुर्दो द्वारा ब्राह्मण्यर्ष प्राप्त किया था, और कुछेक विगडे गिगावानों का छाडकर किता ने भी उतका चित्र नहीं किया।

गुर्दत्त जी क पिता स्कूल मास्टर थे। उन्होंने अपने पुत्री प्रशंगी तक को निहा घर में ही दी। ८ वर्ष की उमर में चाय स्कूल में भर्ती हुये। चाय ने मिडिया परीक्षा भाग से और मैट्रिकयुक्तेन परीक्षा मुन्तान से पास की। १८८१ में गुर्दत्त जी का स्कूल जीवन समाप्त हुआ। यह जीवन कई भशों में अनन्तारगय था। इतनी विशेषताये विरले ही विद्यार्थियों में इच्छी होती हैं। पढ़ा में चाय तेज थे। अध्यापक और इन्सपेक्टर इस होनहार युवक को दयकर आश्चर्यित होते थे। मास्टर सांग प्रश्न के उत्तर देने में उलझ जाते थे। बड़ी श्रेष्ठि के लडके प्रतिभाशाला विद्यार्थी से सीखने आते थे। पत्ने के साथ शारीरिक व्यायाम का कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु गुर्दत्त जी को विद्यार्थी अवस्था में कमल का म्यु शौक था। स्कूल से घर को आते हुये लम्बे से लम्बा रास्ता चुनते थे। सुशीलता की यह दशा थी कि तांग 'वैगमी' और 'गुन्ती' के नाम से पुकारते थे। धार्मिक जीवन की भोग गुर्दत्त जी की बचपन से ही प्रवृत्ति थी। चाय की पुन में हरेफ साधु की सेवा करते थे। एक बार बालक गुर्दत्त को नाच मन्द करके प्राय्यायान करता देखकर माता नाराज हो गई, और बेट को 'जागिया' क रास्त पर जाने से रोकना चाहा परन्तु जल और हय का प्रमाण नहीं देता करता।

इसी जीवन में ऐसा भी समय आया जब गुर्दत्तजी नाम्भिक समझे जाते थे। यह शिक्षाप्रत अगले ज जन में भी कई बार सुनीगई, परन्तु लेखक न जहातरक विचार किया

है, और पंडितजी की जीवना का अनुशीलन किया है, वह इसी परिणाम पर पहुंचा है कि जीवन के २३ वर्षों में ऐसा कोई समय नहीं था, जब गुरुदत्तजी 'नास्तिक' या 'अविश्वासी' कह जा सकें। सन्देह के समय अवश्य आये, परन्तु नास्तिकता का कोई समय नहीं आया। गुरुदत्तजी गहरे विश्वास के साथ उत्पन्न हुए थे। कमा २ उग्र प्रतिभा जन्मे हुए विश्वास से टकरा जाती थी, परन्तु शीघ्र ही विश्वासा हावी होजाना था और वह टक्कर से पहले के विश्वास का अपेक्षा अधिक बलवान् होता था। कभी २ सन्देह के भूकोरे आते थे पर वह जड़ को और अधिक मजबूत मनाने के कारण बनते थे। विद्यार्थी दशा में कई भूकोरे आये, परन्तु उनमें से विश्वासी आत्मा और भी अधिक विश्वासी होकर निकली। मुल्तान में एग्जूस की तय्यारा के समय गुरुदत्तजी के हृदय में वेद पढ़ने की धुन पैदा हुई, और २० जून १८८० के दिन आप भार्यसमान की सभासदी का फार्म लेकर मन्त्रीजी के पास पहुंचे।

### ३. कालिज का जीवन ( १ )

१८८१ ई० के जनवरी मास में गुरुदत्तजी लाहौर के गवर्नमेंट कालिज में भर्ती हुए। मेट्रिक्युलेशन की परीक्षा में प्रान्तभर में आपका पाचवा नम्बर रहा था, परन्तु अब जो कालिज का जीवन आरम्भ होता है, वह उज्ज्वलता में अपना साना नहीं रखता। इस यात्रा में अमर्यादी युग को कामयाबी पर कामयाबी हुई। जो प्रतिभा स्कूल के जीवन में अपने हाथ दिखा चुकी थी, वह कालिज में जाकर और भी अधिक खिल उठी। गुरुदत्तजी के विद्यार्थीनायक के साथी और कई भर्षों में उनके पैला में से चुञ्चैक नाम पनाय के सार्वजनिक जीवन में ख्याति पाचुके हैं। ला० हसराम, दीवान नरेन्द्रनाथ, ला० शिवनाथ अस्सिस्टेंट इंजिनियर, ला० भगत राम मुक्तिराम, ला० चेतना-नन्द यकीन, प्रो० रचिराम साहना, और ला० राजपतराय—यह सब लोग पंडितजी के केवल कालिज मित्र ही न थे, वह उनके धार्मिक ऊहापोह के भी कई भर्षों में साथी थे।

कालिज में जाकर प्रतिभाशील युवक को अपनी कुशाम बुद्धि का सिक्का जाते देर न लागी। शीघ्र ही प्रोफेसरों तक न मान लिया कि गुरुदत्त विद्यार्थी साधारणकोटि तथा साधारण विषयों से उपर है। प्राय कालिज में वह पाठ के मुनने पर कम ही ध्यान देते थे, परन्तु प्रोफेसर घुरा नहीं मानने थे। घर का समय दो कामों में खर्च हाता था। कालिज में जो गिना लिया था, उसे छोड़कर अन्य मन विषयों का अनुशीलन करने में, और धार्मिक विषयों पर बहस मुनादिसा करने में। गुरुदत्तजी अनधक और समय दार पत्नेवाले थे। कालिज का दूसरा वर्ष समाप्त होने से पूर्व आपका दिग्ग पश्चिम के दशन और विज्ञान का खासा स्टोम रख बन गया था। जानस्ट्रुमार्ट विषय में आपका

उत्तम शक्ति थी, अन्तः का सुनिश्चित विचार मनुष्य के विद्यमान दर्शन का ही हिस्सा था। अज्ञान का हिस्सा था। यानत्र रही थी। अज्ञान और वेद का आधा गुरु पाठ किया, और अन्तः का तन्त्राज्ञा का समन्दर किया। उन समय योग्य वा ज्ञानानु हेतुवाद (Rationalism) के पराजयों से भाग्य हा रहा था। एक ओर से विकासवाद (Evolution Theory) और दूसरी ओर से अज्ञानवाद (Agnosticism) का बलवान् अन्तः प्रभाव (Lash) के किनों की इन्से इन्से बजा रह्ये। सातवें ज्ञानी दुनिया जानन्दुष्टाट मिल स्पेन्सर और कूट (Comte) का पीछे पागल फाही था, और वैज्ञानिक जगत् का विज्ञान के चम्काने न अज्ञानवादी बना दिया था। इन्से इन्से माला की किनों आगत्य के नवनिश्चित युक्तियों के इन्से पर ग्राह्य का रूपा रह्ये थी। इस युद्ध समय में ईसाइयत का आन्तरिक आन्दोलन हुआ था, यह अन्तः रजने न पाया था कि यह नया अन्तः रजने रूखेगा का आन्तरिक आन्तः हो गया। गुरुत्तम का भी अन्तः हिस्सा लेना पडा। १८८१ और १८८२ के दो साल नास्तिकता के गर्दी, सशय के साल हैं। जो लोग इन दो वर्षों को गुरुत्तम जी के जीवन में नास्तिकता का वर्ष गृह्यते हैं, वह भ्रमरत हैं। गुरुत्तम जीवन में ही अन्तः का अन्तः रजने हुआ था। फाल्गुन जीना का पहले दो भागों में टूट अन्तः की परीक्षा हो रही थी। दूसरे सन्देश नदी कि परीक्षा सन्त था। अन्तः अन्तः और तन्त्र प्रतिभा ने सशय पैदा कराने के साधनों को भरदटा, परन्तु इसमें भी सन्देश नदी कि अन्तः प्रिय गदा की हुई। गुरुत्तम का अन्तः जीवा इतका सानी है। इन दो वर्षों में गुरुत्तम जी का सशय नास्तिकता का गृह्यत तन्त्र शायद कम पड़्ये गया हो, परन्तु अन्तः नदी सुसा, बाहिर से लौठ पाया।

१८८२ ई० के आन्तः में गुरुत्तम जी ने एक पूरी डिबेटींग क्लब की स्थापना की, निमर्ग गम्भीर विषयों पर बहस हुआ करती थी, गुरुत्तम जी उनमें मन्त्र थे, वह प्रायः प्रियतम में उन्त्रा पक्ष दिया करते थे। कई धार्मिक या सामाजिक विषय विवाद की सीमा से नहीं छूट सकता था। होकर विषय पर गुरुत्तम ऊहापाह होता था। प० गुरुत्तम जी के समकालिक नययुक्त विवाद से लाभ उठाने थे। क्लब के प्रयोजन केन्द्रों में से एक जा० लक्ष्मणरायण भी थे। लालाजी ने प० गुरुत्तम जी का जो जीवन अन्तः लिखा है उससे प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में पश्चिमी हमेशा आधुनिकता से विरुद्ध पक्ष लिया करते थे, परन्तु १८८२ ई० के अन्त में अन्तः आर्थ सिद्धान्त की पुष्टि प्रारम्भ कर दी, निमर्ग कागद यह प्रतीत होता है कि पश्चिमी तो विषय के परिभाजन के लिये विरोधी पक्ष लिया करते थे परन्तु नययुक्तों पर उसका उन्त्रा अन्तः होता था। अन्तः नास्तिकता का अन्तः उत्पन्न होता जाता था। अन्तः के लिये विषय अन्तः से गुराई पंश होते देगकर प० गुरुत्तम जी ने अपनी कायनास्तिकी बन्त दिया। बदलने का परिणाम

भा चमत्कारी हुआ । नायुजों में आस्तिकता का प्रचार होने लगा । उस समय आस्तिकता को सबसे जयदरत धक्का विज्ञान की ओर से लग रहा था । योरप वैज्ञानिक उन्नति के चक्राचोष से प्रभावित होकर ईश्वरनिश्वास को छाड़ रहा था । टिवेन्गि रुष म भी प्रारम्भ में नायम न विश्वास को दबा लिया परन्तु जब प० गुरुदत्त ने विश्वास के समयन में हथियार पकडे तब रौ पलटने लगा । पण्डित जा ने विज्ञान के बल में ही ईश्वर की मत्ता को समझाना आरम्भ किया । ला० राजपतण्य जी ने लिखा है कि वह उन्हीं दिनों से आर्यमजाजी बने ।

उन्हीं दिनों प० गुरुदत्त जी ने अपने दो अन्य मित्रों के साथ मिलकर 'The Regenerator of Aryavart' नाम के अखबार को जारी किया । एक प्रेम क स्वामी ने यह कहकर युजक मित्रों को पत्रसम्पादन के लिये तय्यार कर दिया कि पत्र की बचत परोपकार के काम में लगायी जायगी, परन्तु कुछ समय पीछे मालूम होगया कि व्यापार दिमाग के प्रेमाध्यक्ष ने युजकों की साहगी से फायदा उठाकर अपना उल्लू सीधा फरन का यत्न किया था । तत्र पत्र के साथ पण्डित जा का या उनके मित्रों का कोई सम्बन्ध नहीं रहा ।

### ४ कालिज का जीवन ( २ )

१८८३ ई० के अक्तूबर मास म श्रुति दयानन्द की भयानक बीमारी का सवाद देश भर में फैल गया । मनों के हृदय काप उठे । इस समय तत्र भाय पुष्टों के लिये वैदिक धर्म का प्रतिनिधि यदि कोई था तो श्रुति दयानन्द । वही उनका आचार्य, वही उपदेशक और वही वकील था । भाय पुष्टों को विश्वास था कि आदित्य ब्रह्मचारी यदि भीष्म वितामद के समान ४०० वर्ष तक नहीं तो कम से कम एक सौ वर्ष तक तो अवश्य ही जीवित रहेगा । मृत्यु और दयानन्द-इन दो शब्दों का भापस में कोई सम्बन्ध है, ऐसी भावना ही उनक दिलों में नहा थी । अस्मात् समाचार फैल गया कि अनहानी की सम्भावना है । आदित्य ब्रह्मचारी को किसी ने जहर देकर प्रश्रण लगान की चेष्टा की है । श्रुति उस समय अधिक रोगी होकर अन्धमेर म भागये थे । ताहीर की आर्यसमाज की ओर से, दो प्रतिनिधि, श्रुति की दशा को देखन और सेवा करन के लिये खाना करने का निधन हुआ । एक तो ला० जीवनदास जी चुने गये, और दूसरा चुनाव गुरुदत्त जी पर पडा । मौखिक दृष्टि से गुरुदत्त जा का नर नहुन पीछ भाती, क्योंकि उनका आयु इस समय केवल १६ साल की थी, और कालिज के तीमर वर्ष म शिन्ना पा रहे थे, परन्तु प्रतिभा और विश्वास न उस नवयुजक को समान में मुद बना दिया था । समाज के सभासद् गुरुदत्त जी का छाटी उत्र का विलासकर, और होनशर नव युजक समकत भी कहते थे ।



## आठवां परिच्छेद

पं० गुरुदत्त त्रिघाथी—( २ )

१८८३—१८८०

### १—शिक्षा की समाप्ति

गुरुदत्त जी आदर्श विद्यार्थी थे । इतिहास में यह नहीं लिखा कि कभी स्कूल या फ़ारिज में अध्यापकों के साथ उनकी अनबन हुई हो । वह हमेशा गुरुजनों के लाडले ही रहे । बचपन से ही उनकी प्रतिभा अपनी प्रखरता का प्रमाण दे चुकी थी । तेज और प्रतिभायुक्त विद्यार्थी साधारणतया उच्च और अविनीत हुआ करते हैं । परन्तु गुरुदत्तजी अपने अधिक प्रतिभा सम्पन्न थे, उतने ही अधिक विनात थे, प्रतिभा और विनीतता की दुर्लभ मशहूर है, गुरुदत्तजी के हृदय में वह दोनों सहजिलया बन कर रहती थीं । आम तौर पर दखा जाता है कि जो विद्यार्थी पढ़ने में अच्छे हैं, वह शारीरिक व्यायाम की ओर कम ध्यान देते हैं । स्कूल जीवन के प्रारम्भ से ही हम गुरुदत्तजी का व्यायामशाला पाने हैं । उन्हें घुम्ने भागने और दड़ आदि की कसरत का लुभ शौक था । जिन लोगों ने पं० गुरुदत्तजी को उस दशा में देखा है, जब वह दैनिक मेगनीन का सम्पादन करते थे, वह समझ ही नहीं सकते कि आप विद्यार्थी जीवन में पठितजी का शगर कैसा गठीता और कसरती था । आप खेलों में बहुत रुचि रखते थे । इन दो विशेषताओं के साथ तासग विशेषता यह थी कि पण्डितजी कलिगनीन का मुख्य भाग पढ़ने में नहीं बल्कि आगसतज का सेवा में व्यनत करते थे । कालि के तीसरी वष में तो आप लाहीर आपसमाज के नेताओं में गिने जाने लगे थे । शीघ्र ही आपकी कर्ति प्राप्त भग में बेलने लगी । बी० ए० पास होने से पूर ही पण्डित गुरुदत्त जी पत्राव के आयसमाज में मुगिषा समझे जाने लगे थे ।

प्रतिभा का महिमा इसे कहने हैं कि सांख्यिक कार्यों में भाग का बड़ा भाग व्यनित करते हुए भी पण्डितजी की ए की परादा में नार पत्राव में प्रथम रहे । १८८८ में आप मेगुनन बने । जो गुरुजन गुरुदत्तजी को रतदिन आयसमाज के साथों में लगे देवतार घवतारा करने थे, और डरते थे कि वहाँ उनका लाडला विद्यार्थी

नाकापाष न ही जाय, वह आश्चर्य और प्रसुल्ला हो गय। का ए हा जात पर गुरुदत्ता आर्यसमाज के काय में श्री कालिज लिप्य होने लगे। इरेक काल में प्रतिमासम्भवा नवयुवक की राय ली जाती। तब और आर्यसमाज के प्राया ला० मा० गत जी के ता आप दापे हाथ बा रहे थे। उन जियों डी ए वी कालिज की पाठविधि और आयप्रतिनिधि सभा के नियम का विचार हो रहा था, समय का अधिक भाग इन्हीं विवादमस्त विषयों के ऊहापाह में व्यतीत होता था। अध्यापना और द्विभेषिों के ह्यमिश्रित आशय की भासा न रहा जब उन क गुरुदत्ता १९०६ के धाम्ना म एम ए परीक्षा देन वाला म सब स अधिक नम्बर पाये। पत्राज गृहार्थिका के इति हास म उम समय यह अपना तगह की पहता और अतुन घटना समझी गई। प० गुरुदत्ता की धाक प्रान्त भरपर बढ गई।

## २ डी० ए० वी० कालिज

अजमेर से रूढ आस्तिक बाबर गुरुदत्ताजी जब लाहौर में आये तो आर्यपुरणों से श्रुति की यागार का रथापित करन की प्रथम इच्छा उपात हुई। उस इच्छा म किम प्रकार स्थूल रूप धारण किया यह हम पुस्तक के पृष्ठों में लिखा जा चुका है। प० गुरुदत्ताजी ने डा ए वी कालिज की रथापना के लिये किना दयोग किया, यह भी दियाया जा चुका है। पत्राज की बनग डी ए वी कालिज का पठितों क मुह से हा मुनती था। उ तनो पर कालिज क लिये आप ही धन की अपाल किया करन थे।

आपक व्याख्यानों की रिपोर्ट पत्रा से मालूम हागा है कि आप डा ए वी कालिज का वरिद और आष शिक्षा देन का साबन बनाना चाहत थे। यहीं पर आपका कालिज के अन्य सचालकों क साथ मतभेद था। ला० लाजपतरायजी ने १९२१ म आर्यसमाज के सम्बन्ध म जो ट्रैक्ट लिखा था, उसमें बतलाया था कि प्रारम्भ से ही आर्यपुरण तो हिस्सा में बटे हुए थे। एक जह जो डी ए वी कालिज को धार्मिक दृष्टि से देखते थे, और दूसर वह जो उसे राष्ट्रीय (कौमी) दृष्टि से देखते थे। धार्मिक दृष्टि से देखने वालों म पदला स्थान प० गुरुदत्ताजी का था।

यदि हम पठित जी के डी ए वी कालिज क साथ सम्बन्ध के इतिहास को से पढ़ें तो हमें वह तीन हिस्सों में बटा हुआ दिखाई देगा। पहले हिस्सा म हम उन्हें कालिज का जन्मदस्त बदील, दूसरे म अनन्तुष्ट समयक और तसरे म प्रेमी समाजाचक क रूप म देखते हैं। पहले और दूसरे हिस्सों की अधीनों म बहुत आता है। दूसरे हिस्से की कई अधीलों म डी ए

के कालिज का नाम दिये बिना केरल वैदिक शिक्षालय के दिये अभील की गई है । जामरा हिस्सा बहुत छोटा है परन्तु बहुत महत्वपूरा है । यदि पंडित जी की जीवनेचा कीच में ही षट जाती तो वह हिस्सा सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता, इसमें सन्देह नहीं ।

इन प्रकारमें मैं इतना लिख देना आवश्यक है कि कालिज की शिक्षा में प्रायः साहित्य की न्यूनता से बहुत असन्तुष्ट होकर भी पंडित जी उसका प्रेमी रह । उनका कालिज से वही प्रेम था, जो एक पिता का पुत्र से होता है । पुत्र से असन्तुष्ट होकर भी पिता उसका दुःख नहीं बन सपता । यदि असन्तोष को कुछ साल तक पकने का मौका मिलता तो क्या परिणाम होता वह कहना कठिन है परन्तु यह निश्चय है कि पंडित जी के जाने जा कालिज सम्प्रदाय मन्मथ की भाग प्रचरद्वारूप में प्रकाशित नहीं हुई, इसका कारण उनकी दूरदर्शिता ही थी । यह एक नोट करने योग्य बात है कि अनेक बार चेष्टा करने पर भी प० गुरुदत्त जी को डी ० वी को कालिज के शिक्षकत्व में शामिल नहीं किया जा सका, यद्यपि आप बहुत समय तक गवर्मेण्ट कालिज में प्रोफेसर रहे ।

### ३ वेद और योग का दीवाना

किसी एक धुन के सिवा मनुष्य कोई बड़ा काम नहीं कर सकता । धुन भी इतनी कि दुनिया उसे पागल कहे । प० गुरुदत्त के अन्दर पागलपन तक पहुँची हुई धुन दिवाना थी । उसे वाग और वेद की धुन थी । जब गुरुदत्त जी स्कूल की आठवीं जमात में पढ़ते थे, तभी से उन्हें शौक था कि जिनके बारे में योगी होने की चर्चा सुना, उसका पास जापहुँचे । प्राणायाम का अभ्यास आपने बचपन से ही आरम्भ कर दिया था । इती उम्र में एक चार बालक का एक गान्धारिक को बन्द करके सास उतारते चालते देखकर माता बहुत नागज हुई थी । उसे स्वाभाविकतः मातृस्नेह ने बतला दिया कि अगर लडका इसी रास्ते पर चलता गया तो फकीर बन कर रहेगा ।

अजमेर में योगी की मूरतु को देख कर वाग सीखने की इच्छा और भाषणिक भटक उठी । लाहौर पहुँच कर पंडित जी ने योग दर्शन का स्वाध्याय आरम्भ कर दिया । आप अपने जीवन का घटनाओं को लिखने, और निरन्तर उन्नति करने के दिये डायरी लिखा करते थे । उस डायरी के बहुत से भाग कई सज्जनों के पास दिखाने थे । उनके पृष्ठों से पता चलता है कि ज्यों २ समय बातया गया, पंडित जी का योगसाधना की इच्छा भी प्रबल होती गई । आप प्राति दिन थोड़े बहुत प्राणायाम करने लगे ।





को भी प० गुरुदत्तजी क अप्पापक बतने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । सच्चिदय के प्रभाव स आप भी आर्यसमाजी बन गये ।

### ४. उपदेशक क्लस ।

डी० ए० वी० कालिदा की शिक्षा मे असन्तुष्ट होकर कुछ लोगों ने एक दूसरी सन्धा के चलाने का निश्चय किया । ३ सितम्बर १८२६ की आर्यपत्रिका में उसकी सूचना निम्नलिखित शर्तों में निकली हे ।

“क्योंकि आपसनों की शिक्षा के लिये एक काम का खोलना आवश्यक हे इस कारण, जयतरु डी० ए० वी० कालिदा की मेनजिग कनेटा या काई अन्य नियमनरुकी वगी हुई कमेटी इस काम को हाथ मे नहीं लेती तत्ररुकी रिये क्लस के लिये चन्दा पढा करने तथा क्लस सम्बन्धा अन्य कार्यों क लिये निम्न लिखित सभ्यों की एक अस्थायी कमेटी बनाई जाय ।

- ( १ ) स्वामी रामानन्द सरस्वता
- ( २ ) प० गुरुदत्त एम० ए०
- ( ३ ) ला० जीवनदास, लाहौर
- ( ४ ) ला० रलाराम, भेलम
- ( ५ ) ला० मुन्शीराम, जालन्धर
- ( ६ ) प० धमचन्द, अमृतसर
- ( ७ ) मास्टर दयाराम, गुजरात
- ( ८ ) डा० साताराम, पशावर
- ( ९ ) ला० केदारनाथ, लाहौर

अनुसन्धित सभ्यों की स्वीकृति हाजाने वर निम्नलिखित निश्चय काम मे लाये जाय-

- ( १ ) ला० मुन्शीरामजी प्रयाग हों
- ( २ ) ला० केदारनाथ मन्त्री हों
- ( ३ ) ला० जावनदास राजानजी हों
- ( ४ ) स्वामी रामानन्द उपदेशक समझे जाय

प० गुरुदास जी इस सङ्घ के केन्द्र थे । बहुत से आर्य पुरुषों को डी० ए० वा० कालिज में भाषे ग्रन्थों का पढ़ाई न होने का शिकायत थी । यह उन निरक्षरता का फल था । इस क्रास के विचार को लगभग ११ वर्ष पीछे हम गुरुकुल के रूप में परिवर्तित हुआ पाते हैं ।

उपदेशक क्राससम्बन्धी घोषणा न पत्रों की आर्यसमाजों में एक हलचल सी पैदा करती । डी ए वा कालिज के राजाहकों ने उमें सारी चोट समझा । आय प्रतिनिधि सभा का अधिकारियों ने उसे एक नियमविरोध काट्टवाई का प्रारम्भ मानकर अधिकार का दृष्टि से देखा । पत्रों की आर्यसमाजों में नियमों का आदर करने की ओर अभिवृत्ति पहले से ही पाई जाती है । समाजों में एक खासा आन्दोलन मच गया । प्रतीत होता है कि अस्थायी समिति बनाने वाला का उद्देश्य भी पत्रों के आय पुरुषों में हलचल पैदा कर देना ही था । यदि यह अनुमान सत्य है तो अस्थायी समिति को पूरी सफलता हुई । २६ अक्टूबर १८८६ के अधिवेशन में आर्यप्रतिनिधि सभा की अन्तर्गत सभा ने निम्न लिखित आदेश का प्रस्ताव पास किया ।

“आयप्रतिनिधि सभा का दत्तव्य है कि उपदेशक क्रास का संचालन फरे । इस कारण ला० मुंशीराम को उसके नियम आदि बनाने का काम सौंपा जाय । उपदेशक क्रास के लिये जो रुपाया आये, मन्त्री उसे जुरा हिसाब में रखता जाय ।”

इस प्रकार आर्यप्रतिनिधि सभा की अन्तर्गत ने जुरा उपदेशक पाठशाळा खोलने का निश्चय किया ।

उस समय परस्पर मतभेद के कारण जो अविश्वास का जलवायु उत्पन्न हो रहा था, उसका इससे बचकर क्या सञ्चल हो सकता है कि उपदेशक क्रास सम्बन्धी बहस में समाचार पत्रों ने स्वामी रामानन्द जी का और प० गुरुदास जी को भी नहीं छुड़ा गया । जो कड़वे विवाद भगले वर्षों में पत्रों के आर्यसमाजों को विचलित कर देने वाले थे, उन का प्रारम्भ यहीं से होता है । यह कहा जा सकता है कि पत्रों के आर्यसमाजों महानुभावों ने बाद विवाद को कड़वी नीति को प्रारम्भ से ही स्वीकार कर लिया था । यह महत्वपूर्ण बात है कि यद्यपि उपदेशक क्राससम्बन्धी वादविवाद में प० गुरुदास जी के नाम को कितना ही घसीटा गया, परन्तु पंडित जी के मुँह से या लेखनी से एक भी प्रतिवाद का शब्द न निकला । पंडित जी का लक्ष्य बहुत ऊँचा था ।

### ५ वैदिक मेगजीन और अन्य लेख

१८८६ के जुलाई मास में प० गुरुदास जी ने वैदिक मेगजीन नाम का मा-

निकल कर विद्यालय शुरू किया। इसमें पूरी आरंभिक शिक्षा संभव लिखने रहती थी। अपनी के शिक्षण में भारतके लेखक पण्डित शिबे ने भी थे। कोष के महत्त्वपूर्ण वैदिकसाहित्य के शिखर में जो अणुबद्ध या प्रत्याश्रित लेखक लिखे थे, परिच्छेद जी उनका प्रतिपाद विस्तार करते थे। मंगलजी ने तो आपकी धारा बंधे थे। वैदिक मंगलजी एक तमिःपरिच्छेद थी पण्डित पाठक उत्तरी आर्यभट्ट के धार्मिक पण्डित न सुलता रक्ष। यह एक प्रतिभासम्पन्न शिखरक के नामसे ही विद्यालय प्रयोग का परिच्छेद होता था। पण्डितों का, उपनिषदों की और अन्य आप ग्रन्थों की व्याख्या करने थी, और वैदिक सिद्धान्तों पर मायका पूर्व लेख होते थे। जिस दिनों वैदिक मंगलजी लिखी जन्मी थी, उन दिनों परिच्छेद जी कोई नानासा पर नहीं पढ़ते थे। रात में व्याख्या और शिक्षण में लगे रहते थे। स्वभाविक विद्यालय में ही काम था। उत्तरी वैदिक उत्तरी पर ध्यःशान्ति के लिए जाता पढ़ता था, और लक्ष्मी के अंश मंगलजी के लिये भी समय देना पड़ता था। आप ने एक विद्यालय विद्यालय था कि जिस किन्हीं को भी वैदिक सिद्धान्त पर कोई शक हो वह उनका समाधान पर सकता है। जिन्हें लगे परिच्छेद जी का समय लगे ही रहा थे।

पण्डितजी की रोगशैली जोरदार थी, वह कुछ भोगस आर्य थी, पण्डित उतावाहन नहीं थी कि मन्त्रों का रक्ष। भाषा का एक र पक्ति से लेखक की प्रतिभा और शक्ति का प्रमाण मिलता था। आप जो कुछ लिखते थे, अपनी पूरी विश्वासशक्ति का समर्थन डाल देते थे। यही कारण है कि आप के लेखों में दाशनिष्ठों की भी समर्थनता के समर्थन पर धार्मिक पुरुषों को भी निश्चयात्मकता मिलती है। वैदिक मंगलजी ने लिखते ही धार्मिक जगत् में एक सम्मानित पद प्राप्त कर लिया। पण्डित के महत्त्व में मन्त्रपुस्तकों के लिये तो यह धर्मपुस्तक ही बन गई। मास भर प्रतीक्षा होती रहती थी। जब अक्ष सामने आता तब वेदवाक्य की तरह पढ़ा जाता था।

पण्डितजी के ग्रन्थ प्रायः वैदिक मंगलजी में ही निकले थे। उपनिषदों की व्याख्या में अपनी के पूर्ण साहित्य में अपना स्थान बना लिया है। आत्मा की निश्चिन्ता में आपने जो दृष्टि लिखी थी, वह योग्यता का एक नमूना है। परिच्छेदजी ने अपनी छोटी सी आयु में जो कुछ किया, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि आप देर तक जीवित रहते, तो क्या कुछ कर जाते। इसमें शक नहीं कि आप भारत के प्रसिद्ध ओरियंटलिस्टों में गिने जाते।

## ६. चिन खिले गुरुभा गये

ईश्वरीय नियम अपना बाला लिये गिरा नहीं छोड़े। जो अज्ञात समय में पढ़ने आ जानी है, वह समय ही समाप्त हो जाती है। प० गुरुदास जी में प्रतीभा समय से पूर्ण ही प्राप्त पड़ी थी। जिन उम्र में दूसरे बच्चे गिट्टी बड़ा खेलते हैं, बगमै गुरुदास ने प्रायश्चित्त करण आरम्भ कर दिया था। १६ वर्ष की अवस्था पर विद्यार्थी पंजाब की आर्यसंगान का प्रतिनिधि बनकर अजमेर भेजा जाता है। २४ वर्ष उम्र नहीं होता कि नौचया एम ए की गवर्नमेण्ट कानिन्स में सायन्स का पढा अध्यापक नियुक्त कर दिया जाता है। कदम कदम पर कुदरत का चालू दृष्टता दिखाई देता था।

किर परिदृष्ट जी ने भी नियमों के तोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ा। कार्य कर चुका में शरीर का चिन्ता छोड़ दी। जिस काम में लागे, उसके गिरा सब कुछ भुला दिया। जिन लोगों को उस बानी आना के मद्दवासा का अदसा िला है, वह कहते हैं कि आप जब वैदिक मंगला का लिये लिखा बैठत थे, तब कई नियमों तक घर से बाहर नहीं निकलत थे। जब पढ़ने लगते थे, तब ६८ घण्टे तक एक मिनट भी नीचे लिख विनता पढ़े चले जाते थे। जब सोने की पुता समाप्त होता था, तब २४ घण्टों की इधड़ी सागरि लगती था। सर्दियों में जौन के रूत में पुता पारते थे और जेठ की भूप में धन्य करण तपस्या का भग समझा करते थे।

इस प्रकार के अतिश्रमों से लोंदे का शरीर भी अस्तव्यस्त हो सकता है। जवानी में पडित जी का शरीर अच्युत मन्थुन था। ईश्वरीय नियमों का उदलना न उस शिथिल कर दिया। वैदिक धर्म की पुता न हम दुनिया की समा को तोड़ डाला। प्रतीत है कि गुरुशिष्या के बिना प्रायश्चित्त के परिश्रम ने भी शरीर पर कुछ बुरा प्रभाव उत्पन्न किया। प्रचार के लिये कई वर्षों तक आपकी निरन्तर दौग लगाना पडा। अण्ड में खान पान आदि के नियम ठीक नहीं रहते और शरीर धरु जाग है। इन सब कारणों से आर्य समाज का आशावादी के केन्द्र उम होनहार नव्युरण को दायरों ने आ घेग। १८८६ ई० के मध्य से परिदृष्ट जी के भर्तों और मित्रों का मातुम हुआ कि आप बीमार हैं। इलाज आरम्भ हो गया। टक्टरी, यूनानी और आधुनिक समा तरह के इलाज किए गए। भर्तों ने अपनी सदिच्छाओं और सेवा में कोई कसर नहीं छोड़ी। यदि दूसरे का प्रार्थनाये किसी कोराग से हुता सकनी, ता प० गुरुदास जी का देशान्त न होता, परन्तु ईश्वरीय नियम अटल है। रोग बरता ही गया। आकिर अन्त समय आ पडया। देखने वालों ने लिखा है कि बीमारी की दशा में आप निरुत्त शान्त रहे। अधिक से अधिक दुःख के समय भी आपने उफ तक नहीं की।

काय प्रायः ईश्वरार्पण किया करते थे। जब अन्न उद्योग लकीर जाता, तो चाणो  
 मन्त्रिण द्वारा दायाया, और स्थाय चद्र लोको का चणो वंशसम्बद्ध। ईदमान १८६०  
 को प्रान्त के ७ वते श्रुति श्रवण के मन्त्रे गिय न ईश्वर का स्थाय करने हु मन्त्री  
 शक्ति के साथ प्राणो का परिष्कार किया। मुत्तत विद्यार्थी २५ वर्ष की आयु में श्व  
 सोहमे प्रथम वर मया, यानु च अर्धे पदो न्यायशाली वंशक र्णोमी क र्णोमी  
 की पद मन्त्रि वा छोड गया, जिना अ न सत क दत्तमानो, गौध वी गभावा हुआ  
 है। सेवक का मत है कि आज तक म ( १ अन्वरी १८२५ ई० तक ) पताब का  
 चारिमन्त्रों में शुक्रशयुग का अन्त ही हुआ। जब तक सा० हसराम, सा० साज-  
 पाण्य, स्वा० मन्मन्त्र और म० आचार्य चानि सम्मान को र नेवा चारिमन्त्र के  
 कायक्षेत्र में कार्य करना कर रहे हैं, तब तक शुक्रशयुग सम्पन्न हुआ नहीं सकता जा  
 सकता ।











